महाकवि-भवभूति प्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

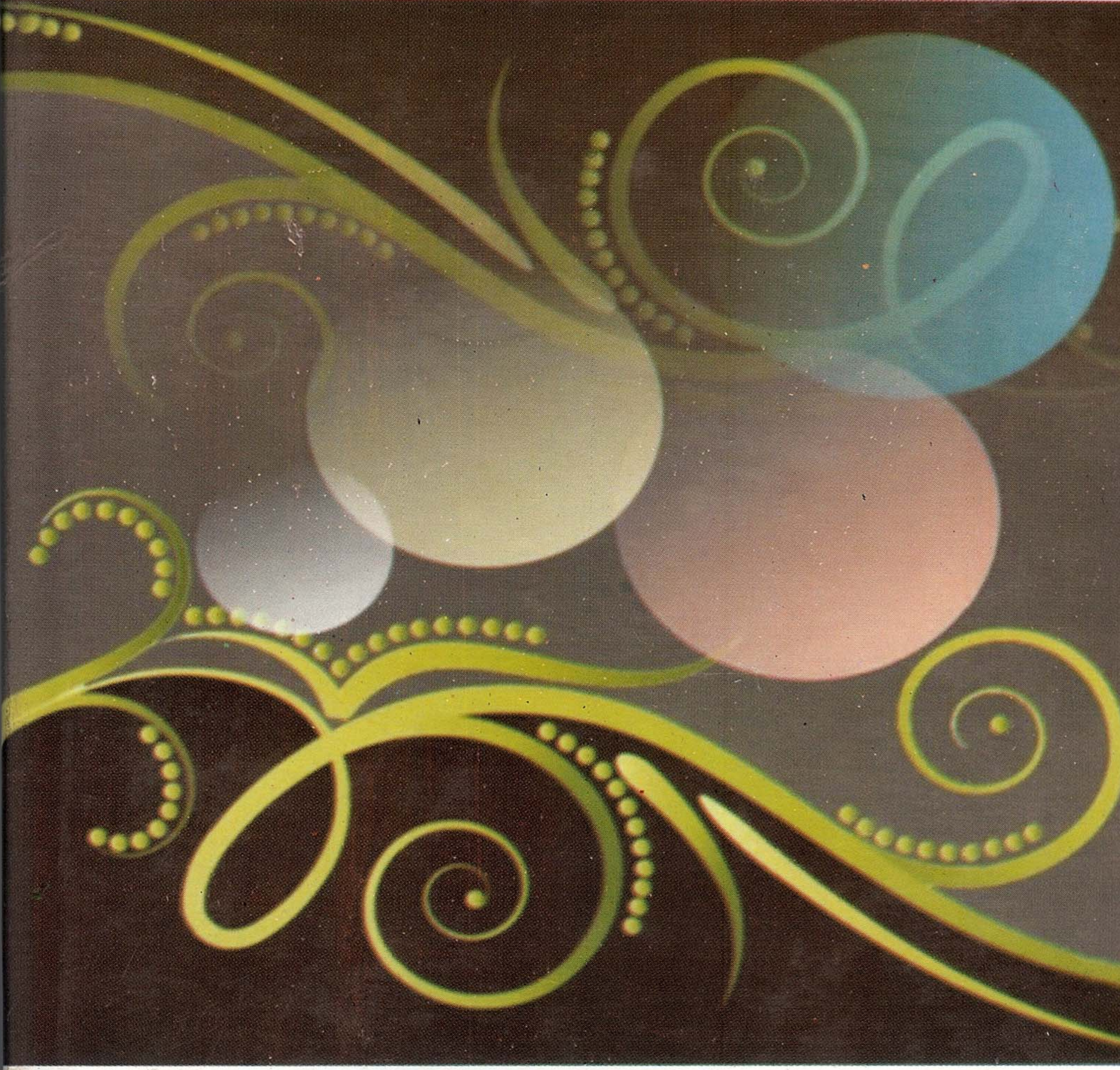

डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माथुर

महाकवि-भवभूति प्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माथुर

विशाल प्रकाशन
दिल्ली-110094

ISBN : 81-88590-14-2
प्रकाशक : **विशाल प्रकाशन**
ए-136 गली नं. 3, कबीर नगर
शाहदरा, दिल्ली-110094
संस्करण : 2011
मूल्य : 400.00
शब्दांकन : क्वालिटी प्रिन्टर्स
मुद्रक : शिवानी आर्ट प्रेस, वेस्ट गोरख पार्क
शाहदरा, दिल्ली-110032

उत्तररामचरित (कथासार)

प्रथमोअंक–रामराज्याभिषेक के अनन्तर जनक के चले जाने पर सीता उदास हो जाती हैं राम उन्हें सांत्वना देते हैं। इधर सीता के मनोविनोदार्थ लक्ष्मण ने राम के अब तक की जीवन की घटनाओं को लेकर एक चित्रपट तैयार करवाया है। सीता राम व लक्ष्मण के साथ उसे देखती हैं एवं चित्र दर्शन से उत्पन्न हुई भगवती भागीरथी में अवगाहन करने की अभिलाषा व्यक्त करती हैं चित्र दर्शन के श्रम से थककर सीता सो जाती हैं। इसी समय दुर्मुख नामक एक गुप्तचर सीता के संबंध में लोका पवाद का समाचार लेकर राम के पास उपस्थित होता है। इस समाचार को सुनकर राम को पीड़ा होती है। एक ओर राज-धर्म का प्रश्न और दूसरी ओर कठोरगर्भा सीता की अवस्था। अन्त में वे अपने कर्त्तव्य-पालन का निश्चय करते हैं। लोकरंजन के लिए अपनी प्राणप्रिया का परित्याग करने को कृतसंकल्प वह लक्ष्मण को सीता के निर्वासन का आदेश देते हैं। भागीरथी दर्शन की इच्छा तो सीता को थी ही इसी इच्छा की पूर्ति के बहाने वह निर्वासित कर दी जाती हैं।

द्वितीयअंक–इसमें आत्रेयी नामक तपस्विनी व वनदेवता (वासन्ती) के संवाद माध्यम से कई घटनाओं की सूचना दी जाती है। आत्रेयी महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में रहकर अध्ययन करती थीं किंतु वहाँ अध्ययन संबंधी विघ्न उपस्थित होने से दंडकवन में आना पड़ा है। वह महर्षि बाल्मीकि को किसी देव विशेष द्वारा दिए गए दो अद्भुत बालकों की सूचना देंती है, जो कुश व लव नाम के हैं एवं अत्यंत कुशाग्र बुद्धि होने से उनके साथ अपने जैसों की साथ-साथ पढ़ने की आयोग्यता बतलाती है। वह सीता के निर्वासन की सूचना भी आत्रेयी को देती है एवं राम के अश्वमेध यज्ञ के आरंभ करने का भी समाचार देती है जिसमें राम स्वर्णमयी सीता की मूर्ति से धर्मचारिणी का काम लेंगे। तत्पश्चात् वह बताती है कि सीता का निर्वासन हो जाने के कारण दुःख संतप्त भगवान वशिष्ठ, माता अरुन्धती और कौशिल्या आदि माताएँ दामाद के यज्ञ से लौटने पर अयोध्या न जाकर वाल्मीकि के आश्रम में पहुँच गई हैं। शम्बूक नामक शूद्र के दंडकारण्य में तप करने की सूचना वासंती को उसके द्वारा प्राप्त होती है जिससे उसे राम के पुनर्दर्शन की आशा

होती है। शंबूक को खोजते हुए राम दंडक वन में प्रवेश कर शंबूक का वध करते हैं। दंडकवन में प्रकृति की शोभा का अवलोकन करते-करते राम सीता की स्मृति से अवसन्न हो जाते हैं। तत्पश्चात् राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं।

तृतीयअंक–तमसा और मुरला सखियाँ परस्पर संभाषण में बताती हैं कि सीता जब लक्ष्मण द्वारा वाल्मीकि आश्रम के पास निर्वासित हुई तो वे लक्ष्मण के जाने के बाद शोक विह्वल होकर गंगा में कूद पड़ी वहीं जल में लव कुश का जन्म हुआ। गंगा और पृथ्वी सीता को रसातल में सँभाल कर ले गईं और बालकों को गंगा देवी ने महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिया इसके बाद सीता छाया रूप में प्रकट होती हैं। राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं पर वे सीता को देख नहीं पाते। उनके हृदय में सीता विषयक विरह वेदना अत्यंत बढ़ी हुई है। अपने पुराने क्रीड़ास्थलों को देखकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं तब सीता अपने स्पर्श से उन्हें चेतन करती हैं। यद्यपि राम सीता को देख नहीं पाते पर उन्हें विश्वास हो जाता है कि यह स्पर्श सीता का ही है अन्य का नहीं। बातचीत के प्रसंग में वासंती राम को सीता के निर्वासन का उलाहना देती है। राम सीता के शोक में प्रमुक्त कंठ होकर विलाप करते हैं।

चतुर्थअंक–वाल्मीकि आश्रम में दो तपस्वी बालक परस्पर बातचीत करते हुए आते हैं। वहाँ वशिष्ठ और अरुंधती राम की माताओं के साथ पूर्व ही आ चुके थे। इसी समय जनक का आगमन होता है। वे सीता के निर्वासन के कारण अत्यंत दुःखी हैं। अरुंधती के साथ कौशल्या उनसे मिलने आती हैं। कौशल्या और जनक परस्पर सांत्वना प्रदान करते हैं। इसी समय अन्य बालकों के साथ लव का प्रवेश होता है। कौशल्या और जनक को उसे देखकर उसे जानने की उत्कंठा जागृत होती है। लव आकर उनका अभिवादन करता है। वह अपना परिचय वाल्मीकि के शिष्य के रूप में देता है। विप्र वटु लव को इसी बीच अश्वमेध–अश्व के दर्शन करने के लिए बुलाते हैं। लव वहां। जाकर अश्वरक्षकों की घोषणा श्रवण करता है। उसे सुनकर लव को क्रोध आता है और वह अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लेता है।

पञ्चमअंक–लव की बाण वर्षा से सैनिक विचलित हो उठते हैं इसी बीच कुमार चंद्रकेतु युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। वे प्रथम दर्शन से ही सारथि सुमंत्र से लव की वीरता और क्रोध एवं ओजपूर्ण मुखश्री की प्रशंसा करते हैं। तदनंतर दोनों का युद्ध प्रारंभ होता है। लव जृम्भकास्त्र का प्रयोग करते हैं। उसे देखकर सुमंत्र और चंद्रकेतु दोनों को विस्मय होता है। युद्ध विराम के बाद दोनों मिलते हैं तथा अनुराग का उद्‌भव होता है। बातचीत में ही सुमंत्र रामभद्र की चर्चा करते हैं। लव अपने इस कृत्य (अश्वग्रहण) में रक्षकों की दर्पपूर्ण 'राक्षसीवाणी' को ही

कारण बताते हैं। पश्चात् लव एवं चंद्रकेतु में परस्पर दर्पपूर्ण कथन होता है और दोनों युद्धक्षेत्र में पुनः उतरने के लिए प्रस्तुत होते हैं।

षष्ठअंक–दोनों वीरों (लव तथा चंद्रकेतु) के युद्ध का वर्णन एक विद्याधर और उसकी स्त्री के संवाद के रूप में किया गया है। इस युद्ध में वे परस्पर आग्नेय, वारुण और वायव्य अस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। इसी बीच शम्बूक को मारकर लौटते हुए रामचंद्र युद्धस्थल में पहुँचते हैं तथा युद्ध रुक जाता है। लव को देखकर राम वात्सल्य से भर उठते हैं। चंद्रकेतु लव के द्वारा प्रयुक्त जृम्भकास्त्र के संबंध में राम को सूचित करते हैं यह ज्ञात कर राम को बड़ा आश्चर्य होता है। तब तक कुश भी प्रवेश करते हैं दोनों राम का अभिवादन करते हैं व राम उनका आलिंगन करते हैं। दोनों बालकों के दर्शन से राम को संदेह होता है कि क्या ये सीता के पुत्र हैं। कुश और लव से सीता परित्याग संबंधी रामायण से कतिपय श्लोक श्रवण कर राम की वेदना और भी जागृत हो जाती है। सेना के साथ लव के युद्ध करने का समाचार सुनकर वशिष्ट, वाल्मीकि, जनक, अरुंधती और राम की माताएँ वहाँ आती हैं। उनके आने के समाचार से राम को लज्जा व खेद भी होता है और वे बालकों के साथ उनका स्वागत करने आगे आते हैं।

सप्तमअंक–एक दिव्य नाटक का अभिनय होता है। परित्यक्ता सीता गंगा में कूद पड़ती हैं। किंतु एक शिशु को गोद में लेकर भागीरथी और पृथ्वी सीता को जल से बाहर ले प्रगट होती हैं। पृथ्वी राम की कठोरता की निंदा करती है। गंगा उसका कारण बतलाती है। दोनों सीता को आदेश देती हैं कि तुम इन शिशुओं का तब तक पालन करो जब तक वे वाल्मीकि मुनि के संरक्षण में रखने योग्य बड़े न हो जाएँ। इस दृश्य को वास्तविक समझकर राम शोकावेग से मूर्छित हो जाते हैं। तब नेपथ्य में 'देवि अरुंधती हम पृथ्वी और गंगा दोनों पवित्र व्रत वाली वधू सीता को आपको अर्पण कर रही हैं। आप हमें अनुग्रहीत करें।' यह सुनाई पड़ता है। अरुंधती सीता को लेकर प्रविष्ट होती हैं। सीता स्वामी की परिचर्या कर उन्हें स्वस्थ करती हैं। वाल्मीकि भी लवकुश को समर्पित करते हैं। इसी बीच लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न भी आ जाते हैं। चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है।

प्रथमोऽङ्कः

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।1।।

अन्वय–पूर्वेभ्यः कविभ्यः नमोवाकम्, आत्मनः कलाम् अमृताम् वाचम् देवताम् विन्देम, इदं प्रशास्महे।

शब्दार्थ–पूर्वेभ्यः = पूर्ववर्ती, कविभ्यः = कवियों के लिए, नमोवाकम् = प्रणाम, आत्मनः = परब्रह्म की, कलाम् = कलारूप, अमृताम् = अमर, वाचम् = वाणी, देवताम् = देवता को, विन्देम = प्राप्त करें, इदम् = यह, प्रशास्महे = आशा करते हैं।

अनुवाद–पूर्वकाल के कवियों को प्रणाम कर, परब्रह्म की कला स्वरूप वाग्देवी (सरस्वती) को प्राप्त करें, यह कामना करते हैं।

(नाद्यंते)

सूत्रधारः–तलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि एवमत्रभवन्तो विदां कुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।

(नान्दीपाठके अनन्तर)

सूत्रधार–बस, अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं। आज भगवान् कालप्रियानाथ की यात्रा के उत्सवावसर पर मैं मान्य आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि आप लोगों को विदित हो कि कश्यपगोत्र में उत्पन्न, 'श्रीकण्ठ' उपाधि से अलंकृत, (एवं), मीमांसा और न्यायशास्त्र में पारंगत जतुकर्णीतनय' श्रीमान् भवभूति नामक (सुकवि) हैं।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।।2।।

अन्वय–इयं वाक्देवी वश्या इव यं ब्रह्माणम् अनुवर्तते, तत्प्रणीतम् उत्तरं रामचरितं प्रयोक्ष्यते।

शब्दार्थ–इयम् = यह, वाक्देवी = सरस्वती, वश्या = दासी, इव = सदृश, यं = जिसको, ब्रह्माणम् = ब्राह्मण को, ब्रह्मा को, अनुवर्तते = अनुगमन करती है, तत्प्रणीतम् = उससे विरचित, उत्तरं रामचरितम् = उत्तररामचरित नाटक को, प्रयोक्ष्यते = अभिनीत करेंगे।

अनुवाद–यह सरस्वती वशवर्तिनी के सदृश जिस ब्राह्मण का अनुसरण करती है, उससे रचित उत्तररामचरित का अभिनय करेंगे।

एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीन्तनश्च संवृत्तः। (समन्तादवलोक्य) भो भोः यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोर्महारजरामस्यायं पट्टाभिषेकसमयो रात्रिन्दिवमसंहृतनादीकः, तत् किमिदानीं विश्रान्तचारणनि चत्वरस्थानानि।

अनुवाद–यह मैं, कार्य के कारण अयोध्यानिवासी तथा उस समय (राम के समय) का हो गया हूँ। (सभी ओर देखकर) हे नटो! जब माननीय एवं रावण कुल के लिए अनलतुल्य महाराज रामचंद्र के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अहोरात्र मांगलिक संगीत का यह समय है, तब क्यों इस समय चारणों से शून्य प्रांगण (चौराहे) हैं?

(प्रविश्य)

नटः–भाव! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदी महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाः सभाजनोपस्थयिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत्।

सूत्रधारः–आ, अस्त्येतन्निमित्तम्।

नटः–अन्यच्च–

(प्रवेश कर)

नट–आदरणीय! महाराज ने लंका के युद्ध में मित्रों, मनस्वी वानरों (सुग्रीवादि) तथा राक्षसों (विभीषणादि) को और अभिनंदन करने हेतु पधारे हुए, अनेक दिशाओं को पवित्र करने वाले ब्रह्मर्षियों एवं राजर्षियों को (भी), जिनके स्वागत के लिए इतने दिनों तक यह समारोह होता रहा है, अपने-अपने घरों को विदा कर दिया है।

सूत्रधार–अच्छा, यह कारण है।

नट–और भी–

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।
अरुंधतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्।।3।।

अन्वय–वसिष्ठाधिष्ठिताः देव्यः रामस्य मातरः अरुंधतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुः आश्रमं गताः।

शब्दार्थ–वसिष्ठाधिष्ठिताः = वसिष्ठ के संरक्षण में। देव्यः = राजमाताएँ,

अरुंधतीम् = वसिष्ठ की धर्मपत्नी को, पुरस्कृत्य = आगे करके, जामातुः = जामाता (दामाद) ऋष्यश्रृंग के, आश्रमं = आश्रम को, गताः = गई हैं।

अनुवाद–वसिष्ठ की अध्यक्षता में पूजनीय, राम की माताएँ (कौशल्यादि), अरुंधती को आगे करके यज्ञ में (भाग लेने हेतु) जामाता (ऋष्यश्रृंग) के आश्रम में गई हैं।

सूत्रधारः–वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

सूत्रधार–परदेशी हूँ, इसलिए पूछता हूँ, कि जामाता (दामाद) कौन है?

नटः– कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।।4।।

अन्वय–राजा दशरथः शान्तां नाम कन्यां व्यजीजनत्, अपत्यकृतिकां ताम् राज्ञे रोपादाय ददौ।

शब्दार्थ–कन्याम् = पुत्री, व्यजीजनत् = उत्पन्न किया, अपत्यकृतिकाम् = गोद ली पुत्री के रूप में, धर्मपुत्री, दत्तकपुत्री, राज्ञे = राजा, रोमपादाय = रोमपाद नाम वाले को।

अनुवाद–राजा दशरथ ने शांता नाम की पुत्री को उत्पन्न किया। दत्तकपुत्री (के रूप में) उसको राजा रोमपाद के लिए दे दिया।

विभाण्डकसुतस्तामृष्यश्रृङ्ग उपयेमे। तेन च साम्प्रतम् द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात् कठोरगर्भामपि जानकीं विमुख्य गुरुजनस्तत्र यातः।

ऋषि विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग ने उससे (शान्ता से) विवाह किया। उन्होंने (ऋष्यश्रृंग ने) इस समय द्वादश (12) वर्ष में संपन्न होने वाला यज्ञ प्रारंभ किया है। उन्हीं के आग्रह से पूर्ण गर्भवाली भी जानकी को छोड़कर गुरुजन (घर के बड़े लोग) वहाँ चले गए हैं।

सूत्रधारः–तत् किमनेन? एहि। राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः।

सूत्रधार–तो इससे क्या? आओ। अपनी जाति की मर्यादा के अनुकूल राजद्वार में हो हम दोनों उपस्थित हों।

नटः–तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भावः।

नट–इसलिए (आप) राजा की अत्यंत निर्मल एवं गुणयुक्त प्रशंसा पूर्ण स्तुति विचार लें।

सूत्रधारः–मारिष,

सूत्रधार–आर्य,

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतोह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीरणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।5।।

अन्वय–सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता कुतो हि। जनः यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनः।

शब्दार्थ–सर्वथा = सभी प्रकार के, व्यवहर्तव्यम् = व्यवहार करना चाहिए, अवचनीयता = निर्दोषता, कुतः = कहाँ, जनः = लोग, वाचाम् = वाणी के विषय में, साधुत्वे = निर्दोषता में, दुर्जनः = दुष्ट।

अनुवाद–सर्वात्मना (सतर्कता से) व्यवहार करना चाहिए। निर्दोषता कहाँ (संभव है) ? मनुष्य जैसे स्त्रियों के, वैसे (ही) वाणी के, विषय में, निर्दोषता विचार में दोषदर्शी होता है।

नटः–अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

नट–(ऐसे जन को) अत्यन्त दुष्ट कहना चाहिए।

देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।।6।।

अन्वय–हि यतः जनः देव्यां वैदेह्याम् अपि सापवादः। रक्षोगृहे स्थितिः मूलम्, तु अग्निशुद्धौ अनिश्चयः।

शब्दार्थ–हि यतः = क्योंकि, जनः = लोग, देव्याम् = सती, वैदेह्याम् = सीता के विषय में, अपि = भी, सापवादः = लाच्छन लगाने वाले, रक्षोगृहे = राक्षस (रावण) के घर में, स्थितिः = रहना, मूलम् = मूल कारण, तु = परंतु, अग्निशुद्धौ = अग्निपरीक्षा के संबंध में, अनिश्चयः = संदेह।

अनुवाद–क्योंकि लोग पतिव्रता सीता पर भी लांछन लगाने वाले हैं। रावण (राक्षस) के घर में निवास (इसकी) जड़ है। अग्निपरीक्षा के विषय में (लोगों को) संदेह है।

सूत्रधारः–यदि पुनरियं किंवदंती महाराजं प्रति स्यंदेत, ततः कष्टं स्यात्।

सूत्रधार–यदि यह जनश्रुति महाराज तक पहुँच गई तो अनर्थ हो सकता है।

नटः–सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः, क्वेदानीं महाराजः? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति।

नट–सब प्रकार से ऋषिगण और देवगण मंगल करेंगे। (घूमकर) हे महोदयो! इस समय महाराज कहाँ हैं! (सुनकर) लोग ऐसा कह रहे हैं।

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः।।7।।

अन्वय–स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य अमूनि दिनानि उत्सवेन नीत्वा, जनकः

अद्य विदेहान् गतः। ततः विमनसः देव्याः परिसान्त्वनाय नरेंद्रः धर्मासनात् वासगृहं विशति।

शब्दार्थ–स्नेहात् = प्रेम के कारण, सभाजयितुम् = सम्मानित करने के लिए, एत्य = आकर, अमूनि = इतने, दिनानि = दिनों को, उत्सवेन = अभिषेक-समारोह, नीत्वा = व्यतीत कर, जनकः = विदेहराज, अद्य = आज, विदेहान् = मिथिला, गतः = चले गए हैं, ततः = इसलिए, विमनसः = खिन्न, देव्याः = सीता के, परिसान्त्वनाय = सान्त्वना देने हेतु, नरेंद्र = राम, धर्मासनात् = न्यायालय से, वासगृहम् = निवास स्थान को, विशति = पधार रहे हैं।

अनुवाद–प्रेम के कारण सम्मानित करने के लिए आकर (और) इतने दिन समारोह में व्यतीत कर महाराज जनक आज मिथिला चले गए हैं। इसलिए खिन्न मन भगवती सीता को सांत्वना देने हेतु महाराज राम न्यायासन से निवास भवन में जा रहे हैं।

(इतिनिष्क्रान्तौ)

(दोनों का प्रस्थान)

इतिप्रस्तावना।

प्रस्तावना समाप्त।

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च।)

(तदनंतर बैठे हुए राम और सीता प्रवेश करते हैं।)

रामः–**देवि** वैदेहि, विश्वसिहि। ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।

राम–हे देवी जानकी! विश्वास करो। वे गुरुजन (जनक आदि) हम लोगों को (अधिक समय तक) नहीं छोड़ सकते हैं।

किन्त्वनुष्टाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सङ्कटा ह्यहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।8।।

अन्वय–किंतु अनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यम् अपकर्षति। हि आहिताग्नीनां गृहस्थता प्रत्यवायैः सङ्कटा।

शब्दार्थ–अनुष्ठाननित्यत्वम् = अग्निहोत्र आदि कार्यों की अनिवार्यता, स्वातन्त्र्यम् = स्वच्छन्दता, अपकर्षति = छीन लेती है, हि = क्योंकि, आहिताग्नीनाम् = अग्निहोत्रियों का, गृहस्थता = गृहस्थ जीवन, प्रत्यवायैः = विघ्नों से, सङ्कटा = संकटपूर्ण।

अनुवाद–किंतु अग्निहोत्रादि की अनिवार्यता स्वच्छंदता को छीन लेती है। क्योंकि अग्निहोत्रियों का गृहस्थाश्रम विघ्नों से पूर्ण होने से संकटापन्न होता है।

सीता–**जानामि आर्यपुत्र, जानामि। 'किंतु संतापकारिणो बंधुजनविप्रयोगा**

भवन्ति। |जाणामि अज्जउत्त, जाणामि, किंदु संदावआरिणो बंधुजणविप्पओआ होंति।|

सीता—जानती हूँ, आर्यपुत्र! जानती हूँ। किंतु बंधुजनों का वियोग संताप देता है।

रामः—एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः। येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान् कामानरण्ये विश्राम्यंति मनीषिणः।

राम—यह ऐसा (ही) है। ये सांसारिक भाव (बंधन) हृदय के मर्मस्थलों का भेदन करने वाले हैं, जिनसे घृणा करते हुए बुद्धिमान् लोग सकल कामनाओं का परित्याग कर वन में विश्राम करते हैं।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—रामभद्र, (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्।) महाराज!

(प्रवेश कर)

कंचुकी—हे रामभद्र! (इतना आधा ही उच्चारण कर भय के साथ) हे महाराज!

रामः—(सस्मितम्) आर्य, ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य। तद् यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

राम—(मुस्कराहट के साथ) आर्य! पिता जी के सेवकों का मेरे प्रति 'रामभद्र' इस शब्द से संबोधन करना ही शोभा देता है। इसलिए आप जैसा अभ्यास है, वैसा ही कहें।

कञ्चुकी—देव, ऋष्यशृङ्गाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः।

कंचुकी—महाराज! ऋष्यशृंग के आश्रम से अष्टावक्र आए हुए हैं।

सीता—आर्य ततः किं विलम्ब्यते! (अज्ज, तदो किं बिलबीअदि?)

सीता—महाराज! तो आप क्यों देर कर रहे हैं?

रामः—त्वरितं प्रवेशय।

राम—शीघ्र लिवा लाएँ।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः)

(कंचुकी निकल गया)

(प्रविश्य)

(प्रविष्ट होकर।)

अष्टावक्रः—स्वस्ति वाम्।

अष्टावक्रः—आप दोनों का कल्याण हो।

रामः—भगवन्, अभिवादये। इत आस्यताम्।

राम—भगवन्! प्रणाम करता हूं। यहां। बैठें।

सीता—भगवन्! नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः

शान्तायाश्च। [भअवं, णमो दे; अवि कुसलं सजामातुअस्स गुरुअणस्स अज्जाए सन्ताए अ।]

सीता–भगवन्! आपको नमस्कार है। जामाता सहित गुरुजन और पूज्य शान्ता सकुशल तो हैं ?

रामः–निर्विघ्नः सोमपीथी भावुको मे भगवानृष्यश्रृङ्गः, आर्या च शान्ता?

राम–मेरे सोमपायी बहनोई भगवान् ऋष्यशृंङ्ग और पूजनीया (बहिन) शान्ता सकुशल हैं न?

सीताः–अस्मानपि स्मरति ? (अम्हे वि सुमरेदि ?)

सीता–हम लोगों को भी याद करते हैं न?

अष्टावक्रः–(उपविश्य) अथ किम्। देवि! कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह–

अष्टावक्र–(बैठकर) और क्या ? हे देवी! कुलगुरु भगवान् वसिष्ठ ने आप से यह कहा है–

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां,
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।9।।

अन्वय–भगवती विश्वम्भरा भवतीम् असूत, प्रजापतिसमः राजा जनकः ते पिता। नन्दिनि! येषां कुलेषु सविता गुरुः, वयं च (गुरवः), त्वं तेषां पार्थिवानां वधूः असि।

शब्दार्थ–विश्वम्भरा = पृथिवी, भवतीम् = आपको, असूत = जन्म दिया, प्रजापतिसमः = प्रजापति के तुल्य, जनकः = विदेहाधिपति, नन्दिनि = हे सौभाग्यवती, कुलेषु = वंश में, सविता = सूर्य, तेषाम् = उन, पार्थिनाम् = राजाओं की, वधूः = कुलवधू।

अनुवाद–भगवती धरती ने आपको जन्म दिया है, प्रजापति के सदृश राजा जनक आपके पिता हैं। हे सौभाग्यवती! जिनके वंश में सूर्य पिता (वंशप्रवर्तक) और हम आचार्य हैं, आप उन राजाओं की कुलवधू हो।

तत्किमन्यदाशास्महे ? केवलं वीरप्रसवा भूयाः।

इसलिए और क्या (हम) आशीर्वाद दें ? केवल वीर पुत्र को जन्म देने वाली बनो।

रामः अनुगृहीताः स्मः।

राम–(हम) कृतार्थ हुए।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।10।।

अन्वय–हि लौकिकानां साधूनां वाक् अर्थम् अनुवर्तते। पुनः आद्यानाम् ऋषीणां वाचम् अर्थः अनुधावति।

शब्दार्थ–लौकिकानाम् = सामान्य, साधूनाम् = सज्जनों की, वाक् = वाणी, अर्थम् = पदार्थ, अनुवर्तते = अनुसरण करती है। पुनः = किन्तु, आद्यानाम् = प्राचीन, ऋषीणाम् = मुनियों की, वाचम् = वाणी को, अर्थः = पदार्थ अनुधावति = पीछे चलता है।

अनुवाद–क्योंकि साधारण (लौकिक) सज्जनों की वाणी अर्थ का अनुगमन करती है। परन्तु, प्राचीन महामुनियों की वाणी का अनुसरण अर्थ करता है।

अष्टावक्रः–इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयोभूयः सन्दिष्टम् 'यः कश्चिद् गर्भदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्यः, इति।

अष्टावक्र–भगवती अरुन्धती, कौशल्यादि महारानियों एवं पूज्य शान्ता ने पुनः-पुनः यह सन्देश भेजा है कि जो कोई भी गर्भकालीन इच्छा सीता की हो, वह अवश्य शीघ्र पूर्ण की जानी चाहिए।

रामः–क्रियते यद्येषा कथयति।

राम–करता हूँ, यदि ये बतलाती हैं।

अष्टावक्रः–ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्-'वत्से' कठोर-गर्भेति नानीतासि। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद् विनोदार्थमेव स्थापितः। तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्यामः' इति।

अष्टावक्र–(सीता के) ननद के पति (ऋष्यशृंग) के द्वारा महारानी सीता को संदेश है–'वत्से! पूर्णगर्भवाली हो, अतएव नहीं बुलायी गई हो। प्रिय रामचन्द्र को भी तुम्हारे मनोरंजन हेतु ही छोड़ा गया है। अतः सुत से युक्त गोद वाली आयुष्मती (तुमको) हम देखेंगे।

रामः–(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु। भगवता वसिष्ठेन न किंचिदादिष्टोऽस्मि ?

राम–(हर्ष, लज्जा और मंदमुस्कराहट के साथ) ऐसा ही हो। भगवान् वसिष्ठ ने मुझे कोई आदेश नहीं दिया है?

अष्टावक्रः–श्रूयताम्–

अष्टावक्र–सुनिये–

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।।11।।

अन्वय–वयं जामातृयज्ञेन निरुद्धाः, त्वं बाल एव असि, राज्यं च नवम्, प्रजानाम् अनुरंजने युक्तः स्याः, तस्मात् यत् यशः (तत्) वः परमं धनम्।

शब्दार्थ–वयम् = हम, जामातृयज्ञेन = दामाद के यज्ञ के कारण, निरुद्धाः = रुके हुए हैं, त्वम् = आप, बालः = बालक, एव = ही, असि = हो, राज्यम् = राज्य, नम् = नया, प्रजानाम् = जनता की, अनुरञ्जने = सेवा में, युक्तः = तत्पर, स्याः = होना, तस्मात् = उससे, यत् = जो, यशः = कीर्ति, वः = आप का, परमम् = श्रेष्ठ, धनम् = सम्पत्ति।

अनुवाद–हम लोग ॠष्यशृंग (दामाद) के यज्ञ के कारण रुके हुए हैं, आप बालक ही हैं, और राज्य नया है। (इसलिए) प्रजापालन में तत्पर रहना। उससे जो कीर्त्ति होगी (वही) आपका श्रेष्ठ धन है।

रामः–यथा समादिशति भगवान् मैत्रावरुणिः।

राम–भगवान् वसिष्ठ जैसी आज्ञा देते हैं।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।12।।

अन्वय–लोकस्य आराधनाय स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीम् अपि मुंचतः मे व्यथा न अस्ति।

शब्दार्थ–लोकस्य = प्रजा के, आराधनाय = रंजन के लिए स्नेहम् = अनुराग को, दयाम् = करुणा को, सौख्यम् = सुख को, यदि वा = और, जानकीम् = सीता को, अपि = भी, मुंचतः = छोड़ते हुए, मे = मुझको, व्यथा = पीडा, न अस्ति = न होगी।

अनुवाद–जनता की प्रसन्नता के लिए स्नेह, करुणा, सुख, अथवा जानकी को भी छोड़ने में मुझे पीड़ा न होगी।

सीता–अतएव राघवकुलधुरन्धर आर्यपुत्रः। (अदो जेव्व राहवकुलधुरंधरो अज्जउत्तो।)

सीता–इसीलिए तो आर्यपुत्र रघुकुल की प्रतिष्ठा के संरक्षक हैं।

रामः–कोऽत्र भीः ? विश्राम्यतामष्टावक्रः।

राम–यहाँ (द्वारपर) कौन है ? पूज्य अष्टावक्र को विश्राम कराओ।

अष्टावक्रः–(उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

अष्टावक्र–(उठकर तथा घूमकर) अरे, कुमार लक्ष्मण आ गए हैं।

(इति निष्क्रान्तः)

(निकल गये।)

(प्रविश्य)

(प्रवेश कर)

लक्ष्मणः–जयति जयत्यार्यः। आर्य, अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुप-दिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम्। तत् पश्यत्वार्यः।

लक्ष्मण–जय हो, आर्य की जय हो। आर्य! अर्जुन चित्रकार ने हमारे आदेशानुसार आपके चरित्र को इस चित्रमय श्रेणी में चित्रित किया है। अतः आप इसे देखें।

रामः–जानासि वत्स, दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत् कियन्तमवधिं यावत् ?

राम–वत्स! तुम अन्यमनस्क देवी का मनोरंजन करना जानते हो। तो (चरित्र) कहां तक चित्रित किया गया है ?

लक्ष्मणः–यावदार्याया हुताशनविशुद्धिः।

लक्ष्मण–आर्या की अग्निपरीक्षा तक।

रामः–शान्तं पापम्। (ससान्त्ववचनम्)

राम–अशुभ शान्त हो। (सान्त्वना के शब्दों में)

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः
तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।13।।

अन्वय–उत्पत्तिपरिपूतायाः अस्याः पावनान्तरैः किम्। तीर्थोदकं च वह्निश्च अन्यतः शुद्धिम् न अर्हतः।

शब्दार्थ–उत्पत्तिपरिपूतायाः = जन्म से ही पवित्र, अस्याः = सीता के पावनान्तरैः = पवित्रकर्ता पदार्थों से, किम् = क्या। तीर्थोदकम् = तीर्थ-जल, वह्निः–अग्नि, अन्यतः = दूसरे पदार्थ से, शुद्धिम् = निर्मलता, न = नहीं, अर्हतः = पाते हैं।

अनुवाद–उत्पत्ति से ही परिशुद्ध सीता को पवित्रकर्ता अन्य पदार्थों से क्या ? तीर्थजल और अग्नि से पवित्रता नहीं पाते हैं।

देवि देवयजनसंभवे। प्रसीद। एषते जीवितावधिः प्रवादः।

यज्ञभूमि से उत्पन्न हे देवी, प्रसन्न होओ। यह आपका जीवन भर के लिए अपवाद है।

कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय–
स्तन्नो यदुक्तमशिवं नहि तत् क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणौरवताडनानि।।14।।

अन्वय–कुलधनैः जनः अनुरञ्जनीयः (इति) कष्टम्, तत् नः यत् अशिवम् उक्तम् तत् ते नहि क्षमम्। सुरभिणः कुसुमस्य मूर्ध्नि स्थितिः नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न।

शब्दार्थ–कुलधनैः = कुल की प्रतिष्ठा को धन समझने वालों से, जनः = प्रजा, अनुरञ्जनीयः = प्रसन्न रखने योग्य, तत् = इसलिए, नः = हमारे संबंध में, अशिवम् = अभद्र, उक्तम् = कहा गया है, तत् = वह, ते = तुम्हारे लिए, क्षमम् = योग्य, सुरभिणः = सुगन्धित, कुसुमस्य = फूल की, मूर्ध्नि = शिर में, स्थितः = स्थान, नैसर्गिकी = स्वभाव से, सिद्धा = उपयुक्त है, चरणौः = पैरों से, अवताडनानि = कुचला जाना।

अनुवाद–कुलमर्यादापालकों से लोग सन्तुष्ट किये जाते हैं, (यह) दुःखद है। इसलिए हम लोगों के लिए जो अमंगल कहा गया है, वह तुम्हारे विषय में उचित

नहीं है। सुगन्धित पुष्प का शिर में स्थान स्वाभाविक है, पैरों से मर्दन नहीं।

सीता–भवत्वार्यपुत्र, भवतु। एहि प्रेक्षामहे तावत्ते चित्रम्। (होदु अज्जउत्त, होदु। एहि। पेक्खम्ह दाव दे चितम्।)

सीता–होने दो, आर्यपुत्र! होने दो। आइये आपका चरित्र देखें।

(इत्युत्थाय परिक्रामति।)

(यह कह उठकर घूमती है।)

लक्ष्मणः–इदं तदालेख्यम्।

लक्ष्मण–यह वह चित्र है।

सीता–(निर्वर्ण्य) क एते उपरिनिरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्य-पुत्रम्? (के एदे उवरिणिरन्तरट्ठिवा उपत्थुवंदि विअ अज्जउत्तं?)

सीता–(देखकर) ये कौन है, जो ऊपर सटकर खड़े हुए मानो आर्यपुत्र की स्तुति कर रहे हैं।

लक्ष्मणः–देवि, एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतः कृशाश्वात् कौशिकमृषिमुपसंक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

लक्ष्मण–हे देवी! ये वे मंत्रयुक्त जृम्भक अस्त्र हैं, जो भगवान् कृशाश्व से विश्वामित्र को प्राप्त हुए थे तथा जिन्हें विश्वामित्र ने ताटका वध के अवसर पर आर्य को कृपा पूर्वक प्रदान किया था।

रामः–वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

राम–देवि! दिव्यास्त्रों को प्रणाम करो।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परःसहस्रं शरदां तपांसि।
एतान्यपश्यन् गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।।15।।

अन्वय–ब्रह्मादयः पुराणाः गुरवः ब्रह्माहिताय शरदां परःसहस्रं तपांसि तप्त्वा स्वानि एव तपोमयानि तेजांसि एतानि अपश्यन्!

शब्दार्थ–ब्रह्मादयः = ब्रह्मा आदि, पुराणाः = पुरातन, गुरवः = आचार्यों ने, ब्रह्महिताय = वेदों की सुरक्षा के लिए, शरक्षम् = वर्षो से, परः सहस्रम् = सहस्रों से अधिक, तपांसि = तपस्या, तप्त्वा = करके, स्वानि = अपने, एव = ही, तपोमयानि = तपोरूप, तेजांसि = तेज पुंजरूप, एतानि = इनको, अपश्यन = देखा था।

अनुवाद–ब्रह्मा आदि प्राचीन गुरुओं ने वेदों के रक्षार्थ सहस्र वर्ष से अधिक तपस्या करके अपने ही तपोमय तेज के स्वरूप (भूत) इन अस्त्रों का साक्षात्कार किया था।

सीता–नम एतेभ्यः। (णमो एदाणं।)

सीता–इनको नमस्कार है।

रामः–सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

राम–अव ये सर्वात्मना तुम्हारी सन्तति को प्राप्त होंगे।

सीता–अनुगृहीतास्मि। (अणग्गहीदम्हि।)

सीता–मैं कृतार्थ हूँ।

लक्ष्मणः–एष मिथिलावृत्तान्तः।

लक्ष्मण–यह मिथिला का वृत्त है।

सीता–अहो दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमाननांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमितितादृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरना-दरखाण्डितशंकरशरासनः शिखण्डमुग्धमुखमंडल आर्यपुत्र आलिखितः। (अम्हहे, दलंतणवणीलुप्पलसामलसिणिद्धसिणसोहमाणमंसलेण देहसोहग्गेण विम्हअत्थिमिदतादवीसंतसोम्म सुन्दरसिरी अणादरखंडिद-संकरसरासणो सिहंडमुद्धमुहमंडलो अज्जउत्तो आलिहिदो।)

सीता–अहो! विकसित नूतन नीलकमल के सदृश कृष्ण वर्ण, कोमल, चिकने, सुन्दर और स्वस्थ शरीर के सौन्दर्य से विस्मयचकित पिताजी से देखी गई सुभग मनोहर शोभावाले तथा अनायास शिव के धनुष को तोड़ देने वाले, एवं काकपक्ष से अलंकृत मुखमंडल आर्यपुत्र (रामचन्द्र) चित्रित हैं।

लक्ष्मणः–आर्ये, पश्य पश्य–

लक्ष्मण–आर्य! देखिए देखिए–

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः।।16।।

अन्वय–एष एव तातः जनकानां पुरोहितः गौतमः शतानन्दश्च सम्बन्धिवो वसिष्ठादीन् अर्चति।

शब्दार्थ–जनकानाम् = जनक कुल के, पुरोहित = ऋत्विक्, गौतमः = गौतमपुत्र, शशानन्द ऋषि, सम्बन्धितः = वरपक्ष के, वसिष्ठादीन् = वसिष्ठ आदि पूज्यों की, अर्चति = पूजा कर रहे हैं।

अनुवाद–ये आपके पिताजी और जनकवंश के पुरोहित गौतमसुत शतानन्द (वरपक्ष के) सम्बन्धियों वसिष्ठ आदि (पूज्यों) की पूजा कर हैं।

रामः–सुश्लिष्टमेतत्।

राम–यह (चित्र) सुसम्बद्ध है।

जनकानां रघूणां च संबंधः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः।।17।।

अन्वय–जनकानां रघूणां च संबंधः कस्य प्रियः न, यत्र स्वयं कुशिक-नन्दनः दाता ग्रहीता च (अस्ति)।

शब्दार्थ–जनकानाम् = जनकवंशियों का, रघूणाम् = रघुवंशियों का, कस्य

= किसको, प्रियः = अभीष्ट, न = नहीं हैं। यत्र = जिसमें, स्वयं = साक्षात्, कुशिकनन्दनः = विश्वामित्र, दाता = देने वाले, ग्रहीता = लेनेवाले।

अनुवाद–जनकवंशियों तथा रघुवंशियों का (विवाह) संबंध किसे अभीष्ट नहीं है, जिसमें साक्षात् विश्वामित्र (कन्यादान) लेनेवाले हैं।

सीता–एते खल तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो जानामि तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते। (एदे खु तक्कालकिदगोदाणमंगला चत्तारो भादरो विवाह दिक्खिदा तुम्हे। अहो जाणामि, तस्सिं जेव्व पदेसे तस्सिं जेव्व काले वंतामि।)

सीता–ये आप, उस समय केशान्त और गोदान रूपी मांगलिक कृत्य किए हुए चारों भाई विवाह के लिए दीक्षित हुए थे। अहो! ऐसा लग रहा है कि उसी स्थान एवं उसी समय में मैं हूँ।

रामः-समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत् सुमुखि! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कण–
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः।।18।।

अन्वय–हे सुमुखि! एष स समयो वर्तत इव, यत्र गौतमार्पितः आगृहीतकमनीयकङ्कणः अयं तव करः मूर्तिमान् महोत्सवः इव मां समनन्दयत्।।18।।

शब्दार्थ–हे सुमुखि = हे सुन्दरि! एषः = यह, सः = वह, समयः = काल, वर्तते = है, इव = मानो, यत्र = जब, गौतमार्पितः = शतानन्द से प्रदत्त, आगृहीतकमनीयकङ्कणः = मनोहरकंकण से युक्त, अयम् = यह, तब = तुम्हारे करः = हाथ से, मूर्तिमान् = शरीरधारी, महोत्सवः = महान् प्रसन्नता का समय, इव = भाँति, माम् = मुझको, समनन्दयत् = आनन्दित किया था।

अनुवाद–हे सुवदने! यह मानो वही समय है, जब शतानन्द से समर्पित एवं मनोज्ञ हस्ताभरण (मंगलसूत्र) से युक्त इस तुम्हारे हाथ ने शरीरधारी महोत्सव की भाँति मुझे आनन्दित किया था।

लक्ष्मण–यह आप हैं। यह आर्या माण्डवी हैं, और यह बहू श्रुतकीर्ति है।

सीता–वत्स! इयमप्यपरा का ? (वच्छ, इअं वि अवरा का ?)

सीता–वत्स, यह दूसरी कौन है ?

लक्ष्मणः–(सलज्जास्मितम्। अपवार्य) अये, ऊर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यतः संचारयामि। (प्रकाशम्) आर्ये, दृश्यतां दृष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान भार्गवः।

लक्ष्मण–(लज्जा और मुस्कराहट के साथ एक ओर मुँह कर मन में) अरे! आर्या (तो) उर्मिला के संबंध में पूछ रही हैं। अच्छा, (इनका) ध्यान दूसरी ओर लिये जाता हूँ। (प्रकट) आर्ये! यह देखने योग्य देखिये। ये भगवान् परशुराम हैं।

सीताः–(ससंभ्रमम्) कम्पितास्मि। (कंपिदम्हि।)

सीता–(घबड़ाकर) मैं (तो) कांप उठी हूँ।

रामः–ऋषे, नमस्ते।

राम–हे मुनि! नमस्कार है।

लक्ष्मणः–आर्य, पश्य, अयमार्येण–(इत्यर्धोक्ते)

लक्ष्मण–आर्ये! देखो, यह आर्य के द्वारा–(इस प्रकार आधा कहने पर)

रामः–(सापेक्षम्) अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

राम–(बात बदलकर) अरे, (अभी) बहुत देखना है। दूसरी ओर दिखाओ।

सीताः–(सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन। (सुष्ठु सोहसि अज्जउत्त, एदिणा विण अमाहप्पेण।)

सीता–(प्रेम और अति आदर के साथ देखकर) आर्यपुत्र! इस शील की गुरुता के कारण आप बहुत शोभित हो रही हैं।

लक्ष्मणः–एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

लक्ष्मण–ये हम सब अयोध्या पहुँच गए।

रामः–(सास्रम्) स्मरामि, हन्त स्मरामि।

राम–(आँसुओं के साथ) स्मरण करता हूँ, हाय स्मरण करता हूँ।

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसागताः।।19।।

अन्वय–तातपादेषु जीवत्सु नूतने दारसंग्रहे मातृभिः चिन्त्यमानानां नः ते दिवसाः हि गताः।

शब्दार्थ–तातपादेषुपूज्यपिता के, जीवत्सु = जीवित रहने पर, नूतने = नये, दारसंग्रहे = विवाह पर, मातृभिः = माताओं से, चिन्त्यमानानाम् = (सुख की) चिन्ता किए गए, नः = हमारे, ते = वे स्मरणीय, दिवसाः = दिन, गताः = चले गए।

अनुवाद–पूज्य पिता जीवित थे, नया विवाह हुआ था, तथा माताएं (हमारे) सुख की चिन्ता करती थीं। हमारे वे दिन चले गए।

इयमपि तदा जानकी–

उस समय यह जानकी भी–

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै
दर्शनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै–
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः।।20।।

अन्वय–प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः दशनकुसुमैः मुग्धालोकं मुखं

दधती शिशुः ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः अकृत्रिमविभ्रमैः मधुरैः अङ्कैः मे अम्बानां कुतूहलम् अकृत।

शब्दार्थ–प्रतनुविरलैः = पतले तथा बिखरे, प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः = कपोलों पर विलसने एवं मनोहर लगने वाले केशों से, दशनकुसुमैः = दांत रूपी फूलों से, मुग्धालोकम् = भोलेभाले, मुखम् = मुख को, दधती = धारण करती हुई, शिशुः = बाला, ललितललितैः = अत्यन्त सुन्दर, ज्योत्स्नाप्रायैः = चन्द्रिका सदृश, अकृत्रिमविभ्रमैः = स्वाभाविक विलासों से, मधुरैः = मनोज्ञ, अङ्कैः = छोटे-छोटे अंगों से, मे = मेरी, अम्बानाम् = माताओं का, कुतूहलम् = मनोरंजन अकृत = किया करती थी।

अनुवाद–पतले, बिखरे, कपोलों पर विलसने एवं मनोहर लगने वाले केशों से तथा दांतरूपी पुष्पों से (युक्त) भोलेभाले मुख को धारण करती हुई लघु आयु सीता, अत्यन्त सुन्दर (एवं) चन्द्रिका सदृश स्वाभाविक विलासों से मनोज्ञ छोटे-छोटे अंगों के द्वारा मेरी माताओं का मनोरंजन किया करती थीं।

लक्ष्मणः–एष मन्थरावृत्तान्तः।

लक्ष्मण–यह मन्थरा का वृत्तान्त है।

रामः–(सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि वैदेहि।

राम–(शीघ्रता से दूसरी ओर दिखाते हुए) हे देवि जानकी!

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत् समागमः।।21।।

अन्वय–अयं स इङ्गुदीपादपः यत्र पुरा शृङ्गवेरपुरे स्निग्धेन निषादपतिना समागमः आसीत्।

शब्दार्थ–अयं = यह, सः = वह, इंगुदीपादपः = हिंगोट का पेड़, यत्र = जहां, पुरा = पहिले, शृंगवेरपुरे = शृंगवेरपुर में, स्निग्धेन = प्रिय, निषादपतिना = निषादराज (गृह) से, समागमः = भेंट, आसीत् = हुई थी।

अनुवाद–यह वही इंगुदी (हिंगोट) का वृक्ष है, जहां पहिले शृंगवेरपुर में प्रिय निषादराज गुह से भेंट हुई थी।

लक्ष्मणः–(विहस्य, स्वगतम्) अयेमध्यमाम्बावृत्तान्तोऽन्तरित आर्येणा।

लक्ष्मण–(हंसकर, अपने आप) अरे! आर्य ने मझली मां का वृत्तान्त हटा दिया।

सीता–अहो एव जटासंयमनवृत्तान्तः। (अह्मो एसो जडासंज-मणवुत्तन्तो।)

सीता–ओह, यह जटा बांधने की घटना है।

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्।।22।।

अन्वय–पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः वृद्धेक्ष्वाकुभिः यद् धृतम् तत् पुण्यम् आरण्यक-व्रतम् आर्येण बाल्ये धृतम्।

शब्दार्थ–पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः = पुत्रों के राज्यभार सौंपने वाले, वृद्धेक्ष्वाकुभिः = वृद्ध इक्ष्वाकुवंशी राजागण, यत् = जिस, धृतम् = धारण करते थे, तत् = उस, पुण्यम् = पवित्र, आरण्यकव्रतम् = वानप्रस्थव्रत को, आर्येण = राम ने। बाल्ये = बाल्यकाल में, धृतम् = धारण कर लिया।

अनुवाद–पुत्रों को राज्यभार सौंपने वाले वृद्ध इक्ष्वाकुवंशी नरेश जिस (व्रत) को धारण करते थे, उस पूतवान-प्रस्थव्रत को आर्य (रामचन्द्र) ने बाल्यकाल में धारण कर लिया।

सीताः–एषा प्रसन्नपूर्णसलिला भगवती भागीरथी। (एसा पसणा-पुण्णसलिला भअवदी भाई रही।)

सीता–यह स्वच्छ एवं पवित्र पानी वाली भगवती गंगा हैं।

रामः–रघुकुलदेवते! नमस्ते।

राम–हे रघुकुल की देवता! आपको नमस्कार है।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथी
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिशिवरादुदतीतरत्।।23।।

अन्वय–भगवति! भगीरथः अगणिततनूतापः तपांसि तप्त्वा सगराध्वरे तुरगविचयव्यग्रान् उर्वीभिदः रोषात् कपिलमहसा प्लुष्टान् च पितुः पितामहान् तव अद्भिः स्पृष्टान् चिरात् उदतीतरत्।

शब्दार्थ–भगवति = हे ईश्वरि, भगीरथः = भगीरथ ने, अगणिततनूताप = शारीरिक कष्ट की चिन्ता न करते हुए, तपांसि तप्त्वा = तपस्या करके, सगराध्वरे = राजा सगर के यज्ञ में, तुरगविचयव्यग्रान् = घोड़े के ढूंढ़ने में संलग्न, उर्वीभिदः = पृथ्वी का भेदन करने वाले, रोषात् = क्रोध के कारण, कपिलमहसा = कपिल मुनि के तेज से, प्लुष्टान् = भस्म हुए, पितुः = पिता के, पितामहान् = पितामहों (सगर के पुत्रों) को, तव = आपके, अद्भिः = जल से, स्पृष्टान् = स्पर्श किये गये, चिरात् = बहुत दिनों के बाद उदतीतरत् = उद्धार किया।

अनुवाद–हे भगवती! भगीरथ ने शारीरिक कष्ट की बिना चिन्ता किये तपस्या करके, सगर के (अश्वमेध) यज्ञ में, (इन्द्र अपहृत) अश्व के अन्वेषण में संलग्न पृथ्वी का भेदन करने वाले तथा क्रोध के कारण कपिल मुनि के तेज से भस्म हुए पिता के पितामहों (सगरपुत्रों) को आपके जल से स्पर्श (कराकर) बहुत दिनों पश्चात् उद्धार किया था।

सा त्वमम्ब, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

हे माता! आप अरुन्धती के समान पुत्रवधू सीता के ऊपर शुभेच्छु हों।

लक्ष्मणः–एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

लक्ष्मण–यह भरद्वाज ऋषि से बतलाया गया, चित्रकूट को जाने वाले मार्ग पर यमुना किनारे श्याम नामक वटवृक्ष है।

(रामः सस्पृहमवलोकयति।)

(राम उत्सुकतापूर्वक देखते हैं।)

सीता–स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः ? (सुमिरेदिवा तं पदेसं अज्जउत्तो ?)

सीता–क्या आर्यपुत्र को उस प्रदेश का स्मरण आ रहा है ?

रामः–अयि! कथं विस्मर्यते ?

राम–प्रिये! कैसे भूल सकता हूँ ?

अलसललितमुग्धान्यध्वसञ्जातखेदा-
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।।24।।

अन्वय–यत्र त्वम् अध्वसञ्जातखेदात् अलसललितमुग्धानि अशिथिलपरिरम्भैः दत्तसंवाहनानि परिमृदितमृणालीदुर्बलानि अङ्गकानि मम उरसि कृत्वा निद्राम् अवाप्ता।

शब्दार्थ–यत्र = जहाँ, त्वम् = आप, अध्वसंजातखेदात् = मार्ग की थकावट के कारण, अलसललितमुग्धानि = आलस्ययुक्त सुकुमार तथा मनोज्ञ, अशिथिलपरिरम्भैः = गाढ आलिंगनों से, दत्तसंवाहनानि = दबाये गये, परिमृदित-मृणालीदुर्बलानि = मर्दित कमलनाल के सदृश दुर्बल, अंगकानि = छोटे-छोटे (सुन्दर) अंगों को, मम = मेरे, उरसि = वक्षस्थल पर, कृत्वा = रखकर, निद्राम् = नींद को, अवाप्ता = प्राप्त हो गई।

अनुवाद–जहाँ पर तुम पथ की श्रान्ति से आलस्य भरे सुकुमार एवं मनोज्ञ, तथा गाढ़ आलिंगनों से दबाये गये मर्दित कमलनाल के सदृश कृश लघु (ललित) अंगों को मेरे वक्षस्थल पर रखकर निद्रा को प्राप्त हो गई थीं।

लक्ष्मणः–एष विन्ध्याटवीमुखें विराध संवादः।

लक्ष्मण–यह विन्ध्याचल वन के द्वार पर विराध राक्षस का वृत्तान्त है।

सीता–अलं तावदेतेन। पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृतताल-वृन्तातपत्रमात्मनो दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्। (अलं दाव एदिणा। पेक्खामि दाव अज्जउत्तसहत्त धरिदतालवन्तादवत्तं अत्तणो दक्खिणारणाप्पवेसारम्भम्।)

सीता–यह देखने की अपेक्षा नहीं है। जहाँ आर्यपुत्र ने स्वीकार कर से पंखे

को छाते के स्थान पर किया था, उस दक्षिण वन में अपने प्रवेश के प्रारम्भ को देखती हूँ।

रामः एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु
बैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमाः यमिनो भजन्ते
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।।25।।

अन्वय–गिरिनिर्झरिणीतटेषु बैखानसाश्रिततरुणि एतानि तानि तपोवनानि येषु आतिथेयपरमा नीवारमुष्टिपचनाः यमिनो गृहिणः गृहाणि भजन्ते।

शब्दार्थ–गिरिनिर्झरिणीतटेषु–पहाड़ी नदियों के किनारे, बैखानसाश्रित-तरूणि = वानप्रस्थियों से सेवित पादपों वाले, एतानि = ये, तानि = वे, तपो वनानि = तपोवन, येषु = जिनमें, आतिथेयपरमाः = अतिथि सत्कार में निरत, नीवारमुष्टिपचनाः = नीवारधीन का मुष्टि (परिमाण) पकाने वाले, यमिनः = संयमी, गृहिणः = गृहस्थ, गृहाणि = घरों में, भजन्ते = निवास करते हैं।

अनुवाद–पर्वतीय नदियों के किनारे तथा वानप्रस्थियों से सेवित पादपों वाले, ये वे तपोवन हैं, जिनमें अतिथि सत्कारनिरत और नीवार धान की मुष्टि पकाने वाले संयमी गृहस्थ घर बनाकर रहते हैं।

लक्ष्मणः–अयमविरलानोकहानिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरा-रण्यपरिणद्ध-गोदावरीमुखरकन्दरः सन्ततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरित-नीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

लक्ष्मण–यह घने तरुओं के सुबह से सदा स्निग्ध एवं कृष्णवर्ण वाले सोमास्थित वनों से घिरी गोदावरी से शब्दायमान गुफाओं वाले एवं निरन्तर बरसने वाले बादलों से स्निग्ध श्यामलता से युक्त (यह) जनस्थान के मध्य में स्थित प्रस्रवण नाम का पर्वत है।

रामः–स्मरसि सुतनु! तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा,
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि।।26।।

अन्वय–हे सुतनु! तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहतसपर्यासुस्थयोः तानि अहानि स्मरसि! तत्र सरसनीरां गोदावरीं वा स्मरसि! तदुपान्तेषु आवयोः वर्तनानि च स्मरसि ?

शब्दार्थ–हे सुतनु = हे सुन्दरी, तस्मिन् = उस, पर्वते = पर्वत पर, लक्ष्मणेन = लक्ष्मण के द्वारा, प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः = पुनः-पुनः की गई परिचर्या से प्रसन्नचित्त हम दोनों, तानि = उन, अहानि = दिनों को, स्मरसि = याद करती

हो ? तत्र = वहाँ, सरसनीराम् = सुस्वादुसलिल, गोदावरीम् = गोदावरी को, वा = अथवा, स्फरसि = याद करती हो ? तदुपान्तेषु = उसके निकट प्रदेशों में, आवयोः = हम दोनों के, वर्तनानि = भ्रमणों को, स्मरसि = स्मरण करती हो ?

अनुवाद–हे सुन्दरी! उस पर्वत पर लक्ष्मण के द्वारा पुनः-पुनः की गई परिचर्या से प्रसन्नचित्त (हम दोनों के) उन दिनों को स्मरण करती हो ? अथवा वहाँ सुस्वादु सलित गोदावरी को स्मरण करती हो ? और क्या उसके निकट-प्रदेशों में हम दोनों के भ्रमणों को स्मरण करती हो ?

किं च–

और भी–

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।27।।

अन्वय–आसक्तियोगात् अविरलितकपोलं किमपि किमपि मन्दं मन्दम् अक्रमेण जल्पतोः अशिथिलपरिरम्भव्याप्ततैकैकदोष्णोः अविदितगतयामा रात्रिः एव व्यरंसीत्।

शब्दार्थ–आसक्तियोगात् = निकटता के होने से, अविरलितकपोलं = गालों को मिलाकर, किमपि-किमपि = कुछ से कुछ, मन्दं-मन्दं = धीरे-धीरे, अक्रमेण = बिना किसी क्रम से, जल्पतोः = बात करते हुए, अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैक दोष्णोः = गाढ़ आलिंगन में निरत एक-एक बाहु वाले, अविदितगतमाया = अज्ञात व्यतीत प्रहरों वाली, रात्रिः = निशा, एव = ही, व्यरंसीत् = बीत गई।

अनुवाद–निकटता के (प्रेम एवं स्थान की) कारण गालों को मिलाकर धीरे-धीरे बिना क्रम के वार्तालाप करते हुए एवं प्रगाढ़ आलिंगन में संलग्न एक एक बाहु वाले (हम दोनों की) बिना जाने व्यतीत प्रहरों वाली रात्रि ही बीत गई थी।

लक्ष्मणः–एष पञ्चवट्यां शूर्पणखाविवादः।

लक्ष्मण–यह पंचवटी में शूर्पणखा संवाद है।

सीता–हा आर्यपुत्र! एतावत्ते दर्शनम् (हा अज्जउत्त) एत्तिअं दे दंसणं।

सीता–हा आर्यपुत्र! यहीं तक आपका दर्शन हुआ।

रामः–अयि वियोगत्रस्ते! चित्रमेतत्।

राम–हे विरहभीते! यह तो चित्र है।

सीताः–यथा तथा भवातु। दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति। (जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उप्पादेइ।)

सीता–जो कुछ भी हो। दुर्जन दुःख उत्पन्न करता है।

रामः–हन्त! वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

राम–हाय! प्रत्यक्ष सा मुझे जनस्थान का वृत्तान्त लग रहा है।

लक्ष्मणः–

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणौरार्यचरितै–
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।28।।

अन्वय–अथ पापैः रक्षोभिः कनकहरिणाच्छद्मविधिना इदं तथा वृत्तं यथा क्षालितमपि व्यथयति। शून्ये जनस्थाने विकलकरणैः आर्यचरितैः ग्रावा अपि रोदिति वज्रस्य अपि हृदयं दलति।

शब्दार्थ–अथ = तदनन्तर, पापैः = दुष्ट, रक्षोभिः = राक्षसों से, कनक-हरिण छद्मविधिना = स्वर्णमृग के रूप में छल विधान के द्वारा, इदम् = यह, तथावृत्तम् = ऐसा हुआ, यथा = जो, क्षालितम् = धोया गया, अपि = भी, व्यथयति = पीड़ा देता है, शून्ये = निर्जन, जनस्थाने = जनस्थान में, विकलकरणैः = आकुल इन्द्रियों वाले, आर्यचरितैः = राम के कार्य व्यापारों से, ग्रावा = पाषाण, रोदिति = रोता है, वज्रस्य = कुलिशका, हृदयम् = अन्तःकरण, दलति = फटता है।

अनुवाद–इसके पश्चात् दुष्ट राक्षसों ने स्वर्णमृग रूपी कपट अनुष्ठान से यह ऐसा सम्पन्न हुआ जो कि प्रतिकार होने पर भी पीड़ा देता है। निर्जन जनस्थान में आकुल इन्द्रियों वाले भवदीय चरित्रों से पाषाण भी रोपड़ा और वज्र का भी मर्मस्थल विदीर्ण हो गया।

सीता–(सास्रमात्मगतम्।) अयि देव दिनकरकुलानन्दन! एवमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्। (अम्हो, विणअरकुलाणन्दणो एव्वं वि मह कालणादो किलन्तो आसि।)

सीता–(अश्रुपूरित नयनों से युक्त अपने मन में) ओह सूर्यवंश को आनन्ददायक (राम) इस प्रकार से भी मेरे कारण दुःखित हुए थे।

लक्ष्मणः–(रामं निर्वर्ण्य साकूतम्) आर्य! किमेतत् ?

लक्ष्मण–(राम की ओर देखकर साभिप्राय) आर्य! यह क्या ?

अयं तावद्वाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धौऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः।।29।।

अन्वय–तावत्, धाराभिः विसर्पन् जर्जकरणः अयं वाष्पः त्रृटित मुक्तामणिसर

इव धरणीं लुठति। चिरम् आध्मातहृदयः आवेगः निरुद्धः अपि स्फुरदधरनासा-पुटतया परेषाम् उन्नेयी भवति।

शब्दार्थ–धाराभिः = प्रवाहों के रूप से, विसर्पन् = बहता हुआ, जर्जरकणः = बिखरी बूंदों वाला, अयम् = यह, बाष्पः = अश्रुसमूह, त्रुटितः = टूटे हुए, मुक्तामणिसरः = मोतियों की लड़ी, धरणीम् = पृथ्वी पर, लुठति = लोट रहा है। चिरम् = बहुत दिनों तक, आध्मातहृदयः = हृदय में व्याप्त, आवेगः = आवेश, निरुद्धः = रोका गया, अपि = भी, स्फुरदधरनासापुटतया = फड़कते हुए ओंठ और नाक के नथुनों से, परेषान् = दूसरों को, उन्नेयः = अनुमेय।

अनुवाद = धाराप्रवाहरूप में फैलता हुआ, बिखरी बूंदों वाला यह अश्रु (समूह) टूटी हुई मोतियों की लड़ी की भाँति पृथ्वी पर (गिरकर) लोट रहा है। बहुत दिनों तक हृदय में व्याप्त आवेश रोका गया भी, फड़कते हुए ओष्ठ एवं नासापुटों से अनुमेय हो रहा है।

रामः–**वत्स!**

राम–वत्स!

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढ़ः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति।।30।।

अन्वय–प्रियजनविप्रयोगजन्मा दुःखाग्निः तीव्रः अपि प्रतिकृतिवाञ्छया तत्कालं विसोढः पुनर्मनसि विपच्यमानः हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति।

शब्दार्थ–प्रियजनविप्रयोगजन्मा–सीता के विरह से उत्पन्न, दुःखाग्निः = शोकानल, तीव्रः = तीक्ष्ण, अपि = भी, प्रकृति वाञ्छया = प्रतिकार को इच्छा से, तत्कालम् = उस समय, विसोढः = सहन किया गया, पुनर्मनसि = भूयः चित्ते, विपच्यमानः = परिपाकं गच्छन, हृन्मर्मब्रणः = वक्षोमध्यगतस्फोटकः, इव, वेदनाम् = व्यथाम्, तनोति = विस्तारयति।

अनुवाद–प्रियतमा के विरह से उत्पन्न शोकानल तीक्ष्ण होने पर भी बदला लेने की अभिलाषा के कारण उस समय सह लिया था, (किन्तु) फिर मन में परिपक्व हुए हृदय के मर्म पर स्थित फोड़े के सदृश पीड़ा का प्रसार कर रहा है।

सीता–हा धिक् हा धिक्, अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्य पुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि। (हद्धि, हद्धि, अहं वि अधिभूमिंगदेण रणरणएण अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि)।

सीता–हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है! मैं भी अतिशय उत्कंठा के कारण आर्यपुत्र से विरहित की भाँति अपने को देख रही हूँ।

लक्ष्मणः–(स्वागतम्) भवतु, अन्यतः क्षिपामि। (चित्रं विलोक्य, प्रकाशम्) अथैतन्मन्वन्तरपुराणास्य गृध्रराजस्य तत्रभवत-स्तातजटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम्।

लक्ष्मण–(अपने आप) अच्छा, इनका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करता हूँ। (चित्र को देखकर, प्रकट) यह, मन्वन्तर से भी अधिक पुरातन गृध्रराज पूजनीय पितृतुल्य जटायु के चरित्र एवं शौर्य का उदाहरण है।

सीता–हा तात, निर्व्युढस्तेऽपत्यस्नेहः। (हा ताद, णिव्वढो दे अवच्चसिणोहो।)

सीता–हा तात! आपका सन्तति के प्रति स्नेह सार्थक हुआ।

रामः–हा तात काश्यप शकुन्तराज! क्व न खलु पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधोः संभवः।

राम–हा तात कश्यपवंशोत्पन्न पक्षिराज! आपके तुल्य महान् सत्पात्र तथा धार्मिक सज्जन की उत्पत्ति कहाँ संभव है!

लक्ष्मणः–अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः कुञ्जवान्नाम पर्वतो दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभागः। तदिदममुष्य परिसरे मतङ्गस्याश्रमपदम्। तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी। तदेतत्पम्पाभिधानं पद्मसरः।

लक्ष्मण–यह जनस्थान की पश्चिम (दिशा) में कुञ्जवान् नाम का पर्वत दनुकबन्ध राक्षस से आश्रित दण्डकारण्य का एक भाग है इसके निकट प्रदेश में यह मतंग ऋषि का तवोवन है। वहीं श्रमणा नाम की सिद्ध शबर तपस्विनी है। यह कमलों से युक्त पम्पा नाम का सरोवर है।

सीता–यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नमार्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं प्रसदितम् आसीत्। (जत्थ किल अज्जउत्तेण विच्छिणामरिसधीरत्तणं पमुक्ककंठ परुण्णं आसि।)

सीता–जहाँ पर आर्य पुत्र क्रोध और धैर्य का परित्याग कर मुक्त कण्ठ से रोये थे।

रामः–देवि! परं रमणीयमेतत्सरः।

राम–देवि! यह सरोवर अत्यन्त मनोहर।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले
सन्दृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः।।31।।

अन्वय–एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः कुवलयिनः विभागाः मया बाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले सन्दृष्टाः।

शब्दार्थ–एतस्मिन् = इसमें, मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः = मदमत्तमल्लिकाक्ष हंसों के पंखों से प्रकम्पित तथा सुन्दर बड़े बाल वाले सफेद कमलों वाले, कुवलयिनः = नीलकमलों वाले, विभागाः = प्रदेश, मया = मेरे द्वारा

बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले = आँसुओं के गिरने तथा निकलने के मध्यकाल में, सन्दृष्टाः = देखे गये थे।

अनुवाद–इस (पम्पा) में मद से मधुर (अथवा प्रमत्त) ध्वनिकर्ता मल्लिकाक्ष हंसों के पंखों से प्रकम्पित एवं रमणीय बड़े नाल वाले शुभ्र कमलों से युक्त नीलकमलों वाले प्रदेशों को मैंने अश्रु बिन्दुओं के गिरने और निकलने के मध्यकाल में देखा था।

लक्ष्मणः–अयमार्यो हनूमान्।

लक्ष्मण–यह आर्य हनुमान् हैं।

सीता–एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरुकोपकारी महानुभावो मारुतिः। (एसो सो चिरणिव्यूढजीवलोअपच्चुद्धरणगुरु-ओवआरी महानुभावो मारुदी।)

सीता–यह वह चिरकाल से किये गये जीवलोक के उद्धार से गौरवान्वित तथा उपकारी एवं महाप्रभावशाली पवनपुत्र हनुमान हैं।

रामः–दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः।
यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च।।32।।

अन्वय–दिष्ट्या अयं सः महाबाहुः अंजनीनन्दवर्धनः यस्य वीर्येणा भुवनानि च वयं च कृतिनः।

शब्दार्थ–दिष्ट्या = सौभाग्य से, अयम् = यह, सः = वह, महाबाहुः = बड़ी भुजाओं वाला, अंजनानन्दवर्धनः = अंजनी के आनन्द को बढ़ाने वाला, यस्य = जिसके, वीर्येण = पराक्रम से, भुवनानि = सभी लोक, वयम् = हम, कृतिनः = कृतार्थ।

अनुवाद–भाग्य से यह वही अंजना (माता) के आनन्द को बढ़ाने वाले हनुमान हैं, जिनके पराक्रम से तीनों लोक तथा हम कृतार्थ हुए हैं।

सीता–वत्स, एष स कुसुमितकदम्बतरुताण्डवितबर्हिणाः किंनामधेयो गिरिः ? यत्रानुभावसौभाग्यमात्रपरिशेषसुन्दरश्रीर्मूर्च्छस्त्वया प्रसदितेनावलम्बितस्तरुतल आर्यपुत्र आलिखितः। (वच्छ, एसो सो कुसुमिदकदम्बतरुताण्डविअबंहिणो किंणामहेओ गिरी ? जत्थ अणभावसोहग्गमेत्तपरिसेससुन्दरसिरी मुच्छंदी तुए परुण्णेण ओलंबिओ तरु अले अज्जउत्तो आलहिदो।)

सीता–वत्स, फूले हुए कदम्ब वृक्षों पर नृत्य करते हुए मयूरों से युक्त इस पर्वत का क्या नाम है ? जहाँ पर तेज के केवल सौन्दर्य से अवशिष्ट मनोहर छवि वाले आर्यपुत्र मूर्च्छित होते हुए तथा रोते हुए तुम्हारे द्वारा संभाले गए वृक्ष के नीचे चित्रित किये गए हैं।

लक्ष्मणः–सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मिन्
नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः।
आर्येणास्मिन्...

रामः–...विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि
प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः।।33।।

अन्वय–ककुभसुरभिः माल्यवान् नाम सः अयं शैलः, यस्मिन् नीलः स्निग्धः नूतनः तोयवाहः शिखरं श्रयति आर्येण अस्मिन्। विरम-विरम अतः परं क्षमः न अस्मि। मे स जानकीविप्रयोगः पुनः प्रत्यावृत्त इव।

शब्दार्थ–ककुभसुरभिः = अर्जुन (तरु) के। कुसुमों से सुगन्धित माल्यवान् नाम का, सः = वह, अयम् = यह, शैलः = पर्वत, यस्मिन् = जिसमें, नीलः = कृष्ण (काला), स्निग्धः = चिकना, नूतनः = नया, तोयबाहः = मेघ, शिखरम् = चोटी पर, श्रयति = आश्रय लेता है, आर्येण = भगवान् राम ने, अस्मिन् = इस पर, विरम विरम = रुको, रुको, अत = इससे, परम् = आगे, अनन्तर, क्षमः = समर्थ, न अस्मि = नहीं हूँ, मे = मेरा, सः = वह जानकी-विप्रयोगः = सीता का वियोग, पुनः = फिर से, प्रत्यावृत्त = लौट आया।

अनुवाद–अर्जुन तरु के कुसुमों से सुगन्धित माल्यवान् नाम का वह, यह पर्वत है, जिसमें श्यामल चिकना नवीन मेघ शिखर पर विश्राम करता है। इतना कहने पर लक्ष्मण आगे कुछ कहें इसके पूर्व राम ने टोक दिया ठहरो, ठहरो, इससे अधिक (सुनने-देखने में) मैं असमर्थ हूँ। मेरा वह (पूर्वानुभूत) सीता वियोग मानो फिर लौट आया है।

लक्ष्मणः–अतः परमार्यस्य तत्रभवतां कपिराक्षसानां चापरिसंख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद्विज्ञापयामि विश्राम्यतामिति।

लक्ष्मण–इसके पश्चात् आर्य के एवं आदरणीय वानरों तथा राक्षसों के असंख्य उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक कार्य हैं। यह आर्या भी थक गई हैं। इसलिए निवेदन करता हूँ कि विश्राम करें।

सीता–आर्यपुत्र, एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति। (अज्जउत्त, एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहलाये मए विण्णावणिज्जं अत्थि।)

सीता–आर्यपुत्र, इस चित्र दर्शन से (गर्भकालीन) अभिलाषा के उत्पन्न होने से मेरी एक प्रार्थना है।

रामः–नन्वाज्ञापय।

राम–आप आज्ञा करें।

सीता–जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्र-निर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्ये इति। (जाणे पुणो विपसण्णगंभीरासु वणराईसु विहरिअ पवित्तणिम्मलसिसिर सलिलं भअवदिं भाईरहिं ओगाहिस्सं ति)

सीता–मुझे लगता है कि फिर स्निग्ध और निस्तब्ध वनवीथियों में बिहार करके पवित्र, स्वच्छ और शीतल जलवाली भगवती गंगा में स्नान करूँ।

रामः–वत्स लक्ष्मण!

राम–वत्स लक्ष्मण!

लक्ष्मणः–एषोऽस्मि।

लक्ष्मणः–यह (मैं) हूँ।

रामः–वत्स, अचिरादेव संपादनीयोऽस्या दोहद इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम्। तदस्खलितसंपातं रथमुपस्थापय।

राम–वत्स, अभी ही गुरुजनों से सन्देश मिला है कि गर्भवती सीता की अभिलाषा शीघ्र पूर्ण होनी चाहिए। अतः अबाध गति वाला रथ उपस्थित करो।

सीताः–आर्यपुत्र, युष्माभिरप्यागन्तव्यम्। (अज्जउत्त, तुम्हेहिं आअंदव्वं।)

सीता–आर्यपुत्र, आप भी आइयेगा।

रामः–अतिकठिनहृदये। एतदपि वक्तव्यम्।

राम–हे अत्यन्त कठोर हृदयवाली! यह भी (क्या) कथनीय है ?

सीताः–तेन हि प्रियं मे। (तेण हि पिअं मे।)

सीता–तब तो मेरे लिए प्रसन्नता (का विषय) है।

लक्ष्मणः–यदाज्ञापयत्यार्यः।

लक्ष्मण–आर्य की जैसी आज्ञा।

(इति मिष्क्रन्त)

(निकल गये)

रामः–प्रिये! वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव।

राम–प्रिये! झरोखे के निकट सो जाओ।

सीता–एवं भवतु। अपहृतास्मि खलु परिश्रमनिद्रया। (एवं होदु। ओहरिदम्हि खु परिस्सणमणिद्दाए)।

सीता–ऐसा ही हो। मैं परिश्रम से होनेवाली नींद के परवश हो गई हूँ।

रामः–तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामत्र शयनाय।

राम–तब तो यहां सोने के लिए मेरा प्रगाढ़ सहारा ले लो।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः।।34।।

अन्वय–ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहार-विभ्रमः जीवयन् इव बाहुः अधिकण्ठम् अप्यताम्।

शब्दार्थ–ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः = भय और आयास के कारण पसीने की बूंदों से युक्त, ऐन्दवमयूरवचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः = चन्द्रमा की किरणों से द्रवित होने वाले चन्द्रकान्तमणियों के हार के विलास को, जीवयन् = जीवित

करता हुआ, इव = मानो, मोति, बाहुः = भुजा, अधिकण्ठम् = गले में, अर्प्यताम् = डालो।

अनुवाद–भय और आयास के कारण पसीने की बूँदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों के संस्पर्श से पिघलने वाली चन्द्रकान्त मणियों की माला के तुल्य विलास वाली तथा मुझे मानो जीवनदात्री (अपनी) भुजा को (मेरे) गले में डाल दो।

(तथा कारयन् सानन्दम्) प्रिये किमेतत्?

(वैसा कराते हुए आनन्द के साथ) प्रिये! यह क्या है?

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो।
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।।35।।

अन्वय–तब स्पर्शे स्पर्शे परिमूढेन्द्रियगणः विकारः हि मम चैतन्यम् भ्रमयति च सम्मीलयति च सुखम् इति वा, दुःखम् इति वा, प्रमोहः निन्द्रा वा, विषविसर्पः किमु, मदः किमु, विनिश्चेतु न शक्यः। (एक अन्य प्रकार का अन्वय–सुखम् इति वा, दुःखम् इति वा, प्रमोहः निद्रा वा, किमु विषविसर्पः, किमु मदः, विनिश्चेतु न शक्यः। हि तब स्पर्शे स्पर्शे परिमूढेन्द्रियगणः विकारः मम चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च)।

शब्दार्थ–तब = तेरे, स्पर्शे स्पर्शे = प्रत्येक स्पर्श में, परिमूढेन्द्रियगणः = इन्द्रिय समूह को निश्चेष्ट बना देने वाला, विकारः = चित्त का अन्यथा भाव, मम = मेरे, चैतन्यम् = चेतना को, भ्रमयति = भ्रान्त कर देता है, च = और, सम्मीलयति = संकुचित कर देता है अथवा प्रकाशित कर देता है। सुखम् इति वा = यह सुख है, अथवा, दुःखम् इति वा = यह दुःख है, अथवा, प्रमोहः = मूर्च्छा, निद्रा वा = अथवा नींद है, विषविसर्पः किमु = विष का प्रसार है क्या, मदः किमु = उन्माद है क्या, विनिश्चेतुम् = निश्चय किये जाने के, न शक्यः = योग्य नहीं है।

अनुवाद–तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श में इन्द्रिय समूह को स्वविषय ग्रहण में असमर्थ बना देने वाला मनोविकार मेरी चेतना को (कभी) भ्रान्त कर देता है और कभी संकुचित कर देता है (कभी प्रकाशित कर देता है। वा) यह सुख है अथवा दुःख है, मूर्च्छा है अथवा नींद है, क्या यह विष का प्रसार है, अथवा उन्माद है? यह निश्चय नहीं किया जा सकता।

सीता–स्थिरप्रसादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम्। (स्थिरप्प-सादा तुम्हे इदो दाणिं किमवरम्।)

सीता–आप (मुझ पर) स्थिरस्नेह वाले हैं, अब इससे अन्य क्या (चाहिए)?

रामः–म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहकानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि,
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।36।।

अन्वय–सरोरुहाक्षि! ते एतानि सुवचनानि म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।

शब्दार्थ–सरोरुहाक्षि! हे कमलनेत्रो, ते = तुम्हारे, एतानि = ये, सुवचनानि = मधुर वचन, म्लानस्य = मुरझाए, जीवकुसुमस्य = जीवनरूपी पुष्प को, विकासनानि = विकसित करने वाले, सन्तर्पणानि = अच्छी तरह से तृप्त करने वाले, सकलेन्द्रियमोहनानि = अशेष इन्द्रयों को विह्वल कर देने वाले, कर्णामृतानि = कानों के लिए अमृत तुल्य, मनसः = मन को, रसायनानि = रसायन (रससदन)।

अनुवाद–हे कमलनेत्री! तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाए हुए जीवन पुष्प को (भी) विकसित कर देने वाले, सर्वथा तृप्ति देने वाले, अखिल इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले, एवं श्रोतों को सुधा के सदृश तथा मन को रसायन (रससदन) के तुल्य हैं।

सीताः–प्रियंवद! एहि, संविशावः। (पिअंवद! एहि, संविसम्हा)

सीता–हे मधुर भाषी! आइए, सोयें।

(इति शयनाय समन्ततो निरूपयति।)

(ऐसा कहकर सोने के लिए चारों ओर देखती है।)

रामः–अयि, किमन्वेष्टव्यम् ?

राम–हे प्रिये! क्या खोज रही हो ?

आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनु यौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यथा रामबाहुरुपधानमेष ते।।37।।

अन्वय–आविवाहसमयात् शैशवे गृहे तदनु पुनः यौवने वने स्वापहेतुः अन्यथा अनुपाश्रितः एषः रामबाहुः ते उपधानम्।

शब्दार्थ–आविवाहसमयात् = विवाह के समय से लेकर, शैशवे = बालपन में, गृहे = घर में, तदनु = तत्पश्चात्, पुनः = फिर, यौवने = युवावस्था में, वने = जंगल में, स्वापहेतुः = नींद का साधन, अन्यया = दूसरी स्त्री के द्वारा अनुपाश्रितः = सहारा न लिया गया, एषः = यह, रामबाहुः = रामकी भुजा, ते = तुम्हारा, उपघानम् = तकिया।

अनुवाद–विवाह के अवसर से लेकर बाल्यकाल में घर में, तदनन्तर फिर युवावस्था में वन में नींद का साधन तथा अन्य स्त्री के द्वारा असेवित यह राम की भुजा तुम्हारा तकिया है।

सीताः–'निद्रां नाटयन्ती' अस्त्येतत्, आर्यपुत्र! अस्त्येतत्। (अत्थि एवं, अज्जउत्त! अत्थि एदं।)

सीता–नींद का अभिनय करती हुई) ऐसा ही है, आर्यपुत्र! ऐसा ही है।

(इति स्वपिति।)

(यह कहकर सो जाती है।)

रामः–कथं प्रियवचना मे वक्षप्ति प्रसुप्तैव ?

राम–क्या प्रियभाषिणी मेरे वक्षःस्थल पर ही सो गई ?

(निर्वर्ण्य सस्नेहम्)

(प्रेमपूर्वक अवलोकन कर)

इयं गेहे लक्ष्मीरियमृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कंठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।38।।

अन्वय–इयं गेहे लक्ष्मीः, इयं नयनयोः अमृतवर्तिः, असौ अस्याः स्पर्शः वपुषि बहुलश्चन्दनरसः अयं कण्ठे (न्यस्तः) बाहुः शिशिरमसृणः मौक्तिकसरः, अस्याः किं न प्रेयः ? तु विरहः यदि परम् असह्यः।

शब्दार्थ–इयम् = यह, गेहे = घर में, लक्ष्मीः = लक्ष्मी, इयम् = यह, नयनयोः = नेत्रों में, अमृतवर्तिः = सुधानिर्मित शलाका (सींक, सलाई), असौ = यह, अस्याः = इसका (सीता का), स्पर्शः = स्पर्श, वपुषि = शरीर में, बहुलः = घना, चन्दनरसः = चन्दन का लिप्तद्रव, अयम् = यह, कण्ठे = गले में, बाहुः = भुजा, शिशिरमसृण = शीतल एवं कोमल, मौक्तिकसरः = मोतियों की माला अस्याः = इसका, किम् = क्या, प्रेयः = अत्यन्त प्यारा, न = नहीं, विरहः = वियोग, परम् = बहुत असह्यः = असहनीय।

अनुवाद–यह (सीता) घर में लक्ष्मी है, यह नेत्रों में सुधा की शलाका है, यह इसका स्पर्श शरीर में गाढ़-चन्दन द्रव है, यह गले में (रखो इसकी) भुजा शीतल और कोमल मोतियों की माला है। इसकी कौन सी वस्तु परमप्रिय नहीं है ? परन्तु (इसका) वियोग तो अत्यन्त असहनीय है।

(प्रविश्य)

(प्रवेश कर)

प्रतीहारीः–देव! उपस्थितः। (देव! उवट्ठिहो।)

प्रतीहारी–महाराज! उपस्थित है।

रामः–अयि! कः ?

राम–अरे, कौन ?

प्रतीहारीः–आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः।

(आसण्णपरिआरओ देवस्स दुम्नुहो।)

प्रतीहारी–महाराज का समीपवर्ती सेवक दुर्मुख।

रामः–(स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः। स मया पौरजान-पदेष्वपसर्पः प्रहितः। (प्रकाशम्) आगच्छतु।

राम–(अपने आप) दुर्मुख तो अन्तःपुर में आता-जाता है, वह मेरे द्वारा नागरिकों एवं ग्रामीणों में गुप्तचर के रूप में भेजा गया था। (प्रकृत) आने दो।

(प्रतीहारी निष्क्राता।)

(प्रतीहारी निकल गई।)

(प्रविश्य)

(प्रवेश कर)

दुर्मुखः–(स्वगतम्) हा, कथमीदानीं देवीमन्तरेणेद्दशमचिन्त-नीयम् जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि ? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेपस्यैषः। (हा, कहं दाणिं देवीं अंतरेण ईरिसं अचिंत-णिज्जं जणाववादं देवस्स कहइस्सं ? अहवा णिओओ खु मह मंदभाअहेअस्त एसो।)

दुर्मुख–(अपने आप) हाय, मैं कैसे इस समय देवी सीता के संबंध में ऐसा अचिन्तनीय लोकापवाद महाराज से निवेदन करूँ ? अथवा मुझ हतभाग्य का यही कर्तव्य है।

सीताः–(उत्स्वप्नायते) आर्यपुत्र! कुत्रासि ?

सीता–(स्वप्न में कहती है) आर्यपुत्र! आप कहाँ हैं ?

रामः–सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्वेगं करोति।

राम–यह वही उद्विग्न करने वाली चित्रदर्शनजन्य वियोगचिन्ता सीता को स्वप्न में बोलने के लिए व्याकुल करती है।

(सस्नेहमङ्गमस्याः परामृशन्)

(प्रेम के साथ सीता का अंग स्पर्श करते हुए)

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामी हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थित
भद्रं तस्य सुभानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते।।39।।

शब्दार्थ–यत् = जो, सुखदुःखयोः = सुख तथा दुःख में, अद्वैतम् = एकरूप, सर्वासु = सभी, अवस्थासु = अवस्थाओं में (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि में), अनुगतम् = अनुसरण करता है, यत्र = जिसमें, हृदयस्य = अन्तःकरण को, विश्रामः = सुख

होता है, यस्मिन् = जिसमें, रसः = आनन्दः, अहार्यः = न हरा जा सकने योग्य, अरसा = वृद्धावस्था से, यत् = जो, कालेन = समयानुसार, आवरणात्ययात् = लज्जादि आवरण हट जाने से अथवा विवाह से मृत्युपर्यन्त, परिणते = परिपक्व, प्रेमसारे = स्नेह के सारभाग में, स्थितम् = स्थित रहता है, तस्य = उस, सुमानुषस्य = दाम्पत्य का अथवा सत्पुरुष का, तत् = वह, एकम् = अनुपम, भद्रम् = सौभाग्य, कथमपि = किसी प्रकार से, प्राप्यते = प्राप्त किया जाता है।

अनुवाद–जो (दाम्पत्य प्रेम) सुख और दुःख में एकरूप रहता है, सभी अवस्थाओं में अनुसरण करता है, जिसमें हृदय को शान्ति मिलती है, जिसमें आनन्द को वृद्धावस्था भी नहीं दूर कर सकती है, जो समयानुसार विवाह से मरण तक परिपक्व स्नेह के सारतत्त्व में स्थित रखता है, उस दाम्पत्य प्रेम का वह अनिर्वचनीय सौभाग्य किसी प्रकार से प्राप्त किया जाता है।

दुर्मुखः–(उपसृत्य) जयत देवः। (जेदु देवो।)

दुर्मुख–(समीप जाकर) महाराज की जय हो।

रामः–ब्रूहि यदुपलब्धम्।

राम–जो कुछ ज्ञात हो, कहो।

दुर्मुखः–उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदाः, यथा विस्मारिता वयं महाराजदशरथस्य रामदेवेनेति। (उवट्ठुवन्ति देवं पौरजाणपदा, जहा विसुमरिदा अह्मे महाराअवसरहस्स रामदेव्वेणेत्ति।)

दुर्मुख–नगरनिवासी एवं ग्रामवासी लोग महाराज की प्रशंसा करते हैं कि राजा राम ने हम लोगों से महाराज दशरथ को विस्मृत करा दिया।

रामः–अर्थवाद एवैषः। दोषं तु मे कथंचित्कथय, येन स प्रतिविधीयते।

राम–यह तो प्रशंसा ही है। मेरी कोई त्रुटि बतलाओ, जिससे उसका निवारण किया जाए।

दुर्मुखः–(सास्रम्) शृणोतु महाराजः (कर्णौ) एवमिव। (सुणादु महाराओ। (कर्णौ) एव्वं विअ।)

दुर्मुख–(आँसुओं के साथ) महाराज! सुनें। (कान में) इस भाँति है।

रामः–अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः।

राम–आह, यह वाणी वज्रवत अत्यन्त तीक्ष्ण है।

(इति मूर्च्छति।)

(यह कहकर मूर्च्छित होते हैं।)

दुर्मुखः–आश्वसितु देवः। (आस्ससदु देवो।)

दुर्मुख–महाराज! धैर्य धारण करिए।

रामः–(आश्वस्य)

राम–(आश्वस्त होकर)

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं यद्
वैवेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत् पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसप्तम।।40।।

अन्वय–हा हा धिक्, वैदेह्याः यत् परगृहवासदूषणम् अद्भुतैः उपायैः प्रशमितं, तत् एतत् पुनरपि दैवदुर्विपाकात् आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्।

शब्दार्थ–हा हा = हाय हाय, धिक् = धिक्कार है, वैदेह्याः = परगृहवास-दूषणाम् = दूसरे के घर में रहने का कलंक, अद्भुतै = विस्मयकारक, उपायैः = माध्यमों से, साधनों से, प्रशमितम् = शान्त कर दिया गया, तत् = वह, एतत् = यह, पुनरपि = फिर से, दैवदुर्विपाकात् = भाग्य की प्रतिकूलता से, आलर्कम् = पागल कुत्ते के, विषमिव = विष की भाँति, सर्वतः = सर्वत्र, प्रसृप्तम् = फैला गया है।

अनुवाद–हाय, हाय, धिक्कार है। जानकी के दूसरे के घर में निवास करने के जिस कलंक को विस्मय कर प्रयासों से निवारित कर दिया गया था, वह यह फिर से भाग्य की प्रतिकूलता के कारण पागल कुत्ते के विष के समान सर्वत्र फैल गया है।

तत्किमत्र मन्दभाग्यः करोमि ? (विमृश्य, सकरुणम्) अथवा किमन्यत्।

तो मैं अभागा इस विषय में क्या करूँ ? (विचार कर, करुणापूर्वक) अथवा और क्या–

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
तत् पूरितं हि तातेन माञ्च प्राणांश्च मुञ्चता।।41।।

अन्वय–केनापि कार्येण लोकस्य आराधनं सतां व्रतम्। हि माञ्च प्राणांश्च मुञ्चता तातेन तत् पूरितम्।

शब्दार्थ–केनापि = किसी भी, कार्येण = कार्य से, लोकस्य = प्रजा का, आराधनम् = अनुरञ्जन, सताम् = सज्जनों का, व्रतम् = अनुष्ठान है। माम् = मुझको, प्राणाम् = प्राणों को, मुञ्चता = छोड़ते हुए, तातेन = पिता जी ने, तत् = वह, पूरितम् = पूरा किया है।

अनुवाद = किसी भी प्रयास से प्रजा का अनुरंजन, सज्जनों का धर्म है। मुझे और प्राणों को छोड़ते हुए पिताजी ने उसे निभाया है।

सम्प्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्।

अभी भगवान् वशिष्ठ ने संदेश भेजा है। और भी–

यत् सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै-
र्लोकश्रेष्ठैः साधु शुद्धं चरित्रम्।

मत्संबंधात्कश्मला किंवदन्ती
स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिङ्मामधन्यम्।।42।।

अन्वय–लोकश्रेष्ठैः सावित्रैः भूमिपालैः यत् साधु शुद्धं चरित्रं दीपितम्। चेत् अस्मिन् मत्सम्बन्धात् कश्मला किंवदन्तीं स्यात् हन्त अधन्यं मां धिक्।

शब्दार्थ–लोकश्रेष्ठैः संसार में उत्तम, सावित्रै = सूर्यवंशी, भूमिपालैः = नरेशों ने, यत् = जो, साधु = सत्, शुद्धम् = पवित्र, चरित्रम् = आचार, दीपितम् = प्रकाशित किया, चेत् = यदि, अस्मिन् = इसमें, मत्सम्बन्धात् = मेरे सम्पर्क से, कश्मला = मलिन, किंवदन्ती = जनश्रुति, स्यात् = होवे, हन्त = खेद, अधन्यम् = पुण्यहीन, माम् = मुझको, धिक् = धिकाकर है।

अनुवाद–जगत् में उत्तम सूर्य वंशी नरेशों ने जो सत् एवं पूत आचार प्रकाशित किया है, यदि उसमें, मेरे कारण मलिन जनश्रुति हो जावै, (तो) हाय, मुझ पुण्यहीन को धिक्कार है।

हा देवि देवयजनसंभवे! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे! हामुर्निजननन्दिनि! हापावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशांलिनि। हा राम-मयजीविते! हा महारण्यवासप्रियसखि! हा तातप्रिये! हा स्तोकवादिनि! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?

अनुवाद–हा देवि यज्ञ स्थल से उत्पन्न होने वाली। हा अपने जन्म रूपी अनुग्रह के द्वारा पृथ्वी को पवित्र करने वाली! हा मुनिजनों को आनन्द देने वाली! हा अग्नि, वसिष्ठ एवं अरुन्धती से प्रशंसितशील धारण करने वाली! हा राममय-प्राणों वाली! हा विशाल वनों में निवासकाल की प्रिय सहचर! हा पितृनन्दिनि हा मितभाषिणि! इस प्रकार का तुम्हारा यह ऐसा परिणाम क्यों ?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।।43।।

अन्वय–त्वया जगन्ति पुण्यानि, त्वयि जनोक्तयः अपुण्याः। त्वया लोकाः नाथवन्तः, त्वम् अनाथा विपत्स्यसे।

शब्दार्थ–त्वया = तुमसे, जगन्ति = तीनों लोक, पुण्यानि = पवित्र, त्वयि = तुम्हारे संबंध में, जनोक्तयः लोगों के वचन, अपुण्याः = अपवित्र, त्वया = तुमसे, लोकाः = लोग, नाथवन्तः = सनाथ, त्वम् = तुम, अनाथा = स्वामी से रहित, विपत्स्यसे विपत्ति में पड़ोगी।

अनुवाद–तुमसे तीनों लोक पवित्र हैं, तुम्हारे संबंध में लोगों के कथन अपवित्र हैं। तुमसे संसार सनाथ है (किंतु) तुम स्वामी से रहित होकर विपत्ति में पड़ोगी।

(दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख! ब्रूहि लक्ष्मणम्। एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति। (कर्णे) एवमेवम् इति।

(दुर्मुख से) दुर्मुख। लक्ष्मण से कहो। यह नया नरेश राम आज्ञा देता है। (कान में) ऐसा ऐसा।

दुर्मुख,–हा, कथमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थितपवित्रसन्तानाया देव्या दुर्जतवचनादिदं व्यवसितं देवेन ? (हा, कहं अग्गिपरि सुद्धाए गब्भट्ठिदपवित्तसंताणाए देवीए दुज्जणवअणादो एदं ववसिदं देवेण)

दुर्मुख–हाय, अग्नि-परीक्षा से विशुद्ध तथा गर्भ में जिसके पवित्र संतान है ऐसी देवी (सीता) के विषय में (किसी) दुर्जन के कथन से ही महाराज ने यह परित्याग का) निश्चय कैसे कर लिया है ?

रामः–शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदाः।

राम–पाप शांत हो, पाप शांत हो। क्या नागरिक और ग्रामीण लोग दुर्जन हैं ?

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्।।44।।

अन्वय–इक्ष्वाकुवंशः प्रजानाम् अभिमतः दैवात् वचनीयबीजं च जातम्, विशुद्धिकाले यच्च अद्भुतं कर्म, तत् यदि दूरवृत्तं कः प्रत्येतु ?

शब्दार्थ–इक्ष्वाकुवंश = इक्ष्वाकु का कुल, प्रजानाम् = जनता को, अभिमतः = अभीष्ट, दैवात् = भाग्यवश, वचनीयबीजम् = लोकापवाद का कारण, जातम् = उत्पन्न हो गया, विशुद्धिकाले = अग्निपरीक्षा के समय, यत् = जो, अद्भुतम् = विचित्र, कर्म = घटना, तत् = वह, दूरवृत्तम् = बहुत दूर हुआ कः = कौन, प्रत्येतु = विश्वास करे।

अनुवाद–इक्ष्वाकु का कुल जनता को अभिलषित है, (किंतु) दुर्भाग्य से लोकापवाद का कारण आविर्भूत हुआ है। अग्निपरीक्षा के समय जो अलौकिक घटना घटी, वह यदि दूर हुई है (तो) कौन विश्वास करेगा ?

तद् गच्छ।

इसलिए जाओ।

दुर्मुखः–हा देवि। (हा देइ)

दुर्मुख–हा देवि।

(इति निष्क्रान्तः।)

(निकल गया।)

रामः–हा कष्टम्! अतिबीभत्सकर्मानृशंसोऽस्मि संवृत्तः।

राम–हाय, अति दुःख की बात है। मैं अत्यन्तघृणित कर्म करने वाला क्रूर हो गया हूँ।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिके गृहशकुन्तिकामिव।।45।।

अन्वय–शैशवात् प्रभृति पोषितां सौदृदात् अपृथगाश्रयाम् इमां प्रियां सौनिके गृहशकुन्तिकाम् इव छद्मना मृत्यवे परिददामि।

शब्दार्थ–शैशवात् = वालकपन से, प्रभृति = लेकर, पोषिताम् = पाली गई, सौहृदात् = स्नेह के कारण, अपृथगाश्रयाम् = अभिन्न आश्रय वाली, इमाम् = इसको, प्रियाम् = प्रिय सीता को, सौनिके = कसाई के लिए, गृहशकुन्तिकाम् = घर में पली चिड़िया को, इव = जैसे, छद्मना = छल से, मृत्यवे = मृत्यु के लिए, परिददामि = देता हूँ।

अनुवाद–बाल्यावस्था से पाली गई तथा स्नेह के कारण कभी अलग न रहने वाली इस प्रियतमा (जानकी) को, कसाई के लिए घर की पली चिड़िया की भाँति, छल से मृत्यु के लिए समर्पित कर रहा हूँ।

तत्किमस्पृश्यः पातको देवीं दूषयामि। (इति सीतायाः शिरः समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)।

तो अछूत पातकी मैं देवी सीता को (अपने स्पर्श से) क्यों दूषित करूँ ? (यह कहकर सीता के शिर को उठाकर अपना हाथ खींचकर)

अपूर्वकर्मचाण्डालमयि मुग्धे! विमुञ्च माम्।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।।46।।

अन्वय–अयि मुग्धे! अपूर्वकर्मचाण्डालं मां विमुञ्च, चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमं श्रिता असि।

शब्दार्थ–अयि = अरी, मुग्धे = भोली, अपूर्वकर्मचाण्डालम् = असाधारण कार्य करने के कारण अन्त्यज, माम् = मुझको, विमुञ्च = छोड़ दो, चन्दनभ्रान्त्या = चन्दन तरु के भ्रम से, दुर्विपाकम् = बुरे परिणाम वाले, विषद्रुमम् = विषवृक्ष को, श्रिता = आश्रय लिया, असि = हो।

अनुवाद–अरी भोली सीता! असाधारण कार्य करने वाले श्वपचतुल्य मुझको छोड़ दो। चन्दन (वृक्ष) के भ्रम से कष्ट कर विषवृक्ष का आश्रय (तुम) लिये हो।

(उत्थाय) **हन्त हन्त, सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि ? का गतिः ? अथवा–**

(उठकर) हाय! हाय! आज (इस समय) यह संसार उलट-पलट सा हो गया है। आज राम के जीवन को आवश्यकता समाप्त हो गई है। अब यह संसार जीर्ण वन के तुल्य सूना हो गया है। यह संसार निस्सार हो गया है। शरीर काष्ठवत् हो गया है। मैं (अब) असहाय हूँ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अथवा–

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम्।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि।।47।।

अन्वय–दुःखसंवेदनाय एवं रामे चैतन्यम् आगतम्। मर्मोपघातिभिः प्राणैः हृदि वज्रकीलायितम्।

शब्दार्थ–दुःखसंवेदनाय = दुःखानुभूति के लिए, एव = ही, रामे = राम में, चैतन्यम् = संज्ञा, आगतम् = आ गई है, मर्मोपघातिभिः = मर्मस्थल पर प्रहार करने वाले, प्राणैः = प्राणों से, हृदि = हृदय में, वज्रकीलायितम् = कुलिश की कील का सा आचरण हुआ है।

अनुवाद–पीड़ा का अनुभव करने के लिए ही राम में चेतना आई है। मर्मस्थल पर आघात करने वाले प्राणों ने हृदय में कुलिश की कील का कार्य किया है।

हा अम्ब अरुन्धति, भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ, भगवन् पावक, हा देवि भूतधात्रि, हा तात जनक, हा मातः, हा प्रियसखे महाराज सुग्रीव, सौम्य हनूमन्, महोपकारिन् लङ्काधिपते विभीषण, हा सखि त्रिजटे, परिमुषिताः स्थ, परिभूताःस्थ, रामहतकेन। अथवा को नाम तेषामहमिदानीमहाह्वाने ?

हा दाता अरुन्धती! हा भगवान् वसिष्ठ और विश्वामित्र! हा अग्निदेव! हा देवी पृथ्वी! हा तात जनक! हा माता! हा प्रियमित्र सुग्रीव! हा सौम्य हनुमान्! हा महापरोपकारी लंकापति विभीषण! हा सखी त्रिजटा! आप सब लोग पापी राम के द्वारा वंचित और तिरस्कृत किये गए हैं। अथवा अब उनको बुलाने का मुझे क्या अधिकार है ?

ते हि मन्ये महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना।
मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्त इव पापमना।।48।।

अन्वय–हि ते महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना मया गृहीतनामानः पाप्मना स्पृश्यन्त इव मन्ये।।48।।

शब्दार्थ–ते = वे, महात्मानः = महापुरुष, कृतघ्नेन = अकृतज्ञ, दुरात्मना = दुष्ट, मया = मुझसे, गृहीतनामानः = नाम लिए गए, पाप्मना = पापी से, स्पृश्यन्ते = छू जाते हैं, इव = ऐसा, मन्ये = मानता हूँ।

अनुवाद–क्योंकि वे महापुरुष अकृतज्ञ तथा दुष्ट मुझसे नाम लिए गए मानो पाप से छू जाते हैं, (मैं) ऐसा समझता हूँ।

योऽहम्–

जो मैं–

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा–
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि।।49।।

अन्वय–दारुणः (सन्) विस्रम्भात् उरसि निपत्य जातनिद्राम्

आतङ्कस्फुरित-कठोरगर्भगुर्वीं गृहस्य लक्ष्मीं प्रियगृहिणीम् उन्मुच्य क्रव्यादृभ्यः बलिम् इव क्षिपामि।

शब्दार्थ–दारुणः = क्रूर, विस्रम्भात् = विश्वास से, उरसि = वक्षस्थल में, निपत्य = पड़कर, जातनिद्राम् = सोई हुई, आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीम् = उद्वेग के कारण कांपते हुए पूर्णागर्भ के कारण भारवती, गृहस्य = घर की, लक्ष्मीम् = लक्ष्मी को, प्रियगृहिणीम् = प्रियपत्नी, को उन्मुच्य = त्यागकर, क्रव्यादृभ्यः = मांसाहारीहिंसकों के लिए, बलिम् = उपहार की भाँति, क्षिपामि दे रहा हूँ।

अनुवाद–क्रूर मैं, विश्वास के साथ वक्षस्थल पर लेटकर सोई हुई तथा उद्वेग के कारण कंपितपूर्ण गर्भ के भार से युक्त घर की लक्ष्मी प्रिय-पत्नी को अलग करके मांसाहारी हिंसकों के लिए उपहार की भाँति दे रहा हूँ।

(सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसा-पादपङ्कजस्पर्शः। (इति रोदिति।)

(सीता के चरणों को शिर पर रखकर) राम के मस्तक के द्वारा यह तुम्हारे चरणकमलों का अन्तिम स्पर्श है। (यह कहकर रोने लगते हैं)।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्।

ब्राह्मणों का अमंगल, ब्राह्मणों का अशुभ।

रामः–ज्ञायतां भोः। किमेतत्?

राम–अरे! पता लगावो, यह क्या है ?

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितः स्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः।।50।।

अन्वय–यमुनातीरवासिनाम् उग्रतपसाम् ऋषीणां स्तोमः लवण–त्रासितः (सन्) त्रातारं त्वाम् उपस्थितः।

शब्दार्थ–यमुनातीरवासिनाम् = यमुना के किनारे रहने वाले, उग्रतपसाम् = कठिन तपस्या करने वाले, ऋषीणाम् = मुनियों का, स्तोमः = समूह, लवण-त्रासितः लवणासुर से सताया गया, त्रातारम् = रक्षक, त्वाम् = तुम्हारे समीप, उपस्थितः = आया है।

अनुवाद–कालिन्दी के किनारे निवास करने वाले कठिन तपस्या करने वाले मुनियों का समूह लवणासुर से भयभीत होकर रक्षक आपके निकट आया है।

रामः–कथमद्यापि राक्षसत्रासः? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि। (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य) हा देवि, कथमेवंविधा गमिष्यसि? भगवति वसुन्धरे, सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्।

राम–क्या अब भी राक्षसों का भय है ? अच्छा, कुम्भीनसी के पुत्र इस दुरात्मामधुरा (मथुरा)–पति लवण को नष्ट करने के लिए शत्रुघ्न को भेजता हूँ। (घूमकर और फिर लौटकर) हाय देवी, ऐसी अवस्था में तुम कैसे जाओगी ? भगवती वसुन्धरे! तुम अपनी प्रशंसनीय पुत्री (जानकी) की देख-रेख करना।

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्।
यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजनः।।50।।

अन्वय–यत् जनकानां रघूणां च कृत्स्नं गोत्रमंगलम्। पुण्यशीलां यां पुण्ये देवयजने (त्वम्) अजीजनः।

शब्दार्थ–यत् = जो, जनकानाम् = जनकवंश के लोगों का, रघूणाम् = रघुवंश के लोगों काः कृत्स्नम् = सम्पूर्ण, गोत्रमंगलम् = कुलकल्याण, पुण्य-शीलाम् = पवित्र आचरण वाली, याम् = जिसको, पुण्ये = पवित्र, देवयजने = यज्ञभूमि में, अजीजनः = उत्पन्न किया।

अनुवाद–जो (सीता) जनकवंशियों तथा रघुवंशियों के लिए अखिल कुल कल्याण है और पवित्र आचरण वाली जिसकी पवित्र यज्ञभूमि में तुमने जन्म दिया है।

(इतिरुदन्निष्क्रान्तः।)

(यह कहकर रोते हुए निकल गये।)

सीता–हा सौम्य आर्यपुत्र, कुत्रासि ? (इति सहसोत्थाय) हा धिक्, हा धिक्, दुःस्वप्नरणरणाकविप्रलब्धा आर्यपुत्र शून्यमिवात्मानं पश्यामि। (विलोक्य) हा धिक् हा धिक् एकाकिनीं प्रसुप्तां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथः ? भवतु, तस्मै कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि! कोऽत्रपरिजनः ? (हा सोम्ह अज्जउत्त, कहिं सि ? (इति सहसोत्थाय) हद्धी हद्धी, दुस्सिविणरणरण-अविप्पलद्धा अज्जउत्तसुण्णं विव अत्ताणं पेक्खामि। (विलोक्य) हद्धी, हद्धी, एआइणिं पसुत्तं मं उज्झिअ कहिं गदो णाहो ? होदु, से कुपिस्सं जइ तं पेक्खंती अत्तणो पह विस्सं, को एत्थ परिअणो ?)

हा सौम्य आर्य पुत्र! कहाँ हैं ? (यह कहती हुई एकाएक उठकर) हाय धिक्कार है! हा धिक्कार है! दुःस्वप्न में उद्वेग से वंचित होकर अपने को आर्यपुत्र से शून्य की भाँति देख रही हूँ। (देखकर) हाय धिक्कार है! हाय धिक्कार है! अकेली सोयी हुई मुझे छोड़कर नाथ कहाँ चले गये ? अस्तु यदि उनको देखती हुई मैं अपने को नियंत्रण में रख सकी तो उन पर क्रोध करूँगी। यहाँ कौन सेवक है ?

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

दुर्मुखः–देवि कुमार लक्ष्मणो विज्ञापयति–'सज्जो रथः। तंदा-रोहतु देवी इति। (देवि कुमार लकखणो विण्णवेदि–'सज्जो रहो। तं आरुहदु देवी त्ति।)

दुर्मुख–देवि कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि रथ तैयार है। महारानी उस पर चढ़े।

सीताः–इयमारूढास्मि। (उत्थाय परिक्रम्य) स्फुरति में गर्भ-भारः। शनैर्गच्छामः। (इअं आरूढन्हि। (उत्थाय परिक्रम्य) फुरइ में गब्भभारो। सणिअं गच्छम्ह।)

सीता–मैं अभी चढ़ती हूँ। (उठकर और थोड़ा घूमकर) मेरा गर्भ भार (गर्भस्थ शिशु) फड़क रहा है। धीरे-धीरे चलें!

दुर्मुखः–इतो-इतो देवी। (इदो-इदो देवी।)

दुर्मुख–इधर से देवी, इधर से।

सीताः–नमो रघुकुलदेवताभ्यः। (णमो रहुउल देवदाणं)।

सीता–रघुकुल के देवताओं को नमस्कार है।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे।)

(इसके पश्चात् सब निकल जाते हैं)।

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते उत्तररामचरिते
चित्रदर्शनो नाम प्रथमोऽङ्कः।।1।।

द्वितीयोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

स्वागतं तपोधनायाः।

तपस्विनी का स्वागत है।

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषा तापसी)

(तदनन्तर पथिक के वेश में तापसी (आत्रेयी) प्रवेश करती है।)

तापसी–अये, वनदेवताफलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण दूरान्मामुपतिष्ठते।

तापसी–अरे बनदेवता फल, फूल और पल्लव-युक्त अर्घ्य से दूर से ही मेरा स्वागत कर रही है।

(प्रविश्य)

(प्रविष्ट होकर)

वनदेवता–(अर्घ्यं विकीर्य)

वनदेवता–(अर्घ्य देकर)

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः
सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।
तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं
फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः।।1।।

अन्वय–इदं वनं वः यथेच्छाभोग्यम्, अयं मे सुदिवसः, हि सतां सद्भिः सङ्ग कथमपि पुण्येन भवति। तरुच्छाया, तोयं यदपि तपसां योग्यम् अशनं फलं वा मूलं वा, तदपि इह वः पराधीनं न।

शब्दार्थ–इदम् = यह, वनम् = अरण्य, वः = आपके, यथेच्छाभोग्यम् = इच्छानुसार उपभोग करने योग्य, अयम् = यह, मे = मेरा, सुदिवसः = शुभदिन, हि = क्योंकि सताम् = सज्जनों का, सद्भिः = सज्जनों से, सङ्गः = साथ, कथमपि = किसी प्रकार से, पुण्येन = सुकृत से, भवति = होता है, तरुच्छाया = वृक्षों की छाया, तोयम् = जल, यदपि = यद्यपि, तपसाम् = तपस्या के, योग्यम् = अनुकूल,

अशनम् = भोजन, फलम = फल, मूलम् = कन्दादि, तदपि = फिर भी, इह = यहां, वः = आपके लिए, पराधीनम् = परवश, न = नहीं है।

अनुवाद–यह अरण्य आपके इच्छानुसार उपभोग के योग्य है। आज मेरा शुभदिन है, क्योंकि सज्जनों का सज्जनों से समागम किसी प्रकार से सुकृत से होता है। वृक्षों की छाया जल और जो भी तपस्या के अनुकूल भोजन, फल तथा कन्दादि (वह सब) यहाँ आपको परतन्त्र नहीं है।

तापसी–किमत्रोच्यते ?

तापसी–इस संबंध में क्या कह सकते हैं ?

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचिनियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्ध विजयते।।2।।

अन्वय–साधूनां वृत्तिः प्रियप्राया, वाचि नियमः, विनयमधुरः, मतिः प्रकृत्या कल्याणी, परिचयः अनवगीतः, तत् इदं पुरो वा पश्चाद्वा अविपर्यासित-रसम् अनुपधि विशुद्धं रहस्यं विजयते।

शब्दार्थ–साधूनाम् = सज्जनों का, वृत्तिः = व्यवहार, प्रियप्राया = आह्लाद-कारक, वाचि = वाणी में, नियमः = संयम, विनयमधुरः = नम्रता से = हृदयग्राही, मतिः = बुद्धि, प्रकृत्या = स्वभाव से, कल्याणी = मंगलकारिणी, परिचयः = पहचान, अनवगीतः = अनिन्दित, तत् इदम् = वह यह (मिलन), पुरो वा पश्चाद्वा = पहले अथवा पीछे, अविपर्यासितरसम् = अपरिवर्तित अनुराग वाला, अनुपधि = निश्छल, विशुद्धम् = पवित्र, रहस्यम् गूढ़ चरित्र, विजयते = सर्वोत्कृष्ट होता है।

अनुवाद–सज्जनों का व्यवहार सुखदायी होता है, वाणी में संयम, विनम्रता के साथ मधुर होता है। बुद्धि स्वभाव से मंगलकारिणी होती है, परिचय निष्कलुष होता है। वह यह पहले अथवा पीछे, समान रसवाला, निश्छल एवं निर्मल (उसका) गूढ़ चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है।

(उपविशतः)

(दोनों बैठती हैं)

वनदेवताः–कां पुनरत्रभवतीमवगच्छामि ?

वनदेवता–मैं आपको कौन (किस नाम वाली) समझूँ ?

तापसीः–आत्रेय्यस्मि।

तापसी–मैं आत्रेयी हूँ।

वनदेवताः–आर्ये आत्रेयि, कुतः पुनरिहागम्यते ? किं प्रयोजनो दण्डकारण्योपवनप्रचारः ?

वनदेवता–हे आर्ये आत्रेयि! आप कहाँ से आ रही हैं ? दण्डकारण्य के उपवन में घूमने का आपका क्या उद्देश्य है ?

आत्रेयीः–

आत्रेयी–

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।।3।।

अन्वय–अस्मिन् प्रदेशे अगस्त्य प्रमुखाः भूयांस उद्गीथविदो वसक्ति। तेभ्यो निगमान्त विद्यम् अविगन्तुम् इह वाल्मीकि पार्श्वात् पर्यटामि।

शब्दार्थ–अस्मिन् इस, अगस्त्यप्रमुखा = अगस्त्य आदि। प्रदेशे = प्रदेश में, भूयांसः = अनेक, उद्गीथविदः = ब्रह्म को जानने वाले, वेद को जानने वाले, वसन्ति = रहते हैं। तेभ्यः = उनसे, अधिगन्तुम् = प्राप्त करने के लिए, निगमान्तविद्यां = ब्रह्म विद्या अथवा वेदान्त विद्या को, वाल्मीकिपार्श्वाद = वाल्मीकि के पास से, इह = यहाँ, पर्यटामि = भ्रमण करती हूँ।

अनुवाद–इस प्रदेश में अगस्त्य आदि बहुत से ब्रह्म-वेत्ता ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त विद्या का अध्ययन करने के लिए वाल्मीकि जी के पास से यहाँ आ रही हूँ।

वनदेवताः–यदा तावदन्येऽपि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते, तत् कोऽयमार्यायाः प्रवासः ?

वनदेवताः–जब अन्य मुनिगण भी सम्पूर्ण वेद अथवा वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हीं प्राचीन वेदाध्यापक वाल्मीकि मुनि की आराधना (सेवा) करते हैं, तथा आर्या (आप) का यह प्रवास क्यों है ?

आत्रेयीः–तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः

आत्रेयी–वहाँ (ऋषि बाल्मीकि के आश्रम में) पढ़ाई में बड़ा विघ्न हो रहा था, इसलिए बड़ा प्रवास स्वीकार किया है।

वनदेवताः–कीदृशः ?

वनदेवता–(विघ्न) कैसा ?

आत्रेयीः–तत्र भगवतः केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रदाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रकेवयसि वर्तमानं दारकद्वयमुपनीतम्। तत्खलु न केवलं तस्य, अपि तु तिरश्चामप्यन्तः करणानि तत्वान्युपस्नेहयति।

आत्रेयी–वहाँ वाल्मीकि के आश्रम में किसी देवता विशेष ने सभी प्रकार से आश्चर्यजनक एवं दूध छोड़ने मात्र की आयु वाले दो शिशुओं को भगवान् वाल्मीकि के पास छोड़ दिया है। वे शिशु केवल उन्हीं (वाल्मीकि) के नहीं अपितु पशु-पक्षियों के अंतःकरण रूप तत्त्वों को स्नेह-सिक्त करते रहते हैं।

वनदेवताः—अपि तयोर्नामसंज्ञानमस्ति ?

वनदेवता—क्या आपको उन दोनों के नाम ज्ञात हैं ?

आत्रेयीः—तयैव किल देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः।

आत्रेयी—वह देवता उन दोनों के कुश और लव-ये नाम तथा प्रभाव भी बता गए हैं।

वनदेवताः—कीदृशः प्रभावः ?

कैसा प्रभाव ?

आत्रेयी—तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि जन्मसिद्धानीति।

आत्रेयी—उन दोनों को मन्त्र समेत जृम्भक अस्त्र जन्म से ही सिद्ध हैं।

वनदेवताः—ओह! यह (जृम्भकास्त्रों का जन्म-सिद्ध होना) बड़े आश्चर्य की बात है।

आत्रेयीः—तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मतः परिगृह्य पोषितौ रक्षितौ च। निर्वृत्तचौलकर्मणोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः। तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ। न त्वेताभ्यामतिदीप्तप्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति। यतः—

आत्रेयी—धाय का काम स्वीकार कर भगवान् वाल्मीकि ने उन दोनों का पालन-पोषण किया और चूड़ाकर्म संस्कार हो जाने के पश्चात् उन्हें वेद छोड़कर इतर तीन विद्याएँ (आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति) सावधानी से पढ़ाया। तत्पश्चात् भगवान् (बाल्मीकि) ने ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय-विधान के अनुसार (उनका) उपनयन संस्कार कराकर वेदाध्ययन कराया। किंतु प्रखर बुद्धि वाले, इन दोनों के साथ हम लोगों का पढ़ना असम्भव है। क्योंकि—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति, तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्ब ग्राहे मणिर्न मृदादयः।।4।।

अन्वय—गुरुः यथा प्राज्ञे तथैव जडे विद्या वितरति, तु तयोर्ज्ञाने शक्तिं न करोति वा न अपहन्ति, खलु फलं प्रति पुनः भूयान् भेदो भवति हि, तद् यथा शुचिः मणिः बिम्बग्राहे प्रभवति मृदादयः न।

शब्दार्थ—गुरुः = आचार्य, यथा = जैसे, प्राज्ञे = बुद्धिमान् (शिष्य में) तथैब = उसी तरह, जडे = मन्दबुद्धि, विद्याम् = विद्या को, वितरति = प्रदान करता है। तयोः = उन दोनों (प्राज्ञ तथा जड़मति), ज्ञाने = ज्ञान में, शक्तिम् = शक्ति, न करोति = नहीं करता है, वा = अथवा, न अपहन्ति = नष्ट नहीं करता। खलु = निश्चय ही, फलम् प्रति = फल के प्रति, पुनः = फिर भी, भूयान् = बहुत

अधिक, भेदः = वैषम्य, भवति = होता है। तद् यथा = वह जिस प्रकार, शुचिः = स्वच्छ, मणिः = रत्न, बिम्बग्राहे = प्रतिबिम्ब के ग्रहण करने में, प्रभवति = समर्थ होता है, मृदादयः = मिट्टी आदि, न = नहीं (समर्थ होते)।

अनुवाद–गुरु जिस प्रकार बुद्धिमान् शिष्य को विद्या प्रदान करता है, उसी प्रकार मन्दबुद्धि को भी, किंतु उन दोनों के ज्ञान में स्थित शक्ति को न तो उत्पन्न करता है और न नाश करता है; तो भी उन दोनों के फल (ज्ञानार्जन) के प्रति वैषम्य (भेद) हो जाता है। जैसे स्वच्छ मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होती है, मिट्टी आदि पदार्थ नहीं।

वनदेवताः–अयमध्ययनप्रत्यूहः ?

वनदेवता–अध्ययन में यह विघ्न है ?

आत्रेयीः–अन्यश्च।

आत्रेयी–दूसरा भी (विघ्न) है।

वनदेवता–अथापरः कः ?

वनदेवता–दूसरा क्या (विघ्न) है।

आत्रेयी–अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः। तत्र युग्मचारिणोः क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन वध्यमानं ददर्श। आकस्मिकप्रत्यवभासां देवीं वाचमानुष्टुभेन छन्दसा परिणातामभ्युदैरयत्–

आत्रेयी–तदनन्तर एक दिन वे ब्रह्मर्षि (वाल्मीकि) मध्याह्नकालीन स्नान करने के लिए तमसा नदी में गए। वहाँ (उन्होंने) साथ-साथ विचरण करते हुए दो क्रौंच (नर और मादा) पक्षियों में से एक (नर क्रौंच) को व्याध द्वारा मारा जाता हुआ देखा। उस समय अकस्मात् आविर्भूत एवम् अनुष्टुप् छन्द में परिणत वाग्देवी का उन्होंने उच्चारण किया।

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।5।।

अन्वय–निषाद! त्वं शाश्वतीः समाः प्रतिष्ठां मा अगमः, यत् क्रौञ्चमिथुनात् काममोहितम् एकम् अवधीः।

शब्दार्थ–निषाद = हे निषाद, त्वम् = तू, शाश्वतीः = अनन्त, समाः = वर्षों तक, प्रतिष्ठाम् = स्थिति को, यश को, मा = मत, अगमः = प्राप्त कर, यत् = जो, क्रौञ्चमिथुनात् = क्रौञ्ची तथा क्रौञ्च के जोड़े में से, काममोहितम् = काम से मोहित, एकम् = एक (नर) को, अवधीः = (तूने) मार दिया।

अनुवाद–हे निषाद! तू अनन्तकाल तक प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं करेगा क्योंकि तूने क्रौञ्च पक्षियों के जोड़े में से काम से मोहित एक नर क्रौञ्च को मार दिया।

वनदेवताः–चित्रम्, आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः।

वनदेवता–आश्चर्य की बात है, वेद से अन्यत्र छन्दों का नवीन आविर्भाव हो गया है।

आत्रेयीः–तेन हि पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दप्रकाशमृषिमुपसंगम्य भगवान्भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत् 'ऋषे, प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद्ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु। आद्यः कविरसि' इत्युक्त्वाऽन्तर्हितः। अथ स भगवान्प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणां प्रणिनाय।

आत्रेयी–उस समय संसार की सृष्टि करने वाले भगवान् ब्रह्मा उन भगवान् वाल्मीकि के समीप, जिन्हें शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया था, आकर बोले–'मुने! तुम वाङ्मय ब्रह्म को भलीभाँति जान गये हो। अतः राम का चरित्र वर्णन करो। तुम्हारी अव्याहत तेज वाली आर्ष दृष्टि (ज्ञानचक्षु) प्रकाशित हो। तुम आदि कवि हो।' यह कह कर वे अन्तर्हित हो गये। तत्पश्चात् भगवान् वाल्मीकि ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्द ब्रह्म के अपूर्व रूपान्तर रामायण नामक इतिहास को बनाया।

वनदेवताः–हन्त, पण्डितः संसारः।

वनदेवता–ओह, तब तो सारा संसार पण्डित हो जायगा।

आत्रेयीः–तस्मादेव हि ब्रवीमि 'तत्र महानध्ययनप्रत्यूह' इति।

आत्रेयी–अतएव मैं कह रही हूँ कि वहाँ पर पढ़ाई में महान् विघ्न उपस्थित हो गया है।

वनदेवताः–युज्यते।

वनदेवता–ठीक है।

आत्रेयीः–विश्रान्तास्मि। भद्रे, सम्प्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानंब्रूहि!

आत्रेयी–मैं विश्राम कर चुकी हूँ। आर्ये, अब मुझे अगस्त्य ऋषि के आश्रम का मार्ग बताओ!

वनदेवताः–इतः पञ्चवटीमनुप्रविश्य गम्यतामनेन गोदावरीतीरेण।

वनदेवता–यहाँ से पञ्चवटी में प्रवेश करके गोदावरी के इस किनारे-किनारे जाइये।

आत्रेयीः–(सास्रम्) अप्येतत्तपोवनम्? अप्येषा पञ्चवटी? अपि सरिदियं गोदावरी? अप्ययं गिरिः प्रस्रवणाः? अपि जनस्थानवनदेवता त्वं वासन्ती?

आत्रेयी–(अश्रुपात सहित) यह क्या तपोवन है? यह क्या पञ्चवटी है? यह क्या गोदावरी नदी है? यह क्या प्रस्रवण पर्वत है? आप क्या जनस्थान की देवता वासन्ती हैं?

वनदेवता–तथैव तत्सर्वम्।

वनदेवता–वह सब वैसा ही है। (अर्थात् जैसा आप कहती हैं, वैसा ही सब है)।

आत्रेयीः—**हा वत्से जानकि!**

आत्रेयी—हाय बेटी जानकी!

स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः प्रासङ्गिकीनां विषयः कथानाम्।
त्वां नामशेषामपि दृश्यभानः प्रत्यादृष्टामिव नः करोति।।6।।

अन्वय—प्रासङ्गिकीनां कथानां विषयः दृश्यमानः स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः नामशेषामपि त्वां नः प्रत्यक्षदृष्टामिव करोति।

शब्दार्थ—प्रासङ्गिकीनाम् = प्रसङ्ग से प्राप्त, कथानाम् = वाक्यों के विषय प्रतिपाद्य, दृश्यमानः = दिखाई देता हुआ, सः = वह, एषः = पहले स्थित, ते = तुम्हारे, बल्लभबन्धुवर्गः = प्रियबान्धवसमूह, नामशेषामपि = नाममात्र से अवशिष्ट, त्वाम् = तुमको (जानकी), नः = हमारे, प्रत्यक्षदृष्टाम् = साक्षात् दृष्टिगोचर, इव = भांति, करोति = कर रहे हैं।

अनुवाद—हा पुत्रि सीते प्रसङ्ग प्राप्त बातचीतों का विषय यह वही तेरे प्रिय बन्धुओं का समूह, नाम मात्र शेष तुझको हमारे लिए प्रत्यक्ष दृष्ट सी कर रहा है।

वासन्तीः—**(सभयम्, स्वगतम्) कथम् नामशेषेत्याह। (प्रकाशम्) आर्ये, किमत्याहितं सीतादेव्याः ?**

बासन्ती—(भय के साथ, मन ही मन) 'नाममात्र से शेष' ऐसा क्यों कह रही है। (प्रकट) आर्या, सीता देवी के ऊपर क्या विपत्ति आ पड़ी ?

आत्रेयीः—**न केवलमत्याहितम्, सापवादमपि। (कर्णे) एवमिति।**

आत्रेयी—अनर्थ ही नहीं, साथ ही लोकापवाद भी है। (कान में) ऐसी बात है।

वासन्तीः—**हा दारुणो दैवनिर्घातः (इति मूर्च्छति।)।**

वासन्ती—हाय! दुर्भाग्य का यह अति भयंकर प्रहार है। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

आत्रेयीः—**भद्रे, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।**

आत्रेयी—कल्याणि, धैर्य धारण करो! धैर्य धारण करो!

वासन्तीः—**हा, प्रियसखि, ईदृशस्ते निर्माणभागः। हा रामभद्र, अथवा अलं त्वया। आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतायाः किं वृत्तमिति काचिदासीत्प्रवृत्तिः ?**

वासन्ती—हा प्रिय सखि! तुम्हारे जीवन का ऐसा (दुःखमय) अन्त हुआ ? हा रामभद्र, अथवा तुम्हें कुछ कहना व्यर्थ है। आर्या आत्रेयी! जब सीता को जंगल में छोड़कर लक्ष्मण लौट गये तब सीता की क्या दशा हुई, इसका कुछ समाचार ज्ञात है ?

आत्रेयीः—**नहि नहि।**

आत्रेयी—नहीं-नहीं।

वासन्तीः—कष्टम्। आर्यारुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु नः कुलेषु जीवन्तीषु वृद्धासु राज्ञीषु कथमिदं जातम्?

वासन्ती—ओह! दुःख है। आर्या अरुन्धती तथा वशिष्ठ जी से आधिष्ठित हमारे कुल (रघुकुल) में वृद्ध (कौशल्या आदि) महारानियों के जीवित रहते हुए यह कैसे हुआ?

आत्रेयीः—ऋष्यशृङ्गसत्रे गुरुजनस्तदासीत्। सम्प्रति परिसमाप्तं तद् द्वादशवार्षिकं सत्रम्। ऋष्यशृङ्गेण च सम्पूज्य विसर्जिता गुरवः। ततो भगवत्यरुन्धती नाहं वधूविरहितामयोध्यां गच्छामीत्याह। तदेव राममातृभिरन्नुमोदितम्। तदनुरोधाद्भगवतो वसिष्ठस्यापि श्रद्धा 'वाल्मीकितपोवनं गत्वा वत्स्याम' इति।

आत्रेयी—उस समय (सीता के निर्वासन-काल में) गुरुजन (अरुन्धती, वसिष्ठ आदि) ऋष्यशृंग के यज्ञ में थे। अब वह बारह वर्षों में सम्पन्न होने वाला यज्ञ समाप्त हो गया। ऋृष्यशृंग ने गुरुजनों को सम्मानपूर्वक विदा कर दिया है। तदनन्तर भगवती अरुन्धती ने कहा—'मैं वधू (सीता) से रहित अयोध्या में नहीं जाऊँगी।' राम की माताओं ने उन्हीं की बातों का समर्थन किया। उन लोगों के अति आग्रह को देखकर भगवान् वसिष्ठ ने भी इच्छा व्यक्त की कि हम लोग वाल्मीकि के तपोवन में जाकर निवास करें।

वासन्तीः—अथ स रामभद्रः किमाचारः?

वासन्ती—अब वे राम भद्र क्या कर रहे हैं?

आत्रेयीः—तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः।

आत्रेयी—उस राजा ने यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेघ (यज्ञ) प्रारम्भ कर दिया है।

वासन्तीः—अहह धिक्, परिणीतमपि?

वासन्ती—ओह, धिक्कार है! क्या विवाह भी कर लिया है?

आत्रेयीः—शान्तम्, नहि नहि।

आत्रेयी—नहीं-नहीं। ऐसा दोषारोपण न करें।

वासन्तीः—का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी?

वासन्ती—तब यज्ञ में सह धार्मिणी (पत्नी) कौन है?

आत्रेयीः—हिरण्यमयी सीताप्रतिकृतिर्गृहणीकृता।

आत्रेयी—सीता की स्वर्ण प्रतिमा को गृहिणी बनाया है।

वासन्तीः—हन्त भीः।

वासन्ती—हाय, ओह,!

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।7।।

अन्वयः–वज्रादपि कठोराणि कुसुमादपि मृदूनि लोकोत्तराणां चेतांसि विज्ञातुम कः अर्हति हि।

शब्दार्थ–वज्रादपि = वज्र से भी, कठोराणि = कठोर, कुसुमादपि = पुष्प से भी, मृदूनि = कोमल, सुकुमार, लोकोत्तराणाम् = अलौकिक महापुरुषों के, चैतांसि = हृदयों को, विज्ञातुम् = जानने के लिए, कः = कौन, अर्हति = समर्थ है, हि = निश्चय।

अनुवाद–वज्र से भी कठोर तथा पुष्प से भी कोमल महापुरुषों के हृदय को कौन जान सकता है ?

आत्रेयी–विसृष्टश्च वामदेवानुमन्त्रितो मेध्याश्वः। प्रक्लृप्ताश्च तस्य यशाशास्त्रं रक्षितारः तेषामधिष्ठाता लक्ष्मणात्मजश्चन्द्रकेतुर्दत्त दिव्यास्त्रसंप्रदायश्चतुरङ्ग-साधनान्वितोऽनुप्रहितः।

आत्रेयी–वामदेव मुनि द्वारा मन्त्र—संस्कार-संयुक्त अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया है। शास्त्र-वचन-के अनुसार उसके संरक्षक भी नियुक्त किये गए हैं। उनके (रक्षकों के) नेता लक्ष्मण-पुत्र-चन्द्रकेतु को दिव्य अस्त्रों का समूह देकर तथा चतुरङ्गिणी सेना से युक्त अश्व के पीछे भेजा है।

वासन्ती–(सहर्षकौतुकास्रम्) कुमार लक्ष्मणस्यापि पुत्र इति मातः जीवामि।

वासन्ती–(हर्ष, कुतूहल और अश्रुपात सहित) कुमार लक्ष्मण के भी पुत्र हैं, यह जानकर जीवित (हो गई) हूँ।

आत्रेयीः–अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो न राजापचारमन्तरेण प्रजानामकालमृत्युः संवरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्–

आत्रेयी–इसी बीच में एक ब्राह्मण अपने मरे हुए पुत्र को राजभवन के दरवाजे पर फेंककर छाती पीटते हुए उच्च स्वर में चिल्लाने लगा कि ब्राह्मणों का सर्वनाश हो गया। तदनन्तर राजा के दोष के बिना प्रजा की अकाल मृत्यु नहीं हो सकती है, इस प्रकार दयालु रामभद्र जब अपने दोष का निर्णय कर रहे थे, उसी समय सहसा आकाश वाणी हुई–

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम! तं हत्वा जीवय द्विजम्।।8।।

अन्वय–शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तपः तप्यते राम! स ते शीर्षच्छेद्यः, तं हत्वा द्विजं जीवय।

शब्दार्थ–शम्बूको नाम = शम्बूक नाम वाला, वृषलः = शूद्र, पृथिव्याम् = पृथ्वी पर, तपः तप्यते = तप कर रहा है। राम! सः = वह, ते = तुम्हारे, शीर्षच्छेद्यः

= सिर काटने योग्य, तम् = उसे, हत्वा = मारकर, द्विजम् = ब्राह्मण (बालक) को, जीवय = जीवित करो।

अनुवाद–शम्बूक नामक शूद्र पृथ्वी पर तप कर रहा है। हे राम! वह तुमसे सिर काटे जाने के योग्य है। उसे मारकर ब्राह्मण (पुत्र) को जीवित करो।

इत्युपश्रुत्यैवाकृष्टकृपाणपाणिः पुष्पकमधिरुह्य सर्वा दिशो विदिशश्च शूद्रतापसान्वेषणाय जगत्पतिः संचारं समारब्धवान्।

यह सुनते ही नग्न तलवार हाथ में लेकर पुष्पक विमान पर आसीन होकर उस शूद्र तापस को ढूँढ़ने के लिये जगत्पति राम ने सारी दिशाओं और उपदिशाओं में घूमना प्रारम्भ किया।

वासन्ती–शम्बूको नामाधोमुखो धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति। अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलंकुर्यात्।

वासन्ती–शंबूक नामक धूम्र-पान करने वाला शूद्र, नीचे की ओर मुँह करके इसी जनस्थान में तप कर रहा है। क्या रामभद्र पुनः इस वन को सुशोभित करेंगे ?

आत्रेयी–भद्रे! गम्यतेऽधुना।

आत्रेयी–भद्रे! अब जाती हूँ।

वासन्ती–आर्ये आत्रेयी, एवमस्तु। कठोरश्च दिवसः।

वासन्ती–आर्या आत्रेयी, अच्छी बात है। दिन प्रखर (कठोर धूप वाला) हो गया है।

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः
धर्मस्स्रंसितबन्धनैश्च कुसुमरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणाविष्किर मुखव्याकृष्टकीटत्त्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमा।।9।।

अन्वय–कूले छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कुलायद्रुमाः कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः च धर्मस्रंसितबन्धनैः कुसुमैः गोदावरीम् अर्चन्ति।

शब्दार्थ–कूले = तट पर, छाया = अनातप, अपस्किरमाण = जीविका के लिए चोंच तथा नखों से कुरेदते हुए, विष्किर = पक्षी, मुख = चोंच, व्याकृष्ट = खींचकर निकालते हुए, कीटत्वचः = कीड़ों की खाल को, कूजत् शब्द करते हुए, क्लान्त = (धूप से) खिन्न, कपोत = कबूतर, कुक्कुट = मुर्गे, कुलाः = समूह, कुलायद्रुमाः = पक्षियों के घोंसलों से युक्त, वृक्ष, कण्डूल = खुजलाहट वाले, द्विप हाथी के, गण्डपिण्ड = कपोल भाग के, कषण = रगड़ से, उत्कम्पेन = अधिक हिलने के कारण, सम्पातिभिः = गिराने वाले, धर्मस्रंसित = घाम (धूप) से ढीले,

बन्धनैः = बन्धनों (वृन्तों) वाले, कुसुमैः = पुष्पों से, गोदावरीम् = गोदावरी नदी को, अर्चन्ति = पूजते हैं।

अनुवाद–(गोदावरी नदी के) तट पर छाया में कुरेदने वाले पक्षियों की चोंचों से-जिनके कीड़े निकाले गए हैं, ऐसी छाल वाले कलरव करते हुए तथा थके हुए कबूतर और मुर्गों के समूह से युक्त पक्षियों के घोंसलों वाले वृक्ष, हाथियों के खुजलाहट वाले कपोल भाग की रगड़ से हिलने के कारण गिरने वाले तथा धूप से शिथिल वृन्तो वाले फूलों से गोदावरी की पूजा कर रहे हैं।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते।)

(इसके पश्चात् घूमकर दोनों का प्रस्थान।)

इति शुद्धविष्कम्भः।

शुद्धविष्कम्भक समाप्त।

(ततः प्रविशति सदयोद्यतखड्गो रामभद्रः।)

(तदनन्तर दया पूर्वक खड्ग उठाए हुए रामभद्र प्रवेश करते हैं।)

रे हस्त दक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते।।10।।

अन्वय–रे दक्षिण हस्त! द्विजस्य मृतस्य शिशोः जीवातवे शूद्रमुनौ कृपाणां विसृज। (त्वं) निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः रामस्य बाहुः असि (अतएव) ते करुणा कुतः ?

शब्दार्थ–रे = अनादर द्योतक अव्यय, दक्षिण हस्त = दाहिने हाथ, द्विजस्य = ब्राह्मण के, मृत्यस्य = मरे हुए, शिशोः = बालक के, जीवातवे = जीवन के लिए, शूद्रमुनौ = शूद्र मुनि पर कृपाणम् = तलवार, विसृज = छोड़ (प्रहार कर)। निर्भरगर्भ. = पूर्ण गर्भ के भार से व्याकुल, सीता = जानकी, विवासनपटोः = निष्कासन में चतुर, रामस्य = राम की, बाहुः = भुजा, असि = हो, ते = तुझे, करुणा = दया, कुतः = कहाँ।

अनुवाद–रे दाहिने हाथ! ब्राह्मण के मरे हुए शिशु को जिलाने के लिए शूद्र मुनि के ऊपर तलवार चला। (क्योंकि तू) पूर्ण गर्भ के भार से खिन्न जानकी को निर्वासित करने में कुशल राम का हाथ हो। (अतः) तुझे दया कहाँ।

(कथंचित्प्रहृत्य) कृतं रामसदृशं कर्म। अपि जीवेत्स ब्राह्मणपुत्रः।

(किसी प्रकार प्रहार करके) यह राम के योग्य काम किया है। क्या वह ब्राह्मण का बालक जीवित हो गया होगा ?

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

दिव्यपुरुषः–जयतु देवः।

दिव्यपुरुष–महाराज की जय हो।

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे
सञ्जीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते
सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।।11।।

अन्वय–यमादपि दत्ताभये त्वयि दण्डधारे असौ शिशुः संजीवितः मम च इयम् ऋद्धिः एष शम्बूकः शिरसा ते चरणौ नतः, सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।

शब्दार्थ–यमादपि = यम से भी, दत्ताभये = अभय प्रदान करने वाले, त्वयि = आप के, दण्डधारे = दण्ड (धनुर्दण्ड) धारण करने पर, असौ = यह, शिशुः = ब्राह्मण बालक, सञ्जीवितः = पुनरुज्जीवित हो गया, मम = मेरी, च, इयम् = यह, ऋद्धिः = समृद्धि, एषः = यह, शम्बूकः = शूद्रमुनि, शिरसा = सिर से, ते = तुम्हारे, चरणौ = दोनों चरणों पर, नतः = प्रणत है। सत्सङ्गजानि = सत्सङ्ग से उत्पन्न, निधनान्यपि = मरण भी, तारयन्ति = उद्धार कर देते हैं।

अनुवाद–यम से भी अभय-दान देने वाले आपके दण्ड धारण करने पर यह विप्रतनय जीवित हो उठा और मेरी यह समृद्धि हुई। (अतः) यह शम्बूक शिर से आपके चरणों में प्रणाम करता है। (क्यों नहीं ?) सज्जन के संसर्ग से उत्पन्न मृत्यु भी उद्धार करने वाली होती है।

यत्रानन्दाश्च मोदासश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः।।12।।

अन्वय–यत्र आनन्दाश्च गोदाश्च यत्र पुण्याः सम्पदश्च ते वैराजाः नाम तैजसाः लोकाः ते शिवाः सन्तु।

शब्दार्थ–यत्र = जहाँ, आनन्दाश्च = और आध्यात्मिक सुख, मोदाश्च = दिव्य विषयों के भोग का सुख, यत्र, पुण्याः = शुभ, संपदः = संपत्तियां, अणिमादि = सिद्धियाँ, ते = वे, वैराजाः = विराज संबंधी (अर्थात् ब्रह्मलोक), तैजसाः = तेजोमय, लोकास्ते = तुम्हारे भुवन, शिवाः सन्तु = मंगलकारी होवें।

अनुवाद–जहाँ आध्यात्मिक आनन्द तथा दिव्य विषयों के भोग का सुख है, और जहाँ पवित्र विभूतियाँ हैं, वे वैराज नामक आलोकमय लोक तुम्हारे लिए मंगलकारक होवें।

शम्बूकः–स्वामिन्! युष्मत्प्रसादादेवैष महिमा। किमत्र तपसा। अथवा महदुपकृतं तपसा–

शम्बूक–प्रभो! आप ही की कृपा से यह महत्व मिला है। इसमें तपस्या ने क्या किया ? अथवा तपस्या ने महान् उपकार किया है–

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्यो
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।
क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां सम्प्रसादोऽन्यथा तु
क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः ?।।13।।

अन्वय–भुवनेऽन्वेष्टव्यो लोकनाथः शरण्यः (त्वम्) यत् मां वृषलकं अन्विष्यन् योजनानां शतानि क्रान्त्वा इह प्राप्तोऽसि स इह तपसां सम्प्रसादः अन्यथा तु वः अयोध्यायाः दण्डकायां वने क्व पुनः उपगमः ?

शब्दार्थ–भुवनेऽन्वेष्टव्यो = जगत् में ढूँढ़े जाने योग्य, लोकनाथः = लोक के स्वामी, शरण्यः = रक्षा करने वाले, त्वम् = आपने, तत् = जो, माम् = मुझको, वृषलकम् = अधम शूद्र को, अन्विष्यन् = खोजते हुए, योजनानाम् = चार कोसों के, शतानि = सैकड़ों को, क्रान्त्वा = अतिक्रमण करके लाँघकर, इह = इस (विषय में), प्राप्तोऽसि = प्राप्त हुए हैं, स = वह, इह = यह, संप्रसादः = अनुग्रह, फल, अन्यथा तु = नहीं तो, वः = तुम्हारा, अयोध्यायाः = अयोध्या से, दण्डकायांवने = दण्डकारण्य में, क्व = कहाँ, पुनः उपगमः = फिर आना।

अनुवाद–जगत् में अन्वेषण या साक्षात्कार करने योग्य, लोकों के नाम एवं शरणागत-पालक आप जो मुझ अधम शूद्र को ढूँढ़ते हुए सैकड़ों योजनों को लाँघकर यहाँ आए हैं। यह तपस्या का ही अनुग्रह है अन्यथा आपका अयोध्या से दण्डक वन में आना फिर कैसे सम्भव था ?

रामः–**किं नाम दण्डकेयम् ? (सर्वतोऽवलोक्य) हा कथम्**–

राम–क्या यह दण्डकारण्य है ? (सभी ओर देखकर) हाय कैसे–

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः
स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः
संदृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः।।14।।

अन्वय–क्वचित् स्निग्धः श्यामाः अपरतः भीषणाभोगरूक्षाः स्थाने-स्थाने निर्झराणाम् झाङ्कृतैः मुखरककुभः तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः परिचित-भुवः एते दण्डकारण्यभागाः संदृश्यन्ते।

शब्दार्थ–क्वचित् = कहीं तो, स्निग्धश्यामाः = चिकने और श्यामवर्ण वाले, अपरतः दूसरी ओर, भीषण = भयंकर, आभोग = विस्तार से, रूक्षाः = उद्वेगजनक, स्थाने-स्थाने = बीच-बीच में, निर्झराणाम् झरनों के, झाङ्कृतेः = झंकारयुक्त शब्दों से, मुखरककुभः = शब्दायमान दिशाओं वाले, तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः

= तीर्थ, आश्रम, पहाड़, नदी, गड्ढे और दुर्गम मार्गों से युक्त, परिचितभुवः = जाने पहिचाने भू भागों वाले, एते = ये, दण्डकारण्यभागाः = दण्डकारण्य वन के भाग, संदृश्यन्ते = दिखाई पड़ रहे हैं।

शम्बूकः–**दण्डकैवैषा। अत्र किल पूर्वं निवसता देवेन।**

शम्बूक–यह दण्डकवन ही है। यहाँ पहिले निवास करते हुए महाराज ने–

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः।।15।।

अन्वय–भीमकर्मणां रक्षसां चतुर्दशसहस्राणि त्रयः दूषणखरत्रिमूर्धानश्च रणे हताः।

शब्दार्थ–भीमकर्मणाम् = भीषण कर्म वाले, रक्षसाम् = राक्षसों के, चतुर्दशसहस्राणि = चौदह सहस्त्र, त्रयः = तीन, दूषणखरत्रिमूर्धानश्च = दूषण, खर तथा त्रिमूर्धा, रणे = संग्राम में, हताः = मारे गए।

अनुवाद–भीषण कर्म वाले चौदह हजार राक्षसों को, तथा तीनों दूषण, खर और त्रिशिरा राक्षसों को युद्ध में मारा था।

येनसिद्धक्षेत्रेऽस्मिन् मादृशामपि जानपदानामकुतोभयसंचारः संवृत्तः।

जिससे (अर्थात् दूषण, खर आदि राक्षसों का वध हो जाने के कारण) इस सिद्ध क्षेत्र में मेरे जैसे ग्रामवासियों का भी सर्वथा भयरहित विरण सम्पन्न हुआ है।

रामः–**न केवलं दण्डकैव, जनस्थानमपि ?**

राम–यह केवल दण्डकारण्य ही नहीं, अपितु जनस्थान भी है ?

शम्बूकः–**बाढम्। एतानि खलु सर्वभूतरोमहर्षणान्युन्मत्तचण्डश्वापदकुलसङ्कुलगिरिगह्वराणि जनस्थानपर्यन्तदीर्घारण्यानि दक्षिणां दिशमभिवर्तन्ते। तथाहि**–

शम्बूक–हाँ। ये सभी जीवों के लिए रोमांचक, उद्धत तथा विकराल हिंसक प्राणियों के समूह से आक्रान्त पर्वतकन्दरा वाले, जनस्थान की अवधि पर वर्तमान विस्तृत वन दक्षिण दिशा की ओर चले गये हैं। जैसाकि–

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्ववचिदपि प्रोच्चण्डसत्तवस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय
सीमानः प्रदेरोदरेषु विरलस्वल्वाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते।।16।।

अन्वय–सीमानः क्वचित् निष्कूजस्तिमिताः क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः स्वेच्छासुप्रगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसः (सन्ति), यासु तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैः अयम् अजगरस्वेदद्रवः पीयते।

शब्दार्थ–सीमानः = सीमायें, प्रान्त भूमियाँ, क्वचित् = कहीं पर,

निष्कूजस्तिस्मिताः = पक्षियों की ध्वनि से रहित एवं निस्तब्ध, क्वचिदपि = कहीं पर प्रोच्चण्ड = अत्यन्त उग्र, सत्त्व = जन्तु, स्वन = शब्द स्वेच्छासुप्त = स्वेच्छा से सोए हुए, गभीरभोग = बड़े शरीरवाले, भुजग = सर्प के, श्वांस = स्वांस से, प्रदीप्ताग्नयः = आग प्रज्वलित हो रही है, प्रदरोददेषु = बिलों के मध्य भागों में विरलस्वल्पाम्भसः = अतिन्यून जल वाले, सन्ति, यासु = जिन (सीमाओं में), तृष्यद्भिः = प्यासे, प्रतिसूर्यकैः = गिरगिटों के द्वारा, अयम् = यह, अजगरस्वेद-द्रवः = अजगरों के पसीने का जल, पीयते = पिया जाता है।

अनुवाद–वन के सीमा क्षेत्र कहीं पर निःशब्द एवं निस्तब्ध हैं, और कहीं भयंकर जानवरों के शब्द वाले हैं, कहीं स्वेच्छा से सोये हुए विशालकाय सर्पों की साँस से प्रज्वलित अग्नि वाले हैं, और कहीं गड्ढों के बीच में जल की अतिशय न्यूनता से युक्त हैं, जहाँ पर प्यासे गिरगिट अजगरों के पसीने का पानी पी रहे हैं।

रामः–पश्यामि च जनस्थ नं भूतपूर्वखरालयम्।
प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान्पूर्वाननुभवामि च।।17।।

अन्वय–भूतपूर्वखरालयं जनस्थानं पश्यामि च, पूर्वान् वृत्तान्तान् प्रत्यक्षान् इव अनुभवामि च।

शब्दार्थ–भूतपूर्व = प्राचीनकाल का, खरालय = खर नामक राक्षस का निवास स्थान, जनस्थानं = जनस्थान को, पश्यामि = देख रहा हूँ, च = और, पूर्वान् = पूर्वकालिक, वृत्तान्तान् = वृत्तान्तों का, प्रत्यक्षान् इव = साक्षात् के जैसा, अनुभवामि = अनुभव कर रहा हूँ।

अनुवाद–'खर' के भूतपूर्व निवास 'जनस्थान' को देख रहा हूँ और बीते हुए वृत्तान्तों को साक्षात् की भाँति अनुभव कर रहा हूँ।

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु।
इतीवारमतेहासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः।।18।।

अन्वय–त्वया सह मधुगन्धिषु वनेषु निवत्स्यामि इति इव असौ इह अरमत तादृशः तस्याः सः स्नेहः।

शब्दार्थ–त्वया = तुम्हारे (राम के), सह = साथ, मधुगन्धिषु = मकरन्द के जैसे गन्धवाले, वनेषु = वनों में, निवत्स्यामि = निवास करूँगी, इति = इस प्रकार, इव = समान, असौ = यह (सीता), अरमत = प्रसन्न होती थी, तस्याः = उस (सीता) का, सः = वह, स्नेहः = अनुराग।

अनुवाद–'आपके साथ पुष्परस की गन्ध से युक्त वनों में निवास करूँगी' इस प्रकार (यह कह-कह कर) वह यहाँ आनन्द मानती थी। ऐसा उसका वह (अनुपम) प्रेम था ?

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।।19।।

अन्वय–यो जनो यस्य प्रियः (सः) किंचित् न कुर्वाणोऽपि सौख्यैर्दुःखानि अपोहति, हि तत् तस्य किमपि द्रव्यम्।

शब्दार्थ–यो = जो, जनः = मनुष्य, यस्य = जिसका, प्रियः = प्यारा, किंचित् = कुछ भी, न कुर्वाणः = न करता हुआ, अपि = भी, सौख्यैः = सुखों द्वारा, दुःखानि = दुखों को, अपोहति = दूर करता है। हि = क्योंकि, तत् = वह, तस्य = उसका, किमपि = अनिर्वचनीय, द्रव्यम् = वस्तु।

अनुवाद–जो व्यक्ति जिसका प्रिय है, वह (उसके लिए) कुछ न करता हुआ भी (साथ रहने के कारण) सुखों के द्वारा (उसके) दुःखों को नष्ट करता है। क्योंकि वह (प्रियपात्र) उस (प्रेमी) के लिए अनिवर्चनीय पदार्थ अर्थात् अनुपम धन होता है।

(क) **शम्बूकः–तदलमेभिर्दुरासदैः। अथैतानि मदकलमयूरकण्ठकोमलच्छविभिरवकीर्णानि पर्यन्तैविरल निविष्टनीलबहुलच्छायातरुषण्डमण्डितान्यसंभ्रान्तविविध मृगयूथानि पश्यतु महाभागः प्रशान्त-गम्भीराणि श्वापदकुलशरण्यानि महारण्यानि।**

शम्बूक–इन दुर्गम वनों को देखने से बस करिये। आप इन प्रशान्त एवं गम्भीर मध्यवर्ती वनों को देखिये जो मद से मधुर ध्वनि करने वाले मोरों के कण्ठ के तुल्य मनोहर क्रान्ति से युक्त समीपस्थ प्रदेशों से व्याप्त हैं, सघनता से अवस्थित श्यामल तथा प्रचुर छाया वाले वृक्ष-समूहों से सुशोभित हैं और निर्भयता पूर्वक विचरण करने वाले अनेक प्रकार के मृगसमूहों से व्याप्त हैं एवं हिंसक जन्तुओं के आश्रय स्थान हैं।

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलंभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः।।20।।

अन्वय–इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोयाः फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंजस्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यो वहन्ति।

शब्दार्थ–इह = यहाँ, दण्डक वन में, समद.–समद = मदयुक्त, शकुन्त = पक्षियों से, आक्रान्त = व्याप्त, वानीर वीरुत = वेतस् (बेंत) की लताओं के, प्रसव = पुष्पों से, सुरभि = सुवासित, शीत = ठण्डे, स्वच्छ = निर्मल, तोयाः = जल वाली, फलभर. – फलभर = फलों के गुच्छों के, परिणाम = पकने से, श्याम = काले, जम्बूकनिकुंज = जामुन के निकुंजों में, स्खलन = गिरने से, मुखर = शब्दमान भूरिस्रोतसः = अनेक प्रवाहों वाली, निर्झरिण्यः = नदियाँ, वहन्ति = बहती हैं।

अनुवाद–यहाँ मदवाले पक्षियों से व्याप्त वेतस् लताओं के पुष्पों से सुवासित, शीतल तथा निर्मल जल वाली, एवं पके फलों की राशि के कारण श्यामवर्ण वाले जामुन के वृक्षों के कुंजों में टकराकर गिरने से शब्दायमान बहुत से प्रवाहों वाली पहाड़ी नदियाँ बहती हैं।

अपि च–

और भी–

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मिभदलितबिकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः।।21।।

अन्वय–अत्र कुहरभाजां भल्लूकयूनाम् अनुरसितगुरूणि अम्बूकृतानिस्त्यानं दधति। सल्लकीनां शिशिरकटुकषायः इभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः स्त्यायते।

शब्दार्थ–अत्र = यहाँ, कुहरभाजां = बिलों में रहने वाले, भल्लूकयूनाम् = तरुण भालुओं के, अनुरसितगुरूणि = प्रतिध्वनियों से बढ़े हुए, अम्बूकृतानि = थूक से युक्त शब्द (थुथकार), स्त्यानं = गाढ़ापन, दधति = धारण करते हैं, सल्लकीनाम् = एक प्रकार की लताओं का, शिशिरकटुकषायः = ठण्डा तीव्र तथा सुरभित, इभदलितविकीर्ण = हाथियों द्वारा मर्दित तथा बिखेरे हुए, ग्रन्थि = पर्व से, निष्पन्द = निचुड़ने वाले रस की, गन्धः = सुगन्धि, स्त्यायते = बढ़ रही है।

अनुवाद–यहाँ गुफाओं में रहने वाले युवा रीछों के थुथकार प्रतिध्वनि से फैलकर वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, और सल्लकी लताओं के पर्वों के हाथियों द्वारा कुचले एवं इधर-उधर फेंके जाने से उनके शीतल, तीक्ष्ण तथा कषैले रस की गन्ध फैल रही है।

रामः–**(सबाप्पस्तम्भमृ) भद्र, शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः।**

राम–(आँसू रोककर) भद्र। तुम्हारा देवपान नामक मार्ग कल्याणकारी हो। पवित्र लोकों का अनुभव करने के लिए तत्पर हो जाओ।

शम्बूकः यावत्पुराणब्रह्मर्षिमगस्त्यमभिवाद्य शाश्वतं पदमनु-प्रविशामि।

शम्बूक–तो मैं पुराने ब्रह्मर्षि अगस्त्य को प्रणाम करके सनातन ब्रह्म-लोक में प्रवेश करता हूँ!

(इति निष्क्रान्तः)

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

रामः–**एतत् पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं**
यस्मिन्नभूमचिरमेव पुरा वसन्तः।

आरण्यकाश्चगृहिणश्चरताः स्वधर्मे
सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः।।22।।

शब्दार्थ–अहो! अद्य एतत् वनं पुनः कथं दृष्टं, यस्मिन् पुरा चिरमेव वसन्तः आरण्यकाश्च गृहिणश्च वयं स्वधर्मे रताः, सांसारिकेषु सुखेषु रसज्ञाश्च अभूम।

शब्दार्थ–अहो = आश्चर्य है, अद्य = आज, एतत् = यह, वनम् = वन, पुनः = फिर, कथं = किस प्रकार, दृष्टम् = दिखाई दिया, यस्मिन् = जिसमें, पुरा = पहले, चिरमेव = दीर्घ काल तक, वसन्तः = निवास करते हुए, आरण्यकाः = वानप्रस्थ, गृहिणश्च = गृहस्थ, वयं = राम, लक्ष्मण एवं जानकी, स्वधर्मे = अपने धर्म में, रताः = तत्पर रहते हुए, सांसारिकेषु = सांसारिक, सुखेषु = सुखों में, रसज्ञाश्च = रस का अनुभव करने वाले, अभूम = थे।

अनुवाद–राम-ओह! आज इस वन को फिर कैसे देखा, जहाँ पहिले बहुत दिनों तक निवास करते हुए, वानप्रस्थ एवं गृहस्थ दोनों में, हम लोग स्वधर्म परायण होकर सांसारिक सुखों के रसास्वादक हुए थे।

एते त एव गिरयो विरूवन्मपूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यतूनि
नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि।।23।।

अन्वय–विरूवन्मयूरा एते त एव गिरयः, मत्तहरिणानि तानि एव वन-स्थलानि, आमञ्जुवंजुललतानि नीरन्ध्रनीपनिचुलानि अमूनि तानि च सरित् तटानि (सन्ति)।

शब्दार्थ–विरूवन्मयूराः = कूजते हुए मोरों वाले, एते त एव = ये वे ही, गिरयः = पर्वत, मत्तहरिणानि = मदयुक्त हरिणों वाले, तान्येव = वे ही, वन-स्थलानि = वन भूमियाँ, आमंजुवंजुललतानि = सब प्रकार से मनोहर वेतस लताओं वाले, नीरन्ध्र = अविरल, नीप = कदम्ब, निचुलानि = हिज्जल वृक्षों वाले, अमूनि = ये, तानि = वही (पूर्वपरिचित), सरित्तटानि सन्ति = नदियों के किनारे हैं।

अनुवाद–कूजते हुए मयूरों वाले ये वे ही पर्वत हैं, मत्त मृगों वाले वही वन प्रदेश हैं और अतिशय मनोहर अशोक वृक्ष, लताओं, घने कदम्ब तथा वेतस लतिकाओं वाले ये वही नदियों के किनारे हैं।

रामः–मेघमालेव यश्चायमारादपि विभाव्यते।
गिरिः प्रस्रवणः सोऽयमत्र गोदावरी नदी।।24।।

अन्वय–अयं यः आरात् अपि मेघमाला इव विभाव्यते, सः अयम् प्रस्रवणः गिरिः, अत्र गोदावरी नदी।

शब्दार्थ–अयं = यह, यः = जो, आरात् = समीप से, अपि = भी, मेघमाला

= घनघटा, इव = के समान, विभाव्यते = प्रतीत हो रहा है, सः = वह, प्रस्रवणः, गिरिः, अत्र = इस स्थल पर।

अनुवाद–राम–यह जो समीप से भी मेघमाला की तरह प्रतीत हो रहा है, वह यह प्रस्रवण नामक पर्वत है, (जिसके) समीप ही गोदावरी नदी है।

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास-
स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु।
गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामलश्री-
रन्तः कूजन्मुखरशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः।।25।।

अन्वय–अस्य एव महति शिखरे गृध्रराजस्य वासः आसीत्। तस्य अधस्तात् वयम् अपि तेषु पर्णोटजेषु रताः। यत्र गोदावर्याः पर्याप्त विततानोकहश्यामलश्रीः मुखरशकुनः अन्तः कूजन् (इव) रम्यः वनान्तः (अस्ति)।

शब्दार्थ–अस्य एव = प्रस्रवण पर्वत के ही, महति शिखरे = ऊँचे शिखर पर, गृध्रराजस्य = जटायु का, वासः = निवास स्थान, आसीत् = था। तस्य = उसके, अधस्तात् = नीचे, वयमपि = हम लोग भी, तेषु पर्णोटजेषु = उन पर्ण शालाओं में, रताः = रमण करते थे। यत्र = जहाँ, गोदावर्याः – पयसि = गोदावरी के जल में, विततानोकहश्यामलश्रीः = फैली हुई हरे वृक्षों की कान्ति, मुखर शकुनः = शोर करते हुए पक्षी, अन्तः कूजन् = अन्दर शब्द करते हुए, रम्यः = रमणीक, वनान्तः = वन प्रदेश।

अनुवाद–इसी प्रस्रवण पर्वत के उच्च शिखर पर गृध्रराज जटायु का निवास-स्थान था। उसके नीचे हम लोग भी उन पर्णकुटियों में आसक्त थे, जहाँ गोदावरी के जल में फैले हुए वृक्षों के कारण कृष्ण कान्ति वाला एवं शब्दायमान पक्षियों से मानो भीतर शब्द करने वाला मनोहर वन प्रान्त हो।

अत्रैव सा पञ्चवटी, यत्र निवासेन विविधविस्रम्भातिप्रसङ्ग-साक्षिणः प्रदेशाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता किमिदमापतितमद्य रामस्य ? सम्प्रति हि–

यहाँ पर ही वह पंचतटी है, जहाँ पर बहुत दिनों तक निवास करने से नाना प्रकार की विश्वस्त विलास क्रीड़ाओं के विशद विस्तार के साक्षी प्रदेश हैं और प्रियतमा जानकी की प्रियसखी वासन्ती नाम की वनदेवी है। आज राम को यह क्या हो गया है ? इस समय तो–

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगान्निहित इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।।26।।

अन्वय–चिद्वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रो विषरस इव कुतश्चित् संवेगात् निहितः

शल्यस्य शकलः इव, हृन्मर्मणि रूढ़ग्रन्थिः स्फुटितो व्रण इव, पुराभूतः शोको नूतन इव पुनः माँ विकलयति।

शब्दार्थ–चिराद्वेगारम्भी = चिरकाल के पश्चात् वेग उत्पन्न करने वाले, प्रसृतः = फैलते हुए, तीव्रः = अत्युग्र, संवेगात् = अतिशय वेग से, निहितः = घुसे हुए, शल्यस्य शकलः इव = बाण के अग्र भाग के खंड के समान ? हृन्मर्मणि = हृदय के मर्मस्थल में, रूढ़ग्रन्थिः = जिसमें गाँठें पड़ गई हों, स्फुटितः = फूटे हुए, व्रण इव = फोड़े के समान, पुराभूतः = जो पहले हुआ था, प्राचीन। विकलयति = व्याकुल कर रहा है।

अनुवाद–दीर्घ काल के बाद (पीड़ा में) वेग उत्पन्न करने वाले सर्वत्र फैले हुए दारुण विषरस की भाँति, कहीं से वेग से (आकर) बिंधे हुए बाण के अग्रभाग के तुल्य और हृदय के मर्मस्थान में उपद्रवों से युक्त फूटे हुए फोड़े के तुल्य पुराना शोक मानो नया होकर फिर मुझे व्याकुल कर रहा है।

तथाविधानपि तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि। (निरूप्य) अहो! अनवस्थितो भूतसन्निवेशः। तथाहि–

वैसे (शोक-कारक) होने पर भी पहिले के मित्रवत् इन भूखंडों को तब तक देखता हूँ। (देखकर) ओह, वस्तुओं की स्थिति परिवर्तन वाली है। क्योंकि–

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढ्यति।।27।।

अन्वय–यत्र पुरा सरितां स्रोतः तत्र अधुना पुलिनम्, क्षितिरुहां घनविरलभावः विपर्यासं यातः। बहोः कालात् दृष्टम् इदं वनम् अपरमिव मन्ये। शैलानां निवेशः इदं तत् इति बुद्धि द्रढयति।

शब्दार्थ–स्रोतः = प्रवाह, अधुना = अब, पुलिनम् = बालुकामय तट, क्षितिरुहां = वृक्षों का, घनविरलभावः = घन भाव (एक दूसरे से मिले हुए से) विरलभाव (एक दूसरे के बीच में अवकाश का होना), विपर्यासं = वैपरीत्य को, यातः = प्राप्त हो गया है। अपरमिव = अन्य जैसा, शैलानां निवेशः = पर्वतों की संस्थिति, इदम् तत् इति = यह वही (वन) है, ऐसी, बुद्धिम् = बुद्धि अथवा निश्चय को, द्रढयति = पुष्ट करता है।

अनुवाद–जहाँ पहले (प्रवासकाल में) नदियों का प्रवाह था, वहाँ अब सैकत तट है। तरुओं की सघनता एवं विरलता में भी परिवर्तन हो गया है। बहुत काल के पश्चात् देखा गया यह अरण्य दूसरा सा प्रतीत होता है। किन्तु पर्वतों की स्थिति 'यह वही वन है' इस बुद्धि को पुष्ट कर रही है।

हन्त-हन्त, परिहन्तमपि मां पञ्चवटीस्नेहात् बलादाकर्षतीव। (सकरुणम्)।

हाय, हाय, छोड़ते हुए भी मुझको पंचवटी स्नेह से मानो बल पूर्वक खींच रही है। (करुण के साथ)

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।
एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं
पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा।।28।।

अन्वय–यस्यां यथा स्वे गृहे मया तया सह ते दिवसा नीताः, दीर्घाभिः यत्सम्बन्धिकथाभिः एव सततम् आस्थीयत। सम्प्रति नाशितप्रियतमः एकः पापः रामः तामेव पंचवटी कथं विलोकयतु वा असम्भाव्य गच्छतु ?

शब्दार्थ–यत्सम्बन्धिकथाभिः = जिस पंचवटी से सम्बन्धित कथाओं से, नीताः = व्यतीत किए गए, सततम् = निरन्तर, आस्थीयत = रहा गया। एकः = एकाकी, अकेला, नाशितप्रियतमः = नष्ट कर दी गई है प्रियतमा जिसके द्वारा, ताम् = उस (पंचवटी) को, पापः = पापी, असंभाव्य = बिना सत्कार किए हुए।

अनुवाद–जिस (पंचवटी) में अपने घर की भाँति मैंने सीता के साथ वे दिन व्यतीत किए थे और (अयोध्या में) जिस (पंचवटी) से सम्बन्धित कथाओं से ही निरन्तर व्याप्त रहते थे। इस समय प्रियतमा को विनष्ट करने वाला एकाकी पापी राम उसी पंचवटी को कैसे देखे ? अथवा सत्कार किए बिना कैसे जाए ?

(प्रविश्य)

(प्रविष्ट होकर)

शम्बूकः–जयतु देवः। देव भगवानगस्त्यो मत्तः सुतसंनिधानस्त्वामाह–'परिकल्पितावरणमङ्गला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे च महर्षयः। तदेहि, सम्भावयास्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमु, गत्याश्वमेधाय सज्जोभव' इति।

शम्बूक–महाराज की जय हो। महाराज, भगवान् अगस्त्य ने मुझसे आपके निकटवर्ती होने का (वृत्त) सुनकर आपसे कहा है–स्नेहशीला लोपामुद्रा आरती आदि का आयोजन करके (आपकी) प्रतीक्षा कर रही हैं और सभी महर्षिगण भी आपकी प्रतीक्षा में हैं। इसलिए आइये तथा हम लोगों को कृतार्थ करिये। तत्पश्चात् अत्यन्त शीघ्र गतिवाले पुष्पक विमान से अपने स्थान पर पहुँचकर अश्वमेघ यज्ञ के लिये तत्पर हो जाइये।

रामः–यथाज्ञापयति भगवान्।

राम–इतः इतो देवः।

शम्बूक–महाराज इधर से पधारें, इधर से।

रामः–(पुष्पकं प्रवर्तयन्) भगवति पंचवटि, गुरुजनादेशोपरोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।

राम–(पुष्पकविमान को चलाते हुए) देवि पंचवटी गुरुजनों की आज्ञा के अनुरोध से क्षण भर के लिये राम के इस अतिक्रमण को क्षमा करना।

शम्बूकः–देव, पश्य, पश्य।

शम्बूक–महाराज देखिये-देखिये।

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक–
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिना प्रचलतामुद्वेजिताः कजितः
उद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः।।29।।

अन्वय–गुञ्जत्कुंजकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूकमौ कुलिकुलः क्रौंचाभिषः अयं गिरिः। एतस्मिन् प्रचलतां प्रचलाकिनां कूजितैः उद्वेजिताः कुम्भीनसाः पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु उद्वेल्लन्ति।

शब्दार्थ–गुंजत् = गूँजते हुए, कुंजकुटीर = कुंजों रूपी कुटीरों में, कौशिक = उल्लू, घटा = समूह, घृत्कारवत् = घू घू के सदृश ध्वनि युक्त, कीचकः = ऐसे बाँस जो वायु के भरने से शब्द करते हैं। स्तम्ब = गुच्छा, आडम्बर = तुमुल-ध्वनि, मूक = चुप हुए, मौकुलिकुलः = काकसमूह, क्रौंचाभिध = क्रौंच नामक, एतस्मिन् = इस पर्वत पर प्रचलताम् = चलते हुए, प्रचलाकिनां = मयूरों के, कूजितैः = कूजन करने से, उद्वेजिताः = घबड़ाये हुए, कुम्भीनसाः = भयंकर सर्प, पुराण = पुराने चन्दन के वृक्षों के तनों पर, उद्वेल्लन्ति = रेंगते हैं।

अनुवाद–(जहाँ पर) गूंजायमान कुंजरूपी कुटीरों में उल्लुओं के घू घू रव मिश्रित बाँसों की तीक्ष्ण ध्वनि से कौओं के समूह चुप हो गए हैं यह क्रौंच नामक पर्वत है। इसमें भ्रमणशील मयूरों के शब्दों से भयभीत हुए विषैले साँप प्राचीन चन्दन के वृक्षों के तनों पर इधर-उधर रेंग रहे हैं।

अपिच–

और भी–

एते ते कुहरेषु गद्गदनद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलैः
उत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः।।30।।

अन्वय–कुहरेषु गद्गदनद्गोदावरीवारयो मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः ते एते दाक्षिणाः क्षोणीभृतः। अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलैः उत्तालाः त इसे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः।

शब्दार्थ–कुहरेषु = गुहाओं में, गद्गद = अस्पष्ट शब्द करते हुए, मेघालम्बित = बादलों से युक्त, मौलि = चोटियों वाले, नीलशिखराः = अतः नीले शिखरों वाले, क्षोणीभृत् = पर्वत, दाक्षिणाः = दक्षिण दिशावर्ती, अन्योऽन्य-प्रतिघात = परस्पर रगड़ से, संकुल = घनी, चलत् = चलती हुई, कल्लोल-कोलाहलैः = बड़ी तरंगों के रव से, उत्तालाः = उत्कट, गभीरपयसः = अगाध जलों वाले, सरित्संगमाः = नदियों के संगम।

अनुवाद–जिनकी गुहाओं में गोदवरी का जल गद्गद् शब्द कर रहा है, तथा जलदों के ठहरने के कारण जिसकी चोटियों के अग्रभाव नीलवर्ण के प्रतीत हो रहे हैं ये दक्षिणदिशा के पर्वत हैं। परस्पर टकराने से घनी चलती हुई उच्छल तरंगों के कोलाहल से भयानक वे ये गहरे जल वाले एवं पवित्र नदियों के संगम हैं।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(इसके पश्चात् सभी निकल गये)

इति महाकवि श्री भवभूति विरचिते उत्तररामचरिते
पञ्चवटीप्रवेशो नाम द्वितीयोऽङ्कः

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नदीद्वयम्)

(तदनन्तर तमसा और मुरला नामक दो नदियों का प्रवेश)

एका–सखि मुरले, किमसि संभ्रान्तेव ?

एक नदी–सखि मुरला, तुम व्याकुल सी क्यों हो ?

मुरला–सखि तमसे, प्रेषितास्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपा-मुद्रया सरिरां गोदावरीमभिधातुम्। जानास्येव यथा वधू-परित्यागात्प्रभृति–

मुरला–सखी तमसा, भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने श्रेष्ठ नदी गोदावरी से यह कहने के लिये भेजा है कि–तुम जानती ही हो कि पत्नी (सीता) के परित्याग करने के बाद से–

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।1।।

अन्वय–गभीरत्वात् अनिर्भिन्नः अन्तर्गूढघनव्यथो रामस्य करुणो रसः पुटपाकप्रतीकाशः।

शब्दार्थ–गभीरत्वात् = गम्भीरता के कारण, अनिर्भिन्नः = भेदन करके बाहर न आया हुआ, अन्तर्गूढ़घनव्यथः = भीतर छिपी हुई है गाढ़ व्यथा जिसके पुटपाक प्रतीकाशः = पुटपाक के तुल्य।

अनुवाद–पुटपाक है, जो गम्भीरता के कारण अव्यक्त भीतर छिपी हुई घनी पीड़ा से युक्त राम का करुण रस पुटपाक के सदृश है।

मुरला–तेन च तथा विधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकृष्टतां गतेन दीर्घशोकसंतानेन संप्रत्यतितरां परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव कुसुमसमबन्धनं मे हृदयम्। अधुना च प्रतिनिवर्तमानेन रामभद्रेण नियतमेव पञ्चवटीवने वधूसहनिवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। तत्र च निसर्गधीरस्याप्येवंविधायामवस्थायामतिगंभीराभोगशोकक्षोभसंवेगात्पदे पदे महाप्रमादानिशोकस्थानानि शंकनीयानि रामभद्रस्य। तद् भगवति गोदावरि, त्वया तत्रभवत्या सावधानया भवितव्यम्।

मुरला—अतः वैसे इष्ट व्यक्ति (सीता) पर पड़े हुए दुःख से उत्पन्न तथा पराकाष्ठा को प्राप्त हुए उस दीर्घ शोक-परम्परा से रामभद्र आजकल बहुत अधिक दुर्बल हो गए हैं। उन्हें देखकर कुसुम के समान बन्धन वाला मेरा हृदय कांप सा गया है। अब इस समय (अयोध्या) को लौटते हुए रामभद्र पंचवटी के वन में उन स्थानों को अवश्य देखेंगे, जहाँ सीता के साथ उन्होंने स्वच्छन्द विहार किया था। उन स्थानों में, स्वभावतः धीर होते हुए भी ऐसी अवस्था में असीम शोक से उत्पन्न क्षोभ के आवेग से पग-पग पर उन्हें अत्यधिक प्रमाद में डालने वाले शोक स्थानों की आशंका की जा सकती है। अतः हे भगवती गोदावरी! पूजनीय आपको सावधान रहना चाहिए।

वीचीवातैः सीकरक्षोदशीतैराकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान्।
मोहे-मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति।।2।।

अन्वय—सीकरक्षोदशीतैः पद्मकिञ्जल्कगन्धान् आकर्षद्भिः स्वैरं-स्वैरं प्रेरितैः वीचीवातैः रामभद्रस्य मोहे-मोहे जीवं तर्पय इति।

शब्दार्थ—सीकरक्षोदशीतैः = जलकणों के चूर्ण से शीतल, पद्मकिंजल्कगन्धान् = कमल के पराग के गन्धों को, आकर्षद्भिः = लाते हुए, स्वैरं-स्वैरं = मन्द-मन्द गति से, प्रेरितैः = प्रेरित की गई, वीचीवातैः = तरंगों से मिश्रित वायुओं से, मोहे-मोहे = प्रत्येक मूर्च्छा के समय, जीवन् = जीवन को, तपर्य = तृप्त (सन्तुष्ट) करना।

अनुवाद—जल कणों से शीतल, कमल-केशरों की सुगन्धि को वहन करने वाली और मन्द-मन्द चलने वाली तरंग सम्पृक्त पवन से रामभद्र की प्रत्येक मूर्च्छा में चेतना प्रदान करना।

तमसा—उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। संजीवनोपायस्तु मोलिक एव रामभद्रस्याद्य संनिहित।

तमसा—स्नेह की उदारता उचित ही है, किंतु रामचन्द्र की संज्ञा में लाने का मौलिक उपाय आज निकट ही उपस्थित है।

मुरला—कथमिव ?

मुरला—कैसे ?

तमसा—तत्सर्व श्रूयताम्—पुरा किल वाल्मीकि तपोवनोप-कण्णत्परित्यज्य निवृते सति लक्ष्मणे सीता देवी प्राप्तप्रसववेदनमतिदुःखसंवेगादात्मानं गंगाप्रवाहेनिक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं च प्रसूता। भगवतीभ्यां पृथ्वी भागीरथीभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात्परेण दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेर्गङ्गादेव्या समर्पितं स्वयम्।

तमसा—वह सब सुनो। पहले, जब लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़कर लौट गए, तब देवी सीता ने प्रसव—वेदना से पीड़ित होकर घोर कष्ट के आवेग के कारण अपने आपको भागीरथी की धारा में फेंक दिया। उसी

समय वहाँ उनके दो बालक उत्पन्न हुए। भगवती पृथ्वी और भागीरथी ने अनुग्रह करके उन्हें पाताल पहुँचा दिया। दूध छोड़ने के पश्चात् दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि को गंगादेवी ने स्वयं अर्पित कर दिया।

मुरला–(सविस्मयम्)

मुरला–(आश्चर्य के साथ)

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकरणीभावमायात्येववंविधोजनः।।3।।

अन्वय–ईदृशानां विपाकोऽपि परमाद्भुतो जायते, यत्र एवं विधो जनः उपकरणीभावम् आयाति।

शब्दार्थ–ईदृशानाम् = सीता, राम सदृशों का विपाकोऽपि = विषम परिणाम भी, परमाद्भुतो जायते = अत्यन्त विस्मयजनक होता है। एवं विधो = इस प्रकार के, जनः = लोग, उपकरणीभावम् = साधनरूपता को, आयाति = प्राप्त होते हैं।

तमसा–इदानीं तु शम्बूक वृत्तान्तेनानेन संभावितजनस्थानागमनं रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी यदेव भगवत्या लोपामुद्राया स्नेहादाशङ्कितं तदेवाभिशङ्क्य सीतासमेता केनचिदिक गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीमुपागता।

तमसा–अभी 'इस शम्बूक के इस वृत्तान्त से रामभद्र जनस्थान में आएँगे, यह समाचार सरयू के मुख से सुनकर भगवती भागीरथी, जिसकी लोपामुद्रा ने आशंका की थी, उसी (बात) की आशंका करके, सीता के सहित कुछ घरेलू काम के बहाने गोदावरी के पास आई है।

मुरला–सुष्टु चिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या। राजधानीस्थित-स्यास्य खलु तैश्च जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैव्यपृितस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्रस्यं पुनरस्य शोकमात्र द्वितीयस्य पञ्चवटीप्रवेशो महाननर्थ इति। तत्कथं सीतया रामभद्रोऽयमाश्वासनीयः स्यात् ?

मुरला–भगवती भागीरथी ने उचित सोचा है कि राजधानी में रहते हुए एवं संसार के उन-उन उन्नतिसाधक कार्यों में लगे होने के कारण रामभद्र के चित्त विक्षेप नियंत्रित रहते हैं। किंतु सम्प्रति शान्त तथा केवल शोक सहचारी रामभद्र का पंचवटी में प्रवेश महान् अनर्थ का कारण है, तो सीता रामभद्र का कैसे आश्वासन करेगी ?

तमसा–उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या 'वत्से देवयजनसंभवे सीते, अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोद्वदिशस्य जन्म वत्सरस्य संख्यामङ्गल-ग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मनः पुराणश्वसुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितारमपहतपाप्मानं देवं स्वहस्तावचितैः पुष्पैरुपतिष्ठस्व। न त्वामवनिपृष्ठवर्तिनीमस्मत्प्रभावाद् वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किमुत मर्त्याः ? इति। अहमप्याज्ञापिता 'तमसे, त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव वधूर्जानकी अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभव' इति। साहमधुना यथादिष्टमनुतिष्ठामि।

तमसा–इस संबंध में भगवती गंगा ने कहा है–वत्से यज्ञभूति उत्पन्न सीते! आज आयुष्मान् कुश और लव के बारहवीं जन्म-संवत्सर की मंगलमयी ग्रन्थि है। अतएव तुम अपने हाथ से चुने हुए पुष्पों से अपने पुरातन श्वसुर और वैवस्तव मनु से सम्बद्ध इतने विशाल राजर्षि वंश के प्रवर्तक, अद्यविनाशक रवि-देवता की उपासना करो। पृथ्वी पर विद्यमान तुमको मेरे प्रभाव से वन देवता भी नहीं देख सकेंगे। सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? मुझे भी उन्होंने आज्ञा दी है कि–तमसा, वधू जानकी तुमसे अतिशय स्नेह करती है। अतः उसके साथ तुम ही रहना' इसलिए मैं अब उनके आदेशानुसार काम कर रही हूँ।

मुरला–अहमप्येतं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि रामभद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

मुरला–मैं भी यह वृत्त भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करती हूँ। रामभद्र भी आ ही गए हैं, ऐसा मेरा अनुमान है।

तमसा–तदियं गोदावरीहृदान्निर्गत्य–

तमसा–तो यह (सीता) गोदावरी के अगाध जलाशय से निकलकर–

परिपाण्डुदुर्बल्कपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।4।।

अन्वय–परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं विलोलकबरीकम् आननं दधती जानकी करुणस्य मूर्तिः अथवा शरीरिणी विरहव्यथा इव वनम् एति।

शब्दार्थ–परिपाण्डुदुर्बल. = अत्यन्त पीले और कृश कपोलों से मनोहर, विलोलकबरीकम् = चंचल केश-पाशवाले, आननम् = मुख को, दधती = धारण करती हुई, शरीरिणी विरहव्यथा इव = शरीरधारिणी विरहव्यथा के समान, एति = आती है।

अनुवाद–अत्यन्त पीले और क्षीण कपोलों से रमणीय एवं अस्थिर केश राशि से युक्त मुख को धारण करने वाली सीता करुण रस की (साक्षात्) मूर्ति अथवा शरीरधारिणी वेदना की भाँति पंचवटी में आ रही है।

मुरला–इयं हि सा–

मुरला–यह वह सीता–

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव धर्मः केतकीगर्भपत्रम्।।5।।

अन्वय–हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोको बन्धनात् विप्रलूनं मुग्धं किसलयम् इव परिपाण्डु क्षामम् अस्याः शरीर शरदिजो धर्मः केतकीगर्भपत्रम् इव ग्लपयति।

शब्दार्थ–हृदयकमलशोषी = हृदयरूपी कमल को सुनाने वाला, दारुणो = दुस्सह, दीर्घशोकः = चिरकाल से होने वाला शोक, बन्धनात् = डण्ठल से, विप्रलूनम् = टूटे हुए, मुग्धम् = मनोहर, किसलयम् इव = नवपल्लव के समान, परिषाण्डुक्षामम् = अतिशय पीले वर्ण वाले, क्षीण, शरदिजो धर्मः = शरद् ऋतु में उत्पन्न धाम, केतकीगर्भपत्रम् इव = केतकी पुष्प के अन्दर के पत्ते के समान, ग्लपयति = मुरझा देता है।

अनुवाद–जैसे शरद् ऋतु की धूप केवड़े के पुष्प के भीतरी (सुकुमार) पल्लव को मुरझा देती है, उसी तरह हृदय कमल को सुखाने वाला, दुस्सह एवं चिर-स्थायी शोक, वृन्त से टूटे हुए मनोहर नव-पल्लव के समान पीलापन लिये हुए श्वेत एवं कृश सीता के शरीर को, शरद् ऋतु की धूप जैसे केवड़े के पुष्प के भीतरी पल्लव को, मुरझा रहा है।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

(इसके पश्चात् दोनों घूमकर निकल गईं)

इति शुद्धविष्कम्भकः।

शुद्ध विष्कम्भक समाप्त।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

जात जात!

हे पुत्र! हे पुत्र!

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्णन्ती सीता)

(तदनन्तर पुष्प चयन में व्यस्त करुणा और उत्सुकता के साथ सुनती हुई सीता प्रवेश करती है)

सीता–अहो, जानामि प्रियसखी वासन्ती व्याहरतीति। (अम्महे, जाणामि पिअसहीं वासंदी व्याहरदित्ति)

सीता–ओह, मैं समझती हूँ–'मेरी प्रियसखी वासन्ती बोल रही है।'

(पुनर्नेपथ्ये)

(फिर नेपथ्य में)

सीतादेव्यास्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-
रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।

अन्वय–पुरा अग्रे सीतादेव्या यः लोलः करिकलभकः स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रैः वर्धितोऽभूत्!

सीता–किं तस्स ? (किं तस्य ?)

सीता–उसका क्या हुआ ?

(पुनर्नेपथ्ये)

बध्वा सार्धं पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा–
दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः।।6।।

अन्वय–सोऽयं बध्वा सार्धं पयसि विहरन् अन्येन उद्दामेन द्विरदपतिना दर्पात् सन्निपत्य अभियुक्तः।

शब्दार्थ–लोलः = चंचल, करिकलभकः = हाथी का बच्चा, स्वकरकलितैः = अपने हाथ से दिए हुए, सल्लकीपल्लवाग्रैः = सल्लकी के पल्लवों के अग्रभागों से, वर्धितोऽभूत = पोषित हुआ था।

अनुवाद–पहले सामने उपस्थित, जिस चपल गज के बच्चे को सीता देवी ने अपने हाथ से संचित की हुई गजभक्ष्या लता के पल्लवों के अग्रभागों से बढ़ाया था–

(फिर नेपथ्ये में)

वह ग्रजशावक स्वकीय स्त्री (हथिनी) के साथ जल में विहार करते हुए दूसरे मतवाले बड़े हाथी के द्वारा गर्व से वेगपूर्वक समीप आकर दबोच लिया गया।

सीता–(ससंभ्रमं कतिचित्पदानि गत्वा) आर्यपुत्र, परित्रायस्व परित्रायस्व मम तं पुत्रकम्। (विचिन्त्य) हा धिक् हा धिक् तान्येव चरिपरिचितान्यक्षराणि पञ्चवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नाति। हा आर्यपुत्र! (अज्जउत्त, परित्ताहि परित्ताहि मह तं पुत्तअं (विचिन्त्य) हद्धी हद्धी, ताइं एव्व चिर परिइदाइं अक्खराइं पंचवटीदंसणेणे मे मंदभाइणिं अणबंधति। हा अज्जउत्त।)

सीता–(शीघ्रता से कुछ पग आगे चलकर) आर्यपुत्र! मेरे पुत्र की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये (सोचकर) हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है। पंचवटी को देखने से वे ही चिरपरिचित अक्षर मुझ मन्दभागिनी के मुख से निकल रहे हैं। हा आर्यपुत्र!

(इति मूर्च्छति)

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

तमसा–समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

तमसा–धैर्य रखो, धैर्य रखो।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

विमानराज, अत्रैव स्थीयताम्।

विमानराज, यहीं रुको।

सीता–(समाश्वस्य, ससाध्वसोल्लासम्) अहो जलभरभरितमेघमन्थरस्तनित-

गंभीरमांसलः कुतोन्वेष भारतीनिर्घोषो भ्रियमाण कर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति। (अम्महे, जलभरभरिअमेहमंथरत्थणिअगंभीरमंसलो कुदो ण एसो भारईणिग्घो सो भरतकण्णविवरंमंवि मंदभाइणिं झत्ति उस्सुआवेइ)

सीता–(चैतन्य होकर, भय और आनंद के साथ अहो, जल के भार से पूर्ण मेघ के मन्दगर्जन के सदृश गंभीर और सबल यह वाणी का रव कहाँ से आकर मेरे कान के विवरों को भरता हुआ मुझ अभागिनी को भी उत्कण्ठित कर रहा है।

तमसा–(सस्मितास्त्रम्) अयि वत्से,

तमसा–(मुस्कराहट और अश्रुपात सहित) हे पुत्रि,

अपरिस्फुटनिववाणे कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।
स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठिता स्थिता।।7।।

अन्वय–स्तनयित्नोः कुतस्त्येऽपि अपरिस्फुटनिक्वाणे मयूरी इव त्वम् इदृशी चकिता उत्कण्ठिता (च) स्थिता।

शब्दार्थ–स्तनयित्नोः = मेघ के, कुतस्त्येऽपि = कहीं भी होने वाले, अपरिस्फुट = अस्पष्ट, निक्वाणे = शब्द वाले, ईदृशी = ऐसी, चकिता = विस्मित, उत्कण्ठिता = उत्सुक।

अनुवाद–मेघ की कहीं से आई हुई अस्पष्ट ध्वनि पर मोरनी के तुल्य तुम इस प्रकार विस्मित तथा उत्कण्ठित हो गई हो।

सीता–भगवति, किं भणस्यपरिस्फुटेति ? स्वरसंयोगेन प्रत्यभिजानामि नन्वार्यपुत्रेणैवैतद् व्याहृतम्। (भअवदि, किं भणसि अपरिप्फुडेत्ति ? सरसंजोएण पञ्च हि जाणामि णं अज्जउत्तेण एव्व एदं वाहरिदं)

सीता–हे भगवती, क्या कह रही हो–'अस्पष्ट शब्द ? स्वर के संयोग से मैं पहचान रही हूँ कि आर्यपुत्र ही यह बोले हैं।

तमसा–श्रूयते तपस्यतः कि शूद्रस्य दण्डधारणार्थमैक्ष्वाको राजा दण्डकारण्यमागत इति।

तमसा–सुना जाता है कि तपस्या करते हुए शूद्र को दण्ड देने के लिये इक्ष्वाकुवंशी राजा दण्डकारण्य में आए हुए हैं।

सीता–दिष्ट्या अपरिहीनधर्मः खलु स राजा। (दिट्ठिआ अपरिहीणधम्मो खु सो राआ।)

सीता–सौभाग्य से वे राजा धर्म-हीन नहीं हैं।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।

एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि।।8।।

अन्वय–यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि मे बन्धवः यानि प्रियासहचरः चिरम् अध्यवात्सम् तानि एतानि बहुकन्दरनिर्झराणि गोदावरीपरिसरस्य गिरेः तटानि (सन्ति)।

शब्दार्थ–द्रुमाः = वृक्षा, मृगाः = पशु, मे = मेरे, यानि जिनमें, प्रियासहचरः = जानकी के साथ, चिरम् = दीर्घकाल तक, अध्यवात्सम् = निवास किया, बहुकन्दरर्झिराणि = बहुत गुफाओं और झरनों से युक्त, परिसरस्य = समीपवर्ती, गिरेः = पर्वत के, तटानि = तट प्रदेश।

अनुवाद–जहां वृक्ष और पशु भी मेरे बन्धु थे, जिनमें प्रियतम समेटा दीर्घकाल तक (मैंने) निवास किया था, ये अनेक गुफाओं और झरनों से युवक गोदावरी नदी के निकटस्थ पर्वत के प्रदेश हैं।

सीता–(दृष्ट्बा) **दिष्ट्या कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डुरपरिक्षामदुर्बलनाकारेण निजसौम्यगंभीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय एवार्यपुत्रो भवति। भगवति तमसे, धारय माम्। (दिट्ठिआ कहं पहाद-चंदमडलापँडुरपरिक्खाम दुब्बलेन आश्रारेण णिश्रसोम्हगंभीराणभावमेत्तपच्चहि जेज्जो एव्व अज्जउतो होंदि। भअवदि तमसे, धारेहि मं।)**

सीता–(देखकर) सौभाग्य से ये प्रातःकालीन चन्द्रमंडल के सदृश किंचित् शुभ्र, क्षीण एवं दुर्बल आकृति वाले, अपने शान्त एवं गंभीर प्रभाव के द्वारा पहिचाने जा रहे हैं। हे भगवति तमसे, मुझे संभालो।

(इति तमसामाश्लिष्य मूर्च्छति)

(यह कहकर तमसा का आलिंगन करके मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा–वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

तमसा–हे पुत्री! आश्वस्त हो, आश्वस्त हो।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

अनेन पञ्चवटीदर्शनेन–

इस पंचवटी के दर्शन से–

अंतर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम्।।9।।

अन्वय–अंतर्लीनस्य अद्य उद्यामं ज्वलिष्यतः दुःखाग्नेः धूमस्य उत्पीड इव मोहः मां प्राक् आवृणोति।

शब्दार्थ–अंतर्लीनस्य = भीतर छिपे हुए, अद्य = आज, उद्दामम् = प्रचण्ड

रूप से, ज्वलिष्यतः = जलने वाली, दुःखाग्नेः = दुःखरूपी अग्नि के, उत्पीडः = राशि, मोहः = मूर्च्छा, आवृणोति = आच्छादित कर रहा है।

अनुवाद–अंतःकरण में छिपी हुई और आज उत्कट रूप से जलने वाली शोकाग्नि की धूमराशि के सदृश मूर्च्छा मुझे ढक रही है।

तमसा–(स्वगतम्) इदं तावदाशङ्कितं गुरुजनेन।

तमसा–(मन में) गुरुजनों को इसी बात की आशंका भी थी।

सीता–(समाश्वस्य) हा कथमेतत् ? **(हा कहं एवं ?)**

सीता–(संज्ञा में आकर) हाय यह कैसे हुआ ?

(पुनर्नेपथ्ये)

(पुनः नेपथ्य में)

हा देवि दण्डकारण्य वासप्रियसखि विदेहराज पुत्रि!

हा देवि, दण्डकारण्य में निवास के समय प्रिय सखी जानक पुत्री।।

(इति मूर्च्छति)

(यह कहकार मूर्च्छित हो जाते है)

सीता–हा धिक् हा धिक् मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलितनेत्रनीलोत्पलो मूर्छित एव। हा, कथं धरणीपृष्ठे निरुद्धनिःश्वासनिःसहं विपर्यस्तः ? भगवति तमसे, परित्रायस्व परित्रायस्व जीवयार्यपुत्रम्। (हद्धी हद्धी, मं मन्दभाइणिं वाहरिअ आमीलिदणेत्तणीलुप्पलो मुच्छिदो एव्व। हा, कहं धरणीपिट्ठे णिरुद्धणिस्सासणीसहं विपल्हत्थो ? भअवदि तमसे, परित्ताएहि परित्ताएहि। जीवावेहि अज्जउत्तं।)

(इति पादयोः पतति)

सीता–हाय धिक्कार है, धिक्कार है! मुझ अभागिनी को पुकार कर नील कमल तुल्य नेत्रों को बन्द करके (आर्यपुत्र) अचेत ही हो गए हैं। हाय! कैसे विवश होकर धरती पर गिर पड़े हैं और सांस की गति रुक गई है। भगवति तमसे! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, आर्यपुत्र को जिलाइये (यह कहकर पैरों पर गिर पड़ती है।)

तमसा–त्वमेव ननु कल्याणि! सञ्जीवय जगत्पतिम्।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष निरतो जनः।।10।।

अन्वय–ननु कल्याणि। त्वमेव जगत्पतिम् संजीवय। हि ते पाणिः प्रियस्पर्शः तत्र एष जनः निरतः।

शब्दार्थ–ननु = निश्चित रूप से, कल्याठि = मंगलस्य भाव वाली, जगत्यतिम् = संसार क स्वामी को, सञ्जीवय = जीवित करो, प्रियस्पर्शः = प्रीतिदायक स्पर्श वाला, निरतः = अनुरक्त।

अनुवाद–तमसा-हे मंगलमयी! तुम ही निश्चित संसार के स्वामी राम को

संज्ञा में लाओ क्योंकि तुम्हारे कर का स्पर्श (उन्हें) सुखद है और वे उस स्पर्श में अनुरक्त हैं।

सीता–यद् भवतु तद् भवतु। यथा भगवत्या-ज्ञापयति। (जं होदु तं होदु। जह भअवई आणवेइ)

सीता–चाहे जो हो। भगवती की जैसी आज्ञा।

(इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता)

(यह कहकर शीघ्रता से निकल गई।)

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्रया सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छ्वासो रामः)

(तत्पश्चात् भूमि पर पड़े हुए, अश्रु सहित सीता के स्पर्श से प्रसन्न एवं साँस लेते हुए राम प्रवेश करते हैं।)

सीता–(किञ्चित् सहर्षम्) जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य। (जाणे उण पच्चाअदं विअ जीविअं तेल्लोअस्स।)

सीता–(कुछ हर्ष के साथ) मुझे लगता है कि तीनों लोकों के प्राण पुनः लौट आए हैं।

रामः–हन्त भी, किमेतत् ?

राम–अहो, यह क्या है ?

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवितमनः परितर्पणोऽयं
सञ्जीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसक्तः।।11।।

अन्वय–हृदि हरिचन्दनपल्लवानाम् आश्च्योतनं नु ? निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः सेको नु ? आतप्तजीवितमनः परितपणोऽयं संजीवनौषधिरसः प्रसक्तो नु ?

शब्दार्थ–हृदि = हृदय में, हरि = हरिचन्दन (देववृक्ष विशेष) के कोमल पत्तों का, आश्च्योतनम् = रसस्राव, नु = क्या, निष्पीडि = निचोड़े हुए चन्द्रकिरण रूपी नये अंकुरों से उत्पन्न, सेकः = सेचन, आतप्त. = संतप्त जीवन एवं मन को फिर से तृप्त करने वाला, संजीव = संजीवन औषधि का रस, प्रसक्तः = लगाया गया।

अनुवाद–क्या हृदय पर कल्पतरु के किसलयों का रस चुआया गया है ? क्या चन्द्रकिरणरूपी नवांकुरों को निचोड़कर सिंचन किया गया है ? अथवा क्या संतप्त जीवन एवं मन को संतृप्त करने वाला यह संजीवनी औषधि का द्रव लगाया गया है ?

अपि च–

और भी–

स्पर्शः पुरा परिचितो नियत स एव
सञ्जीवनश्च मनसः परितोषणश्च।
सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति।।12।।

अन्वय–पुरा परिचितः सञ्जीवनः मनसः परितोषणश्च नियतं स एव स्पर्शः यः सन्तापजां मूर्च्छां परिहृत्य सपदि आनन्दनेन पुनः जडताम् आतनोति।

शब्दार्थ–सञ्जीवनः = जीवन शक्ति प्रदान करने वाला, परितोषणः = संतुष्ट करने वाला, नियतम् = निश्चित ही, संतापजां = वियोगरूपी दुःख से उत्पन्न होने वाली, परिहृत्य = हटाकर, सपदि = उसी क्षण, आनन्देन हर्ष प्रदान करने से, जडताम् = अचेतनता को, आतनोति = फैला रहा है।

अनुवाद–पहले का सुपरिचित, जीवन शक्ति प्रदायक एवं मन को संतुष्ट करने वाला, यह निश्चित ही वही स्पर्श है, जो वियोगवेदनाजन्य मूर्छा को दूर कर शीघ्र आनन्दोत्पादन द्वारा फिर से निश्चेष्टता को फैला रहा है।

सीता–(ससाध्वसकरुणमुपसृत्य) एतावदेवेदानों मम बहुतरम्। (एत्तिअं एव्व दाणिं मह बहुदर।)

सीता–(भय और करुणा के साथ तमसा के निकट जाकर) इस समय इतना ही मेरे लिए बहुत है।

रामः–(उपविश्य) न खलु वत्सलया देव्याभ्युपपन्नोऽस्मि ?

राम–(बैठकर) स्नेह-शीला देवी सीता ने तो कृपा नहीं किया!

सीता–हा धिक् हा धिक्, किमित्यार्यपुत्रो मां मार्गिष्यते ? (हद्धी हद्धी, किं त्ति अज्जउत्तो मं मग्गिएसदि।)

सीता–हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है। क्या आर्यपुत्र मेरा अन्वेषण करेंगे।

रामः–भवतु, पश्यामि।

राम–अच्छा, देखता हूँ।

सीता–भगवति तमसे! अपसराव तावत्। मां प्रेक्षानभ्यनुज्ञातेन संनिधानेन राजाधिकं कोपिष्यति। (भअवदि तमसे! ओसरम्ह दाव मं पेक्खिअ अणब्भ णण्णा देण संणिहाणेण राआ अहिअं कुपिस्सदि।)

सीता–भगवती तमसे! हम यहाँ से हट चलें। मुझे देखकर बिना आज्ञा के निकट आने से महाराज बहुत क्रोध करेंगे।

तमसा–अयि वत्से! भागीरथीप्रसादाद् वन देवतानामप्यदृश्यासि संवृतः।

तमसा–हे पुत्री! गंगा की कृपा से तुम वन-देवताओं के लिए भी अदृश्य हो गई हो।

सीता–अस्ति खल्वेतत् ? (अत्थि खु एदं ?)

सीता–अच्छा क्या यह बात है ?

रामः–हा प्रिये जानकि!

राम–हाय, प्रिये सीते!

सीता–(ससाध्वसगद्गदम्) आर्यपुत्र! असदृशं खल्वेतदस्य वृत्तान्तस्य! (सास्रम्) भगवति! किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरप्य संभावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्यैवं वत्सलस्यैवंवादिनः आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि ? अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममैषः। (अज्जउत्त! असरिसं खु एदं इमस्सवुत्तंतस्स। (सास्रम्) भअवदि! किं त्ति वज्जमई जम्मंतरेसु वि पुणो वि असंभाविअदुल्लहदंसणस्समं एव्व मंदभाइणिं उदिसिअ एव्वं वच्छलस्य एव्वं वादिणोअज्जउत्तस्सउवरि णिरणुक्कोसा भविस्सं अहं एव्व एदस्य हिअअं जाणामि, मह एसो।)

रामः–(सर्वतोऽवलोक्य सनिर्वेदम्) हा, न किंचिदत्र।

राम–(सभी ओर देखकर दुःख के साथ) हाय, यहाँ कुछ नहीं है।

सीता–भगवति! निष्कारणं परित्यागिनोऽप्येतस्य दर्शनेनैवंविधेन कीदृशी मे हृदयावस्था। (भअवदि! णिक्कारणपरिच्चाइणोवि एदस्य एव्वंविधेन दंसणेण कीलिसी मे हिअआवत्था।)

सीता–हे भगवति! निष्कारण परित्याग करने वाले भी इनके इस प्रकार के अवलोकन से मेरे चित्त की कैसी दशा हो रही है।

तमसा–जानामि वत्से, जानामि,

तमसा–हे बेटी, जानती हूँ, जानती हूँ,

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा–
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैगढिकरुणं
द्रवीभूतं प्रेरणा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।13।।

अन्वय–अस्मिन् क्षणे तव हृदयं नैराश्यात् तटस्थम् इव, विप्रियवशात् कलुषम् इव, अस्मिन् दीर्घे वियोगे झटिति घटनात् स्तम्भितम् इव, सौजन्यात् प्रसन्नम् इव, दयितकरुणैः गाढकरुणाम् प्रेम्णा द्रवीभूतम् इव।

शब्दार्थ–नैराश्यात् = (पुनः समागम की) निराशा से, तटस्थम् = उदासीन, विप्रियवशात् = (निष्कारण परित्यागरूप) अहित के कारण, कलुषम् इव = अप्रसन्न, सा, झटिति घटनात् = आकस्मिक समागम से, स्तम्भितम् इव = जड़ीभूतसा, सौजन्यात् = राम की सज्जनता के कारण, प्रसन्नम इव = प्रीतियुक्त सी, दयितकरुणैः =

दयित-प्रिय राम की, करुणैः = करुणापूर्ण विशेष अवस्थाओं से, गाढ़करुणम् = घने शोक से युक्त, प्रेम्णों = प्रेम के कारण, द्रवी-भूतम् इव = पिघला हुआ सा।

अनुवाद–इस समय तुम्हारा हृदय आशा के अभाव से उदासीनता और (परित्यागरूप) अहित के कारण खिन्न सा इस दीर्घ कालव्यापी वियोग में सहसा मिलन के कारण निश्चेष सा सौजन्य से प्रसन्न सा, प्रिय की शोकाकुल दशा से अत्यन्त आतुर तथा स्नेह से द्रवीभूत सा हो रहा है।

रामः–**देवि!**

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः।
अद्याप्यानन्दयति मां त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि।।14।।

अन्वय–स्नेहार्द्रशीतलः ते स्पर्शः मूर्तः प्रसादः इव अद्यापि माम् आनन्दयति, नन्दिनि! त्वं पुनः क्व असि ?

शब्दार्थ–स्नेहार्द्रशीतलः = स्नेह से सरस तथा संतापहारक, मूर्तः = मूर्तिमान, नन्दिनि = हे आनन्ददायिनी।

अनुवाद–राम–हे देवि! स्नेहरूपी रस से सिक्त और शीतल तुम्हारा स्पर्श मूर्तिमान अनुग्रह की भाँति इस समय भी मुझे आनन्दित कर रहा है। हे आनन्ददायिनी! तुम कहाँ हो ?

सीता–एते खलु तेऽगाधमानसदर्शितस्नेह संभारा आनन्द-निष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः। जाने, प्रत्ययेन निष्कारण-परित्यागशल्यितोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः। (एदे खु ते अगाधमाणसदंसिदसिणेहसंभारा आणंदणिस्संदिणो सुहामआ अज्जउत्तस्स उल्लावा। जाणे पच्चएण णिक्कालणपरिच्चाअसल्लिदो वि बहुमदो मह जम्मलाहो।)

सीता–आर्यपुत्र के ये ऊँचे स्वर वाले विलाप निश्चय ही अगाधचित्त से अत्यन्त स्नेह को दिखलाने वाले, आनन्द वर्षा ने वाले तथा सुधास्वरूप हैं। मैं विश्वास के आधार पर समझती हूँ कि अकारण परित्याग रूप काँटे से विद्ध होने पर भी जन्म लाभ श्लाघ्य है।

रामः–अथवा कुतं प्रियतमा ? नूनं संकल्पाभ्यासपाटवोपादान एष भ्रमो रामभद्रस्य।

राम–अथवा प्रियतमा यहाँ कहाँ ? निश्चय ही निरन्तर चिन्तन के अभ्यास से उत्पन्न होने वाला यह रामभद्र का भ्रम है।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

अहो, महान् प्रमादः प्रमादः। ('सीतादेव्या स्वकरकलितैः' इत्यर्थं पठ्यते।

ओह, बड़ा अनर्थ हो रहा है, अनर्थ। ('सीतादेव्या.' यह श्लोक का आधा भाग पढ़ा जाता है।)

रामः–(सकरुणौत्सुक्यम्) किं तस्य ?

राम–(करुणा और उत्कण्ठा के साथ) उसका क्या हुआ ?

(पुनर्नेपथ्ये)

(फिर नेपथ्य में)

('वध्वा सार्धम्.' इत्युत्तरार्धः पठ्यते।)

('वध्वा सार्धम्.-इस श्लोक के उत्तरार्ध को पढ़ा जाता है।)

सीताः–क इदानीमभियुज्यते ? (को दाणिं अभिजुज्जइ ?)

सीता–अभी कौन लड़ रहा है ?

रामः–क्वासौ दुरात्मा यः प्रियायाः पुत्रं वधूद्वितीयमभिभवति ?

राम–वह दुष्ट कहाँ है, जो प्रियतमा के वधूयुक्त सुतपर आक्रमण कर रहा है ?

(इत्युत्तिष्ठति)

(यह कहकर उठ खड़े हो जाते हैं।)

(प्रविश्य)

(प्रवेश कर)

वासन्ती–(संभ्रान्ता) देव! त्वर्यताम्।

वासन्ती–(घबड़ाई हुई) महाराज! जल्दी करिये।

सीता–हा कथं मे प्रिय सखी वासन्ती ? (हा कहं में पिअसही वासंदी ?)

सीता–हाय, क्या मेरी प्रिय सखी वासन्ती है ?

रामः–कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती ?

राम–क्या देवी (सीता) की प्रियसखी वासन्ती है ?

वासन्ती–देव! त्वर्यताम्, त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य सम्भावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

वासन्ती–महाराज! शीघ्रता करिये, शीघ्रता करिये। यहां से चलकर 'जटायु-शिखर' के दक्षिण की ओर 'सीता-तीर्थ' के निकट गोदावरी में उतरकर महारानी के तनय की रक्षा करिये।

सीता–हा तात जटायो! शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्। (हा ताद जडाओ! सुण्णं तुए विणा इदं जणट्ठाणं।)

सीता–हाय पिता जटायु! आपके बिना यह जनस्थान निर्जन लग रहा है।

रामः–अहह, हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्घाताः।

राम–हाय, ये पूर्ववृत्तान्त के वर्णन हृदय के मर्म को छेदने वाले हैं।

वासन्तीः–इत इतो देवः।

वासन्ती–महाराज, इधर से, इधर से।

सीता–भगवति! सत्यमेव बनदेवतापि मां न पश्यति। (भअवदि। सच्चं वणदेवदा वि मं ण पेक्खदि।)

सीता–हे भगवती! निश्चय ही वनदेवता भी मुझे नहीं देख रहे हैं।

तमसा–ऐ वत्से! सर्व देवताभ्यः प्रकृष्टतममैश्वर्य मन्दाकिन्याः। तत् किमिति विशङ्कसे ?

तमसा–हे बेटी, गंगा का प्रभाव सभी देवताओं से बढ़कर है। इसलिए तुम क्यों शंका कर रही हो ?

सीता–ततोऽनुसरावः। (तदो अणसरम्ह।)

सीता–तो हम लोग भी इनका अनुगमन करें।

(इति परिक्रामति।)

(यह कहकर घूम जाती हैं।)

रामः–भगवति गोदावरि! नमस्ते।

राम–हे भगवती गोदावरी आपको नमस्कार है।

वासन्ती–(निरूप्य) देव! मोदस्य विजयिनः वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेण।

वासन्ती–(भली भाँति देखकर) महाराज! विजेता और वधूयुक्त देवी के पुत्र के साथ आप प्रसन्न हों।

रामः–विजयतामायुष्मान्।

राम–चिरंजीवी पुत्र विजेता बनो।

सीताः–अहो, ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः। (अम्महे, ईदिसो मे पुत्तओ संवुत्तो)

सीता–अहो मेरा पुत्र ऐसा हो गया है ?

रामः–हा देवि! दिष्ट्या वर्धसे।

राम–हा देवि! भाग्य से बढ़ रही हो।

येनोद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु! लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तुरुणे भाजनं तस्य जातः।।15।।

अन्वय–सुतनु! उद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्तांकुरेण येन ते कर्णमूलात् लवलीपल्लवः व्याकृष्टः सोऽयम् तब पुत्रो मदमुचाम् वारणानाम् विजेता (अतएव) तरुणे वयसि यत् कल्याणम् तस्य भाजनम् जातः।

शब्दार्थ–सुतनु = हे सुन्दर शरीरवाली, उद्गच्छद्. = ऊपर को निकलते हुए, बिसकिसलय मृणालांकुर के समान, स्निग्धदन्ताकुरेण–कोमल, नए एवं छोटे दाँतों

से, कर्णमूलात् = कान के मूल से, लवलीपल्लवः = लवली लता का कोमल पत्ता, व्याकृष्टः = खींचा गया था। मदमुचाम् = मद चुआने वाले, वारणानाम् = हाथियों का, तरुणे वयसि = यौवन में, यत् कल्याणम् = जो मंगल, तस्य भाजनम् जातः = उसका पात्र हो गया है।

अनुवाद–हे सुन्दरी! जो उगते हुए कमल नाल के अग्रभाग की भाँति कोमल, दन्तांकुर से तुम्हारे श्रोत्रों के मूल से लवली लता के दल को खींच लेता था, वह यह तुम्हारा पुत्र मदस्रावी गजों का विजेता होकर युवावस्था में जो कल्याणप्रद हैं, उसका पात्र हो गया है।

सीता–अवियुक्त इदानों दीर्घायुरनया सौम्य-दर्शनया भवतु। (अविउत्तो दाणिं दीहाऊ इमाए सोम्हतादंसणाए होदु।)

सीता–अब चिरंजीवी (गजशावक) का वियोग इस सुन्दरी (पत्नी हथिनी) से न हो।

रामः–सखि वासन्ति, पश्य पश्य। कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन।

राम–सखी! वासन्ती, देखो देखो। शिशु ने प्रिया के अनुसरण करने की कुशलता को भी सीख लिया है।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसङ्क्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृत्तम्।।16।।

अन्वय–यत् स्नेहात् लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु पुष्यत्पुष्कर-वासितस्य पयसो गण्डूषसङ्क्रान्तयः सम्पादिताः, शीकरिणाकरेण कामं सेको विहितः, पुनः विरामे अनरालनालनलिनीपत्रात पत्रं धृतम्।

शब्दार्थ–लीलोत्खात = अनायास ही उखाड़े हुए, मृणालकाण्ड = कमल-दण्ड, कवलच्छेदेषु = ग्रासखण्ड, पुष्यत् = बढ़ते हुए, वासित = सुरभीकृत, गण्डूषसङ्क्रान्तयः = मुख में रखे हुए जल का संचार, सम्पादिताः = किए गए, शीकरिणा = छोटे-छोटे जलकणों से युक्त, विहितः = किया, विरामे = अंत में, पत्र अनरालनाल = सीधी नालवाले, नलिनीपत्र = कमलपत्ररूपी, आतपत्र = छाते को, धृतम् = धारण किया।

अनुवाद–जो प्रेम के कारण अनायास उखाड़े हुए मृणाल दण्डों के ग्रासों के खण्डों में, खिले हुए कमलों से सुरभित सलिल के कुल्ले प्रियतमा के मुख में छोड़े हैं। जलबिन्दुओं से युक्त सूँड़ से उसने भलीभाँति स्नान कराया और फिर अंत में सीधी नाल वाले कमलिनी पत्र का छत्र धारण किया।

सीताः–भगवति तमसे, अयं तावदीदृशो जातः। तौ पुनर्न जानाम्येतावता कालेन कुशलवौ कीदृशौ संवृत्ताविति। (भअवदि तमसे, अअंदाव ईरसो जादो।

दे उण ण अणामि एत्तिएण कालेण कुसलवा कीरिसा संवुत्तेत्ति।)

सीता–भगवती तमसे! जब यह ऐसा हो गया है, तो न जाने इतने समय में वे दोनों कुश और लव कैसे हो गए होंगे।

तमसा–यादृशोऽयं तादृशौ तावपि।

तमसा–जैसा यह है, वैसे वे दोनों भी होंगे।

सीता–ईदृश्यस्मि मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्र-विरहोऽपि। (ईरिसम्हि मंदभाइणी जाए ण केवल अज्जउत्तविरहो पुत्तविरहो वि।)

सीता–मैं ऐसी भाग्यहीन हूँ कि जिसका केवल स्वकीय स्वामी से ही वियोग नहीं, बल्कि पुत्रों से भी वियोग है।

तमसा–भवितव्यतेयमीदृशी।

तमसा–यह ऐसा प्रारब्ध ही है।

सीता–किंवा मया प्रसूतया येनैतादृशं मम पुत्रकयोरीषद्विरल-धवलदशनकुड्मलोज्ज्वलमनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितं नित्योज्ज्वलं मुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण ? (किं वा मए पसूदाए जेण एआरिसं मह पुत्तआणं ईसिविरल धवल दसणं कुम्ह लुज्जलं अणुबद्धमुद्धकाअलोविहसिदं णिंच्चुज्जलं मुह पुण्डरी अजुअलं ण परिचुम्बिअं उज्जउत्तेण ?

सीता–अथवा मेरे प्रसव करने से क्या लाभ, जब कि मेरे दोनों सुतों के कुछ कम मिले हुए, उज्ज्वल तथा कलियों के सदृश सुन्दर दाँतों से कान्तिपर्ण निरन्तर मनोहर अस्पष्ट तथा मधुर बोली और हास्य से युक्त नित्य रमणीय मुख-कमल-युगल का चुम्बन आर्यपुत्र ने नहीं किया ?

तमसा–अस्तु देवताप्रसादात्।

तमसा–देवताओं के अनुग्रह से ऐसा ही हो।

सीता–भगवति तमसे, एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छवसितप्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः संनिधानेन क्षणमात्रं संसारिणो संवृत्तास्मि। (भअवदि तमसे, एदिणा अवच्चसंसुमरणेण उस्ससिदपण्हुदत्थणी दाणिं वच्चाणं पिदुणो संणिहाणेण खणमेत्तं संसारिणी संवुत्तम्हि।)

सीता–भगवती तमसे! इस संततिस्मरण से मेरे स्तन उत्कण्ठित हो उठे हैं और उनसे दुग्ध बहने लगा है तथा इस समय मैं बालकों के पिता के समीप होने से क्षण भर के लिए गृहस्थिनी बन गई हूँ।

तमसा–किमत्रोच्यते ? प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।

तमसा–इसके विषय में क्या कहना है ? सन्तान निश्चय ही प्रेम के उत्कर्ष की चरम सीमा होती है तथा माता-पिता के परस्पर संबंध की कड़ी होती है।

अंतःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।।17।।

अन्वय–दम्पत्योः अंतःकरणतत्त्वस्य स्नेहसंश्रयात् अयमेक आनन्दग्रन्थिः अपत्यम् इति पठ्यते।

शब्दार्थ–दम्पत्योः = पति-पत्नी के, अंतःकरणतत्त्वस्य = हृदयरूपी तत्त्व का स्नेहसंश्रयात् = प्रेम का आश्रय होने के कारण, आनन्दग्रन्थिः = आनन्दनिर्मित गाँठ, अपत्यम् इति = 'सन्तान है' ऐसा कहा जाता है।

अनुवाद–पति और पत्नी के हृदय तत्त्व में अन्योन्य स्नेह का आश्रय होने से 'सन्तान' यह अनुपम सुख की ग्रन्थि कही जाती है।

वासन्ती–इतोऽपि देवः पश्यतु।

वासन्ती–महाराज, इधर भी देखिए।

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते यमचिरोद्गतमुग्धलोलबर्हम्।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे नदति स एष वधूसखः शिखण्डी।।18।।

अन्वय–अचिरोद्गतमुग्धलोलबर्हम् यं ते प्रिया अनुदिवसम् अवर्धयत् स एष शिखण्डी वधूसखः कदम्बे उच्छिखः मणिमुकुट इव नदति।

शब्दार्थ–अचिरोद्गतमुग्धलोलबर्हम् = शीघ्र उत्पन्न मनोहर एवं चंचल पंश वाले, यम् = जिस मयूर को, ते = आप (राम) की, प्रिया = सीता ने, अनुदिवसम् = प्रतिदिन, अवर्धयत् = पाला-पोषा था, स एषः = वह यह, शिखण्डी = मयूर, वधूसखः = मोरनी के साथ, कदम्बे = कदम्ब तरु पर, उच्छिखः = शिखा ऊपर किए हुए, मणिमुकुटः = मणिमयमुकुटधारी, इव = जैसा, नदति = बोल रहा है।

अनुवाद–शीघ्र उत्पन्न, रमणीय एवं चपल पंख वाले, इस मयूर को आपकी प्रियतमा जानकी ने प्रतिदिन परिपुष्ट किया था, वही यह मयूर मोरनी के साथ कदम्ब के तरु पर उन्नत शिखा वाले मणिमय मुकुटधारी जैसा (प्रतीत होता हुआ) कूज रहा है।

सीताः–(सकौतुकस्नेहास्रम्) एष सः। (एसो सो।)

सीता–(कौतूहल और प्रेम के आँसुओं के साथ) यह वही है।

रामः–मोदस्व वत्स, वयमद्य वर्धामहे।

राम–हे पुत्र! आनन्द करो, आज हम बढ़ रहे हैं।

सीताः–एवं भवतु। (एव्वं होदु)

सीता–ऐसा ही हो।

रामः–भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः
प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानसम्

सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।।19।।

अन्वय–भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः प्रचलितचटुलभ्रू ताण्डवैः मण्डयन्त्या मुग्धया करकिसलयतालैः नर्त्यमानं त्वां सुतमिव वत्सलेन मनसा स्मरामि।

शब्दार्थ–भ्रमिषु = मोर के चक्राकार भ्रमणों के समय, कृतपुटान्तर्मण्डला-वृत्तिचक्षुः = किया गया है अक्ष पुट के भीतर मण्डलाकार आवर्तन जिसके द्वारा ऐसे नेत्र को, प्रचलित = अति चंचल, चटुल = सुन्दर, भ्रूताण्डवैः = भौंहों के नर्तनों से, मण्डयन्त्या = सुशोभित करती हुई, मुग्धया = सुन्दरी सीता के द्वारा, करकिसलयतालैः = नवीन पल्लवों के समान कोमल हाथों के तालों से, नर्त्यमानम् = नचाए जाते हुए, वत्सलेन मनसा = स्नेह युक्त मन से, स्मरामि = स्मरण करता, हूँ।

अनुवाद–राम चक्कर लगा लगाकर घूमने में नेत्रपुटों के अन्दर घूमने वाले नेत्रों को अति चंचल एवं कुशल भौंहों के ताण्डव नृत्य से सुशोभित करती हुई सुन्दरी सीता के कर–पल्लवों के तालों पर न पाये जाते हुए तुम्हें सुत के सदृश स्नेह पूर्ण मन से मैं स्मरण करता हूँ।

हन्त, तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते।

अहो, पशु-पक्षी भी परिचय का अनुगमन करते हैं।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः प्रियतमयापरिवर्धितोऽयमासीत्।

अन्वय–अयं कदम्बः प्रियतमया परिवर्धितः (सन्) कतिपयकुसुमोद्गमः आसीत्।

सीताः–(सास्रम) सुष्ठु प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण। (सुट्ठु पञ्चहिजाणिदं अज्जउत्तेण)

सीता–(नेत्रों में अश्रु भरकर) आर्यपुत्र ने ठीक पहचाना है।

रामः–स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति।।20।।

अन्वय–परिवर्धितः = बढ़ाया गया, कतिपयकुसुमोद्गमः = कुछ पुष्प लगे हुए हैं जिस पर ऐसा, प्रमोदमेति = आनन्द को प्राप्त करता है।

अनुवाद–ये कदम्ब का तरु सीता के द्वारा बढ़ाया हुआ कुछ विकसित पुष्पों से युक्त था। ये पर्वतीय मयूर सीता को स्मरण करता है, क्योंकि यहाँ यह आत्मीय व्यक्ति की संगति में रहने के सदृश प्रसन्न हो रहा है।

वासन्ती–अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः। एतत्तु देवस्य आश्रमम्।

वासन्ती–यहीं महाराज आसन ग्रहण कीजिए। यह महाराज का ही आश्रम है।

(राम उपविशति।)

(राम बैठते हैं।)

वासन्ती–नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।

अत्र स्थिता तृणमदाद्वनगोचरेभ्यः
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म।।21।।

अन्वय–कान्तासखस्य ते नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति शयनीयशिलातलम् (अस्ति), अत्र स्थिता सीता वनगोचरेभ्यः तृणम् अदात् ततो हरिणकैः न विमुच्यते स्म।

शब्दार्थ–कान्तासखस्य = सीता-सहित राम का, नीरन्ध्रबालकदलीवन-मध्यवर्ति = घने सुकुमार केले के वन के बीच में स्थित, शयनीय = शयन करने का शिलातल, स्थिता = बैठी हुई, वनगोचरेभ्यः = वन में रहने वालों, के लिए, अदात् = देती थी, हरिणकैः = मृगों से, न विमुच्यते स्म = परित्याग नहीं होता था।

अनुवाद–वासन्ती–प्रिया के साथ आपका घने एवं लघु कदली-तरुओं के मध्य में वर्तमान शयन के योग्य पाषाणखण्ड है। यहाँ बैठकर सीता वन्य मृगों को घास दिया करती थी, इसलिए हरिणों ने तब से इसका परित्याग नहीं किया है।

रामः–इदं तावदशक्यमेव द्रष्टुम्।

राम–यह नहीं देखा जा सकता है।

(इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति।)

(यह कहकर रुदन करते हुए दूसरी ओर बैठ जाते हैं।)

सीता–सखि वासन्ति, किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्दर्शयन्त्या ? हा धिक् हा धिक्! स एवार्यपुत्रः। तदेव पञ्चवटीवनम्। सैव प्रियसखी वासन्ती। त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरी-काननोद्देशाः। त व जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति। ईदृशो जीवलोकस्य परिणामः संवृत्तः! (सहि वासन्दि, किं तुए किदं अज्जउत्तस्स मह अ एदं दंस अंतीए ? हद्धी हद्धी, सो एव्व अज्जउत्तो। तं एव्व पंचवडीवणं। सा एव्व पिअसही वासंदी। दे एव्व जादणिव्विसेसा मिअपक्खिणो पाअवा अ। मह उठा मन्दभाइणीए दीसंतं वि सव्वं एव्व एदं णत्थि। ईरिसो जीअलो अस्स परिणामो संवुत्तो।)

सीता–हे सखी वासन्ती, तुमने आर्यपुत्र को और मुझे यह स्थान दिखाकर क्या किया ? हाय धिक्कार है! वही आर्यपुत्र हैं। वही पंचवटी वन है। वही प्रिय सहेली वासन्ती है। वही अनेक विश्वस्त (विहारादि) व्यापारों के साक्षी गोदावरी के वन प्रान्त हैं, वही सुत-सदृश पशु-पक्षी और तरु हैं। किंतु मुझ भाग्यहीन के लिए दृष्टिपथ में आती हुई भी ये सब वस्तुएँ नहीं (के समान) हैं। (मेरे लिए तो) मनुष्यलोक की ऐसी परिणति हुई ?

वासन्तीः–सखि सीते, कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम् ?

वासन्ती–सखि सीते रामभद्र की दशा क्यों नहीं देखती हो ?

नवकुवलयस्निग्धैरङ्गैर्ददन्नयनोत्सवं

सततमपि ते स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः।
विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः।।22।।

अन्वय–नक्कुवलयस्निग्धैः अङ्गैः नयनोत्सवं ददत् ते सततं स्वेच्छादृश्योऽपि सः नवो नवः एव। शुचा विकलकरणः पाण्डुच्छायः परिदुर्बलः स इति कथमपि उन्नेतव्यः तथापि दृशोः प्रियः।

शब्दार्थ–नवकुवलयस्निग्धै = नवीन नीलकमल के समान नेत्र प्रीतिकाल, नयनोत्सवम् = नेत्रों के लिए आनंद को, सततम् = निरंतर, स्वेच्छादृश्योऽपि = इच्छानुसार देखने योग्य, नवो नव : = सदा नया, विकलगणः = विह्वल इन्द्रियों वाला, पाणडुच्छायाः = पीतवर्ण, परिदुर्बलः = अत्यंत क्षीण, उन्नेतव्यः = पहिचानने योग्य, दृशोः प्रियः = नेत्रों को प्यारा।

अनुवाद–नूतन नीलकमल के सदृश चिकने अंगों से लोचनों को आनन्दित करते हुए सर्वदैव हमारे लिए सुलभ दर्शन वह (राम) नित नूतन ही लगते थे। (वही अब) शोक से क्षीण इन्द्रियों वाले एवं मलिन कान्ति तथा अति दुर्बल 'ये वही राम हैं' इस प्रकार कठिनता से पहिचाने जाते हैं। तथापि नयनों को प्रिय लग रहे हैं।

सीताः–सखि, पश्यामि। (सहि, पेक्खामि।)

सीता–सखी! देख रही हूँ।

तमसाः–पश्य प्रियं भूयः।

तमसा–प्रियतम को फिर देखो।

सीताः–हा दैव, एष मया बिना अहमप्येतेनविनेति केन सम्भावितमासीत्। तन्मुहूर्तमात्रम् जन्मान्तरादपि दुर्लभलब्धदर्शनम् वाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद्वत्सलमार्यपुत्रम्। (हा देव्व, एसो मए विणा अहं वि एदेण विणेत्ति केण संभाविदम् आसि। ता मुहुत्तमेत्तं जम्मंतरादो वि दुल्लहलद्धदंसणं वाहसलिलंतरेषु पेक्खामि दाव वच्चलं अज्जउत्तं।)

सीता–हा विधाता, आर्यपुत्र मेरे बिना और मैं इनके बिना रहूँगी, ऐसी किसे सम्भावना थी ? तो क्षण भर के लिए जन्मान्तर में भी दुर्लभ-दर्शन वाले स्नेही आर्यपुत्र को आँसुओं के निकलने और बन्द होने के मध्य में देखूँगी।

(इति पश्यन्ती स्थिता)

(यह कहकर देखती हुई खड़ी रहती है।)

तमसा–(परिष्वज्य, सास्रम्।)

तमसः–(आलिङ्गन करके एवं नेत्रों में आँसू भरकर।)

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक–

प्रभवमवसृवन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः।।23।।

अन्वय–अतिपूरैः विलुलितम् आनन्दशोकप्रभवं वाष्पम् अवसृजन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा स्नेहनिष्यन्दिनी धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्या इव ते दृष्टिः हृदयेशं स्नपयति।

शब्दार्थ–अतिपूरैः = अत्यधिक प्रवाहों के कारण, विलुलितम् = बिखरे हुए, आनन्दशोकप्रभवम् = आनन्द तथा शोक से उत्पन्न, अवसृजन्ती = गिराती हुई, पक्ष्मलोत्तानदीर्घा = सुन्दर फैली हुई एवं बड़ी पलकों वाली, स्नेहनिष्यन्दिनी = अनुराग बरसाने वाली, धवल, मधुरमुग्धा = श्वेत, मधुर और मनोहर; दुग्ध कुल्या इव = दूध की कृत्रिम नदी के समान, स्नपयति = स्नान करतीं हैं।

अनुवाद–अत्यधिक प्रवाहों के द्वारा फैले हुए तथा आनन्द एवं शीक से उत्पन्न अश्रुओं को बहाती हुई, फैली हुई, लम्बी, सुन्दर पलकों वाली तथा स्नेह की वर्षा करने वाली, श्वेत, सौम्य एवं मनोज्ञ तुम्हारी दृष्टि, दूध की नहर की भाँति अपने प्राणेश्वर (राम) को नहला रही है।

वासन्ती–ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः।।24।।

अन्वय–मधुश्च्युतः तरवः पुष्पैः फलैश्च अर्घ्यं ददतु, स्फुटितकमलामोद-प्रायाः वनानिलाः प्रवान्तु रज्यत्कण्ठाः शकुन्तयः अविरलं कलं क्वणन्तु। अयं देवो रामःस्वयं पुनः इदं वनम् आगतः।

शब्दार्थ–मधुश्च्युतः = पराग या मकरन्द को बरसाने वाले, अर्घ्यम् = पूजा की सामग्री को, ददतु = प्रदान करें, स्फुटितकमलामोदप्रायाः = खिले हुए कमल की सुगन्ध के आधिक्य वाले, प्रवान्तु = प्रकृष्ट रूप से बहें, रज्यत्कण्ठाः = रागयुक्त गले वाले, शकुन्तयः = पक्षी, अविरलम् = निरन्तर, कलम् = अव्यक्त मधुर, क्वणन्तु = कूजें।

अनुवाद–वासन्ती-मकरन्द बरसाने वाले समस्त वृक्ष पुष्पों तथा फलों से इन्हें अर्घ्य प्रदान करें। विकसित कमलों की सुरभि से युक्त वन की वायु बहें और सुरीले कण्ठ वाले पक्षी निरन्तर कलरव करें। यह महाराज राम स्वयं फिर से इस वन में आए हैं।

रामः–एहि सखि वासन्ति, नन्वितः स्थीयताम्।

राम–हे सखी वासन्ती, आओ यहाँ बैठो।

वासन्तीः–(उपविश्य सास्रम्) महाराज, अपि कुशलम् कुमार लक्ष्मणस्य ?

वासन्ती–(बैठकर एवं अश्रुपातपूर्वक) महाराज, कुमार लक्ष्मण कुशल से तो हैं ?

रामः–(अनाकर्णनमभिनीय)

राम–(न सुनने का अभिनय करके)

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रव इव हृदयस्य प्रस्रवोद्भेदयोग्यः।।25।।

अन्वय–मैथिली करकमलवितीर्णैः अम्बुनीवारशष्पैः यान् तरुशकुनि-कुरङ्गान् अपुष्यत्, तेषु दृष्टेषु प्रस्रवोद्भेदयोग्यः मम हृदयस्य द्रवः इव कोऽपि विकारो भवति।

शब्दार्थ–करकमलवितीर्णैः = हाथ रूपी कमल से दिये हुए, अम्बुनीवार-शष्पैः = जल नीवार तथा नयी उगी हुई घास से, तरुशकुनिकुरङ्गान् = वृक्ष, पक्षी एवं मृगों को, अपुष्यत् = पाला-पोसा, प्रस्रवोद्भेदयोग्यः = स्रोत के प्रवाह में समर्थ, विकारो = चित्त का अन्यथा भाव।

अनुवाद–सीता देवी ने अपने करकमलों से प्रदत्त जल, नीवार धान्य और मृदु घास से जिन वृक्ष, पक्षी और हरिणों को पाला था उन्हें देखने पर स्रोत के प्रवाह के योग्य मेरे हृदय में तरलता के तुल्य कोई विकार उत्पन्न हो रहा है।

वासन्ती–महाराज! ननु पृच्छामि अपि कुयलं कुमार लक्ष्मण-स्येति ?

वासन्ती–महाराज! मैं पूछती हूँ कि कुमार लक्ष्मण कुशल से तो हैं ?

राम–(आत्मगतम्) अये! महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदम्। सौमित्रिमात्रके वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदित-सीतावृत्तान्तेयमिति। (प्रकाशम्) आः, कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।

राम–(मन में) अरे! 'महाराज' यह सम्बोधन प्रणय की शून्यता युक्त है। वासन्ती ने आँसुओं के कारण अव्यक्त अक्षरों में केवल लक्ष्मण के संबंध में ही कुशल-प्रश्न पूछा है। इससे मैं मानता हूँ कि इसको सीता का सब वृत्तान्त ज्ञात हो गया है। (प्रकट) हाँ, कुमार लक्ष्मण सकुशल हैं।

वासन्ती–(रोदिति) अयि देव, किं परं दारुणः खल्वसि।

वासन्ती–(रोती है) हे महाराज! आप अत्यन्त कठोर क्यों हो गए हैं।

सीता–सखि वासन्ति। किं त्वमेवंवादिनी भवसि ? पूजार्हः सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः। (सहि वासन्दि, किं तुमं एव्वंवादिणी होसि ? पूजारुहो सव्वस्स अज्जउत्तो विसेसदो मह पिअसहीए।)

सीता–हे सखी वासन्ती! तुम क्यों इस प्रकार बोल रही हो ? आर्यपुत्र तो सभी के माननीय हैं, विशेष रूप से प्रिय सखी के।

वासन्ती–त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कोमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।26।।

अन्वय–त्वं मे जीवितम् असि, त्वं द्वितीयं हृदयम्, त्वं नयनयोः कौमुदी, त्वम् अङ्गे अमृतम्, इत्यादिभिः प्रियशतैः मुग्धाम् अनुरुध्य ताम् एव-अथवा शान्तम्, अतः परेण किम् ?

शब्दार्थ–जीवितम् = जीवन, कौमुदी = ज्योत्स्ना, प्रियशतैः = सैकड़ों प्रिय वचनों से, मुग्धाम् = भोलीभाली, अनुरुध्य = अनुनय करके, बहला कर, शान्तम् = बस।

अनुवाद–वासन्ती 'तुम मेरे जीवन हो, तुम मेरे दूसरे हृदय हो, तुम नेत्रों में ज्योत्स्ना हैं, तुम मेरे अंगों में अमृत हो' इत्यादि सैकड़ों मधुर वचनों से सरल हृदया सीता को बहलाकर उसी को अथवा बस; इसके आगे कहने से क्या लाभ ?

(इति मुह्यति।)

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा–स्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च।

तमसा–वचन-समाप्ति और मूर्च्छा उचित ही है।

रामः–सखि! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

राम–सखि! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

वासन्ती–(समाश्वस्य) तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन ?

वासन्ती–(आश्वस्त होकर) आपने यह अनुचित कार्य क्यों किया ?

सीताः–सखि वासन्ति! विरम विरम। (सहि वासंदि, विरल विरल।)

सीता–सखि वासन्ति! रुको, रुको।

रामः–लोको न मृष्यतीति।

राम–संसार सहन नहीं करता है।

वासन्ती–कस्य हेतोः ?

वासन्ती–किसलिए ?

रामःस एव जानाति किमपि।

राम–वह ही जानता है, कि कारण क्या है ?

तमसा–चिरादुपालम्भः।

तमसा–बहुत समय के पश्चात् उलाहना दिया गया है।

वासन्ती–अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम्।

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ! कथं बत मन्यते।।27।।

अन्वय–अयि कठोर! ते यशः किल प्रियम्, ननु अतः परं घोरम् अयशः किम् ? नाथ! हरिणीदृशः विपिने किम् अभवत्! कथय, बत कथ मन्यसे ?

शब्दार्थ–कठोर = निष्ठुर, किल = प्रसिद्धि सूचक अध्यय, अयशः = अपयश, हरिणीदृशः = हरिणी के (नेत्रों के) समान नेत्रों वाली का, किम् अभवत् = क्या हुआ। अतः परम् = इससे अधिक, कथन = कहिए, बत = खेद सूचक अव्यय, कृर्थ मन्यसे = आप क्या समझते हैं ?

अनुवाद–वासन्ती–हे निर्दय! तुम्हें यश निश्चय प्यारा है, किंतु इससे बढ़कर भयंकर अपकीर्ति और क्या हो सकती है ? हे नाथ मृगनयनी (सीता) का वन में क्या हुआ ? बताइये आप क्या सोचते हैं ?

सीता–सखि वासन्ति, त्वमेघ दारुणा कठोरा च। यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि (सहि वासंदि, तुमं एव्व दारुणा कटोरा अ। जा एव्वं पलवंतं पलावेसि।)

सीता–हे सखी वासन्ती ? तुम ही भीषण और निष्ठुर हो, जो इस भाँति रुदन करते हुए आर्यपुत्र को और रुला रही हो।

तमसा–प्रणय एवं व्याहरति शोकश्च।

तमसा–स्नेह और शोक इस प्रकार बोल रहा है।

रामः–सखि, किमत्र मन्तव्यम् ?

राम–हे सखी! इस विषय में विचार की क्या बात है ?

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा
क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता।।28।।

अन्वय–त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टेः परिस्फुरितगर्भमरालसायाः तस्याः ज्योत्स्नामयी इव मृदुबालमृणालकल्पा अंगलतिका क्रव्याद्भिः नियर्त विलुप्ता।

शब्दार्थ–त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टेः = डरे हुए एक वर्ष की अवस्था वाले हरिण के सदृश चंचल दृष्टि वाली की, परिस्फुरित = पकड़ता हुआ, गर्भभरालसायाः = गर्भ के भार से आलस्ययुक्त, ज्योत्स्नामयी = चाँदनी की बनी हुई सी, मृदुबालमृणालकल्पा = कोमल नये उगे हुए कमलनाल के समान, अङ्गलतिका = शरीरलता, क्रव्याद्भिः = हिंसक जन्तुओं के द्वारा, विलुप्ता = नष्ट कर दी गई।

अनुवाद–भयभीत एक वर्षीय हरिण की भाँति चंचल दृष्टि वाली और कम्पित गर्भ भार से आलस्य युक्त उस सीता के लता सदृश शरीर को, जो कोमल एवं

नवीन मृणाल के तुल्य था तथा जो चन्द्रिका निर्मित सा था, अवश्यमेव हिंसक जन्तुओं के द्वारा नष्ट हो गया होगा।

सीताः–आर्यपुत्र, ध्रिये एषा ध्रियेे। (अज्जउत्त, धरामि एसा धरामि।)

सीता–आर्यपुत्र! मैं प्राणधारण कर रही हूँ, प्राणधारण कर रही हूँ।

रामः–हा प्रिये जानकि, क्वासि ?

राम–हा प्रिय सीते! तुम कहाँ हो ?

सीता–हा धिक् हा धिक्, अन्य इवार्यपुत्रः प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितो भवति। (हद्धी-हद्धी, अण्णो विअ अज्जउत्तो पमुक्ककण्ठं परुण्णो होदि।)

सीता–हाय धिक्कार है, धिक्कार है। सामान्य जन की भाँति आर्यपुत्र फूट-फूटकर रो रहे हैं।

तमसाः–वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत्। कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

तमसा–पुत्री! यह उचित ही है, क्योंकि दुःखितों को दुःखविनाश का उपाय करना ही चाहिए।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।।29।।

अन्वय–तटाकस्य पूरोत्पीडे परीवाहः प्रतिक्रिया (भवति)। हृदयं च शोकक्षोभे प्रलापैः एव धार्यते।

शब्दार्थ–तटाकस्य = जलाशय के, पूरोत्पीडे = जलप्रवाह की अधिकता होने पर, परीवाहः = जल को बाहर निकालना, प्रतिक्रिया = प्रतीकार, शोकक्षोभे = शोकजन्य क्षुब्ध अवस्था में, प्रलापैः = विलाप से, धार्यते = सँभाला जाता है।

अनुवाद–जलाशय में जल की अतिशय वृद्धि हो जाने पर बढ़ा हुआ जल बाहर निकाल देना उसका प्रतीकार होता है। शोकजन्य क्षोभ में चित्त विलापों के द्वारा ही बचाया जाता है।

विशेषतो रामभद्रस्य बहुप्रकारकष्टो जीवलोकः।

विशेष रूप से रामभद्र के लिए संसार विविध प्रकार के क्लेशों से युक्त है।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव धर्मो ग्लपयति।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ-
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्।।30।।

अन्वय–अभियुक्तेन मनसा इदं विश्वं विधिवत् पाल्यम्, धर्मः कुसुममिव प्रियाशोकः जीवं ग्लपयति। स्वयं त्यागं कृत्वा विलपनविनोदोऽपि असुलभः, तत् अद्यापि उच्छ्वासो भवति, ननु रुदितं लाभो हि।

शब्दार्थ–अभियुक्तेन मनसा = सावधान चित्त से, विधिवत् पाल्यम् =

विधिपूर्वक पालन करना चाहिए, प्रियाशोकः = प्रिया (सीता) के वियोग से उत्पन्न हुआ दुःख, जीवनम् = जीवन को, ग्लपयति = मुर्झा देता है, विलपन-विनोदोऽपि = विलाप द्वारा मनोविनोद भी, असुलभः = दुर्लभ, उच्छ्वासो = साँस लेना, ननु = निश्चय ही, रुदितम् = रोना।

अनुवाद–सावधान मन से इस संसार का विधिपूर्वक पालन करना पड़ता है। जिस प्रकार घाम फूल को मुरझाता है उसी प्रकार प्रियाविरहजन्य शोक राम के जीवन को सुखा रहा है। स्वयम् परित्याग करने के कारण रुदन के द्वारा मनोरंजन भी सुलभ नहीं है। फिर भी अब तक प्राण धारण कर रहे हैं। अतः रोना भी निश्चय ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

रामः–कष्टम् भोः, कष्टम्।

राम–ओह, दुःख है, बड़ा दुःख है।

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्,
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।31।।

अन्वय–हृदयं शोकोद्वेगाद् दलति द्विधा तु न भिद्यते, विकलः कायः मोहं वहति चेतनां न मुंचित। अंतर्दाहः तनूं ज्वलयति भस्मसात् न करोति मर्मच्छेदी विधिः प्रहरति जीवितं न कृन्तति।

शब्दार्थ–शोकोद्वेगात् = शोक की व्याकुलता से, दलति = फटता है, भिद्यते = विभक्त होता है, विकलः कायः = शोक से विह्वल शरीर, वहति = वहन करता है, चेतनाम् = चैतन्य को, न मुञ्चति = नहीं छोड़ता है, अन्तर्दाहः = हृदय का संताप, मर्मच्छेदो = मर्म स्थान को भेदन करने वाला, प्रहरति = प्रहार करता है, न कृन्तति = नहीं काटता है।

अनुवाद–हृदय वेदना से व्याकुल होने के कारण फट रहा है, परंतु दो खण्डों में विभक्त नहीं होता। विह्वल शरीर मूर्च्छित होता है, परंतु संज्ञाशून्य नहीं होता। अंतर का सन्ताप देह को जला रहा है, किंतु भस्म नहीं कर देता। मर्मस्थल को भेदने वाला भाग्य प्रहार करता है, परंतु जीवन को सर्वथा छिन्न-भिन्न नहीं करता।

रामः–हे भगवन्त-पौरजानपदाः,

राम–हे महानुभाव नागरिको और ग्रामनिवासियो,

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यवता न चाप्यनुशोचिता।
चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा-
मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते।।22।।

अन्वय–देव्याः गृहे स्थानं भवतां न अभिमतम्, ततः तृणमिव शून्ये वने त्यक्ता न च अनुशोचिता अपि। चिरपरिचिताः ते ते भावाः मां तथा द्रवयन्ति, अद्य अशरणैः अस्माभिः इदं रुद्यते, प्रसीदत।

शब्दार्थ–देव्याः = देवी (सीता) का, अभिमतम् = अभीष्ट था, न अनुशोचिताः = पश्चाताप भी नहीं किया, चिरपरिचिताः = बहुत काल तक अनुभूत, ते ते भावाः = वे वे पदार्थ, द्रवयन्ति = द्रवीभूत कर रहे हैं, अशरणैः = असहाय, रुद्यते = रोया जा रहा है। प्रसीदत = प्रसन्न हों।

अनुवाद–देवी (सीता) का भवन में निवास करना आप लोगों को अभीष्ट नहीं था। अतः निर्जन वन में तिनके के समान (वह) त्याग दी गई और पश्चात्ताप भी नहीं किया गया। चिर-परिचित वे सभी पदार्थ मुझे अत्यन्त द्रवित कर रहे हैं। मैं सम्बलविहीन होकर रो रहा हूँ, आप लोग प्रसन्न हों।

वासन्तीः–(स्वगतम्) अतिगभीरमापूरणम् मन्युभारस्य। (प्रकाशम्) देव! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।

वासन्ती–(अपने आप) शोक के भार की परिपूर्णता बहुत गंभीर है। (प्रकट) हे महाराज! अतीत की बातों के विषय में धैर्य का आश्रय लीजिए।

रामः–किमुच्यते धैर्यमिति ?

राम–क्या कह रही हो, धैर्य रखिये ?

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति।।33।।

अन्वय–देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः। नाम अपि प्रणष्टम् इव, च रामो न जीवति (इति) न।

शब्दार्थ–देव्या = सीता से, शून्यस्य = विरहित, द्वादशः परिवत्सरः = बारहवाँ वर्ष, प्रणष्टमिव = लुप्त सा हो गया है।

अनुवाद–देवी सीता से शून्य इस जगत् का बारहवाँ वर्ष है। (उसका) नाम भी विनष्ट सा हो गया है, और राम जीवित नहीं हैं, ऐसी बात भी नहीं है।

सीताः–अपहरामि च मोहितेव एतैरार्यपुत्रस्य प्रियवचनैः। (ओहरामि अ मोहिआ विअ एदेहिं उज्जउत्तस्य पिअ व अणेहिं।)

सीता–आर्यपुत्र के इन मधुर वचनों से मैं विमूढ़-सी होकर समय-यापन कर रही हूँ।

तमसा–एवमेव वत्से!

तमसा–पुत्री! बात तो ऐसी ही है।

नैताः प्रियतमा वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।
एतास्ता मधुनो धाराः श्च्योतन्ति सविषास्त्वयि।।34।।

अन्वय–स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः एताः वाचः प्रियतमाः न ताः एताः मधुनः सविषाः धाराः त्वयि श्च्योतन्ति।

शब्दार्थ–स्नेहार्द्राः = प्रेम से सिक्त, शोकदारुणाः = शोक के कारण निष्ठुर, एताः वाचः = (राम के) ये वचन, मधुनः = पुष्परस, सविषाः = विष से युक्त, धाराः = धारायें, त्वयि = तुझ पर, श्च्योतन्ति = टपक रही हैं।

अनुवाद–प्रेम से सिक्त और दुःख के कारण कठोर ये बातें अत्यधिक प्रीति जनक नहीं हैं। क्योंकि ये तो विषमय मधु की धारायें हैं। जो तुम्हारे ऊपर प्रस्रवित हो रही हैं।

रामः–अयि वासन्ति, मया खलु–

राम–हे वासन्ती! मैंने–

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः।
तथैद तीव्रो हृदि शोकशङ्कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः।।35।।

अन्वय–यथा अंतः प्रत्युप्तं तिरश्चीनम् अलातशल्यं सविषो दन्तश्च तथैव हृदि तीव्रः शोकशङ्कुः मर्माणि कृन्तन् अपि किं न सोढः ?

शब्दार्थ–अंतः = भीतर (हृदय में), प्रत्युप्तम् = गड़ी हुई, तिरश्चीनम् = तिर्छी, अलातशल्यम् = अंगारमय लोहे की कील, सविषः = विषयुक्त, हृदि = हृदय में, शोकशङ्कु = शोक रूपी कील, मर्माणि = मर्मस्थलों का, कृन्तन् = छेदन करता हुआ, किं न सोढः = क्या नहीं सहन किया ?

अनुवाद–हृदय में धँसी हुई तिरछी एवं अंगारमय लौह कील की भाँति और विषयुक्त दाँत के तुल्य हृदय में गड़े हुए दारुण शोकरूपी शल्य को, जो मर्मस्थलों को छिन्न-भिन्न करता रहा है, क्या मैंने नहीं सहा ?

सीताः–एवमपि मन्दभागिन्यहं या पुनरायासकारिणी आर्य पुत्रस्य (एवं वि मंद भाइणी अहं जा पुणो आआसआरिणी अग्जउत्तस्स।)

सीता–मै ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि फिर से आर्यपुत्र को कष्टदायिनी हो गई हूँ।

रामः–एवमतिगूढस्तम्भितान्तः करणस्यापि मम संस्तुतवस्तु दर्शनादद्यायमावेगः। तथा हि–

राम–इस प्रकार अत्यन्त गोपनीय ढंग से अंतःकरण को नियन्त्रित करने पर भी मुझे पूर्वपरिचित वस्तुओं के देखने से यह चित्तविकार हो गया है। जैसा कि–

लोलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः।
भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतो विकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः।।36।।

अन्वय–लोलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थ यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तं कोऽपि चेतोविकारः अप्रतिहतरयः तोयस्य ओघः सैकतं सेतुमिव अंतः बलात् भित्वा भित्वा प्रसरति।

शब्दार्थ–लोलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थम् = अत्यन्त चंचलता-पूर्वक उद्वेलित शोक के प्राकट्य को रोकने के लिए; यो यो यत्नः = जो-जो उपाय, कथमपि = किसी प्रकार, समाधीयते = किया जाता है, कोऽपि चेतो-विकारः = हृदय का कोई आवेग, अप्रतिहतरयः = निर्बाध गति वाला, तोयस्य ओघः = जल का प्रवाह, सैकतम् = बालुका-निर्मित, सेतुमिव = बाँध (के तोड़ने) की भाँति, अंतः = मध्य में, बलात् = बलपूर्वक, भित्वा भित्वा = छिन्न-भिन्न करके, प्रसरति = फैल जाता है।

अनुवाद–अत्यन्त चंचलता पूर्वक उद्वेलित दुःख के प्रकाशन को रोकने के लिये मैं जो-जो प्रयत्न किसी प्रकार करता हूँ, उस उसको मेरा अवर्णनीय चित्त विकार, जैसे अनिवारित-वेग वाला जल का प्रवाह बालुकामय सेतु को तोड़कर फैल जाता है, उसी भाँति हठात् भीतर से छिन्न-भिन्न करके फैल रहा है।

सीताः–आर्यपुत्रस्यैतेन दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसंयोगेन परिमुषितनिजदुःखं प्रमुक्तजीवितं मे हृदयं स्फुटति। (अज्जउत्तस्स एदिणा दुव्वारदारुणारम्भेण दुःखसंजोएण परिमुसिअणिअदुक्खं पमुक्कजीविअं मे हिअअं फुडइ।)

सीता–आर्यपुत्र के दुर्निवार एवं कठोर आरम्भ वाले दुःख के संबंध से स्वकीय-दुःख से रहित होकर एवं जीवन-शून्य सा होकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

वासन्तीः–(स्वगतम्) कष्टमत्यासक्तो देवः। तदाक्षिपामि तावत्। (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभागानवलोकनेन मानयतु देवः।

वासन्ती–मन में) दुःख की बात है, कि महाराज अत्यन्त शोक में मग्न हैं। इसलिए इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाती हूँ। (प्रकट) इस समय महाराज इन बहुत दिनों के परिचित जनस्थान के प्रदेशों को दृष्टिपात से गौरवान्वित करें।

रामः–एवमस्तु।

राम–ऐसा ही हो।

(इत्युत्थाय परिक्रामति।)

(यह कहकर उठकर घूमते हैं।)

सीताः–संदीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि। (संदीवण एव्व दुक्खस्स पिअ सहीए विणोदणोवाओत्ति तक्केमि।)

सीता–प्रिय सखी का मनोरंजन करने का उद्योग (आर्यपुत्र के) दुःख को बढ़ाने वाला ही है, ऐसा मेरा अनुमान है।

वासन्तीः–देव देव,

वासन्ती–महाराज महाराज,

वासन्तीः–देव देव!

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्ग दत्तेक्षणः
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीसैकते।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य वद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामांजलिः।।37।।

अन्वय–अस्मिन्नेव लतागृहे त्वं तन्मार्गदत्तेक्षणः अभवः, सा हंसैः कृत-कौतुका गोदावरीसैकतै चिरम् अभूत्! आयान्त्या तया त्वां परिदुर्मनायितम् इव वीक्ष्य कातर्यात् अरविन्दकुड्मलनिभः मुग्धः प्रणामाञ्जलिः बद्धः।

शब्दार्थ–अस्मिन्नेव = इसी में, त्वं = तुम, तन्मार्गदत्तेक्षणः = उस (सीता) के मार्ग में लगाई हुई दृष्टि वाले, अभवः = अवस्थित थे, कृतकौतुका = हंसों के साथ क्रीड़ा कर (चुकने) वाली, गोदावरी, सैकते = गोदावरी के रेतीले किनारे पर, चिरम् = बहुत देर, अभूत् = हो गई थी, आयान्त्या = आती हुई के द्वारा, तया = उसके द्वारा, त्वाम् = राम को परिदुर्मनायितम् = अप्रसन्नमन, वीक्ष्य = देखकर, कातर्यात् = व्याकुलता से, अथवा भय के कारण, अरविन्द कुड्मलनिभः = कमल की कलिका के तुल्य, मुग्धः = मनोहर, प्रणामांजलिः = नमस्कार की अंजलि, विहितः = बाँध ली।

अनुवाद–इसी लता-कुंज में आप सीता के मार्ग पर दृष्टि लगाये हुए थे, किंतु उसे हंसों के साथ क्रीड़ा करते हुए गोवरी के तट पर बहुत देर हो गई थी। आती हुई उसने आपको कुछ खिन्नचित्त सा देखकर भय के कारण कमल की कली के सदृश मनोहर प्रणामांजलि बाँध ली थी।

सीताः–दारुणासि वासन्ति, दारुणासि। या एतैर्हृदयमर्मोद्घाटित शल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्रं च स्मरयसि। (दालुणामि वासंति, दालुणापि। जा एदे हिं हिअअमम्मुघाडिअसल्ल संवट्टणेहिं पुणो पुणो वि मं मन्दभाइणिं अज्जउत्तं अ सुमरावेसि।)

सीता–तुम कठोर हो, हे वासन्ती, तुम कठोर हो। जो (तुम) इन हृदय के मर्मस्थलों से निकाले गए सायकों का संस्थापन करके बार-बार मुझ अभागिनी को तथा आर्यपुत्र को स्मरण करा रही हो।

रामः–अयि चण्डि जानकि! इतस्ततो दृश्यसस इवा, नानुकम्पसे।

राम–हे कोपशीले सीते! तुम इधर-उधर दिखाई देती हो, पर कृपा नहीं करती हो।

हा हा देवि! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।

सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ? ।।38।।

अन्वय—हा हा देवि! हृदयं स्फुटति, देहबन्धो ध्वंसते, जगत् शून्यं मन्ये, अंतः अविरतज्वालं ज्वलामि, सीदन् विधुरः अंतरात्मा अन्धे तमसि मज्जति इव, मोहो विष्वक् स्थगयति, मन्दभाग्यः कथं करोमि ?

शब्दार्थ—हृदयम् स्फुटति = हृदय विदीर्ण हो रहा है, देहबन्धो = शरीर के जोड़, ध्वंसते = नष्ट हो रहा है, जगत् शून्यं मन्ये = संसार को सूना समझ रहा हूँ, अंतः = भीतर (हृदय में), अविरतज्वालम् ज्वलामि = निरन्तर ज्वाला से जल रहा हूँ, सीदन = खिन्न होता हुआ, विधुरः = व्याकुल अंतरात्मा = अंतःकरण, अन्धे तमसि = घोर अन्धकार में, मज्जति इव = डूब सा रहा है। मोहः = मूर्च्छा, विष्वक् = चारों ओर से, स्थगयति = ढक रही है।

अनुवाद—हाय-हाय देवि सीते! वक्षस्थल विदीर्ण हुआ जा रहा है। शरीर के सन्धिस्थल शिथिल पड़ रहे हैं। संसार को सूना समझ रहा हूँ। अविश्रान्त ज्वालाओं से अन्दर ही अन्दर जल रहा हूँ। अवसादयुक्त एवं विकल अंतःकरण घोर अन्धकार में मानो डूब रहा है। मूर्च्छा चारों ओर से घेर रही है। मैं अभागा क्या करूँ ?

(इति मूर्च्छति)

(ऐसा कहकर मूच्छित हो जाते हैं।)

सीताः—हा धिक्, हा धिक्, पुनरपि मूढ आर्यपुत्रः। (हद्धी-हद्धी, पुणोवि मुद्धो अज्जउत्तो।)

सीता—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है, आर्य पुत्र पुनः मूर्च्छित हो गए हैं।

वासन्ती—देव! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

वासन्ती—महाराज! धैर्य धारण करिये, धैर्य धारण करिये।

सीता—आर्यपुत्र, मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमाङ्गलिकजन्मलाभस्य ते बारं-बारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति हा हतास्मि। (अज्जउत्त, मं मंदभाइणिं उद्दिसिअ सअलजीवलोअमंगलि अजम्मलाहस्स दे बारं-बारं संसइदजीवि अदालुणो दशापरिणामोत्ति हा हदम्हि।)

सीता—आर्य पुत्र, मुझ अभागिनी के लिए, सम्पूर्ण जगत् को मंगलमय बनाने के लिए जन्म ग्रहण करने वाले आपका बार-बार जीवन संशय में पड़ने से भयंकर स्थिति हो जाती है हाय, मैं मृत सी हो रही हूँ।

(इति मूर्च्छति)

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा—वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। पुनस्ते पाणिस्पर्शो रामभद्रस्य जीवनोपायः।

तमसा–बेटी! धैर्य रखो, धैर्य रखो! फिर तुम्हारे हाथ का स्पर्श रामभद्र को जीवित करने का उपाय है।

वासन्ती–कथमद्यापि नोच्छ्वसिति ? हा प्रिय सखि सीते! क्वासि ? संभावयात्मनो जीवितेश्वरम्।

वासन्ती–क्यों अभी भी सचेत नहीं हुए ? हाय प्रिय सखि सीते! कहाँ हो ? अपने प्राणेश्वर को संज्ञा में लाओ।

(सीता ससम्भ्रममुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति।)

(सीता व्याकुलता के साथ निकट जाकर राम के हृदय और मस्तक का स्पर्श करती है।)

वासन्ती–दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

वासन्ती–सौभाग्य से रामभद्र संज्ञा में आ गए हैं।

रामः–आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्बाबहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपरमिवादधाति मोहम्।।39।।

अन्वय–अकस्मात् संस्पर्शः अमृतमयैः प्रलेपैः अंतर्वा बहिरपि वा शरीरधातून आलिम्पन्निव जीवयन् पुनरपि आनन्दात् अपरं मोहम् आदधाति इव।

शब्दार्थ–अमृतमयैः = अमृत-सिक्त, प्रलेपैः = लेपों से, अंतर्वा बहिरपिवा = (शरीर के) भीतर और बाहर भी, शरीरधातून = शरीर की धातुओं को, आलिम्पन् इव = परिलिप्त करता हुआ सा पुनरपि जीवयन् = पुनरुज्जीवित करता हुआ, आनन्दात् = आनन्दसंचार के कारण, अपरंमोहम् = दूसरे प्रकार की मूर्च्छा को, आदधाति इव = उत्पन्न सा कर रहा है।

अनुवाद–राम सहसा प्राप्त हुआ यह स्पर्श अमृतयुक्त प्रलेपों से (शरीर की) आन्तरिक और बाह्य धातुओं को (अर्थात् त्वक् मांसादिकों को) अवलिप्त करते हुए समान संजीवित करके मानो पुनः आनन्दातिरेक से दूसरे प्रकार की (सुखप्रद) जड़ता को फैला रहा है।

(सानन्दं निमीलिताक्ष एव) सखि वासन्ति, दिष्ट्या वर्धसे!

(आनन्दपूर्वक नेत्र बन्द किए हुए ही) सखी वासन्ती! सौभाग्य से बढ़ रही हो।

वासन्तीः–देव कथमिव ?

वासन्ती–महाराज! कैसे ?

रामः–सखि, किमन्यत् ? पुनरपि प्राप्ता जानकी।

राम–सखी, और क्या ? सीता पुनः प्राप्त हो गई है।

वासन्तीः–अयि देव रामभद्र! क्व सा ?

वासन्ती–हे महाराज रामभद्र! कहाँ है वह ?

रामः–(स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य नन्वियम् पुरत एव।

राम–(स्पर्श के आनन्द का अभिनय कर) देखो, यह सामने ही तो है।

वासन्तीः–अयि देव रामभद्र। किमिति मर्मच्छेददारुणैरति प्रलापैः प्रिय सखीविपत्तिदुःखदग्धामपि मां पुनर्मन्दभाग्यां दहसि ?

वासन्ती–हे महाराज रामभद्र! क्यों मर्मच्छेदकारी कठोर इन निरर्थक वचनों से प्रिय सखी की विपत्ति-देवता से जली हुई मुझ अभागिनी को बार-बार आप जला रहे हैं ?

सीता–अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिरप्रणयसंभारसौम्य-शीतलेन आर्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपिझटितिसन्तापमुल्लाघयता वज्रलेपोपनद्धइव पर्यस्तव्यापार आसञ्जित इव मेऽग्रहस्तः। (ओसरिदु इच्छम्मि।) एसो उण चिरप्पण असंभारसोम्मसीअलेण अज्जउत्तप्परिसेण दीह दारुणं वि ऋत्ति संदावं उल्लाह अंतेणबज्जलेहोबणद्धो बिअ परिअद्धबावारो आसंजिओ विश्र मे अग्गहत्थो।)

सीता–मैं हटना चाहती हूँ, किंतु चिरकालीन स्नेह-समूह के कारण सुखद और शीतल तथा दीर्घकालवर्ती दारुण-सन्ताप को शीघ्र कम करने वाले आर्यपुत्र के स्पर्श से मेरे हाथ का अग्रिम भाग वज्रलेप से बँधे हुए के तुल्य क्रियाशून्य एवं चिपक सा गया है।

रामः–सखि, कुतः प्रलापः ?

राम–सखी, प्रलाप क्यों है ?

गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरः
सुधासूतेः पादैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः।

अन्वय–पूर्व परिणयविषौ कङ्कणधरो यो गृहीतः सुधासूतेः अमृतशिशिरैः। पादैः – यः परिचितः।

शब्दार्थ–पूर्वम् = पहले, परिणयविधौ = विवाह की विधि में, कङ्कणधरो = कंगन (वैवाहिकमङ्गलसूत्र) बँधे हुए, गृहीतः = ग्रहण किया (गया) था, सुधासूतेः = चन्द्रमा की, अमृतशिशिरैः = अमृतमय एवं शीतल, पादैः = किरणों से, परिचितः = परिचित।

अनुवाद–पहले विवाह-विधि में कङ्गन (माङ्गलिक सूत्र) बद्ध जो हाथ (मेरे द्वारा) ग्रहण किया गया था तथा जो चन्द्रमा की पीयूषमय एवं शीतल रश्मियों से सुपरिचित था अर्थात् (शशि-रश्मिवत् आह्लादक था)...

सीताः–आर्यपुत्र, स एवेदानीमसि त्वम्। (अज्जउत्त, सो एव्व दाणिं सि तुमं।)

सीता–आर्यपुत्र! वही आप अब भी हैं।

रामः–स एवायं तस्यास्तदितरकरौपम्यसुभगो
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः।।40।।

(इति गृह्णाति)

अन्वय–ललितलवलीकन्दलनिभः तदितरकरौपम्यसुभगः स एव अयं तस्याः पाणिः मया लब्धः।

शब्दार्थ–ललित = सुकोमल, अथवा सुन्दर, लवली = लवली-वृक्ष के, कन्दलनिभः = नूतन अंकुर जैसा, तत् इतर = उस (स्पर्शप्रदान करने वाले हाथ) से भिन्न, कर = हाथ की, औपम्यसुभगः = सदृशता के कारण मनोरम, लब्धः = प्राप्त किया गया।

अनुवाद–लवली-वृक्ष के सुकोमल एवं नूतन अंकुर जैसा तथा उस (स्पर्श करने वाले) से व्यतिरिक्त-हाथ के सादृश्य से मनोहर वही यह उसका हाथ मैंने पा लिया है।

सीताः–हा धिक् हा धिक्, **आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः प्रमादो मे संवृत्तः। (हद्धी-हद्धी, अज्जउत्तप्परिसमोहिदाए पमादो मे संवुत्तो।)**

सीता–हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है, आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित हो जाने के कारण मुझसे प्रमाद हो गया है।

रामः–सखि वासन्ति, आनन्दमीलितः प्रियास्पर्शसाध्वसेन परवानस्मि। तत्त्वमपि धारय माम्।

राम–सखि वासन्ती! मेरे नेत्र आनन्द से मुँद गए हैं और प्रियतमा के स्पर्श से उत्पन्न भय के कारण मैं परवश हो गया हूँ। अतः तुम भी मुझे पकड़ो।

वासन्ती–कष्टमुन्माद एव।

वासन्ती–दुःख है कि यह उन्माद ही है।

(सीता ससंभ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति।)

(सीता शीघ्रता से हाथ खींचकर वहाँ से हट जाती है।)

रामः–हा धिक्, प्रमादः–

राम–हाय धिक्कार है, असावधानी हो गई–

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात् परिभ्रष्टः।
परिकम्पिनः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्।।41।।

अन्वय–जडः प्रकम्पी स्विद्यन् तस्याः सः करपल्लवः जडात्, परिकम्पिनः स्विद्यतो मम करात् सहसा एव परिभ्रष्टः।

शब्दार्थ–जडः = स्तब्ध, प्रकम्पी = काँपता हुआ, स्विद्यन् = पसीजता हुआ, तस्या = सीता का, करपल्लव = पाणिपल्लव, जडात् = स्तब्ध; परिकम्पिनः = काँपते हुए, स्विद्यतः = स्वेद युक्त हुए, परिभ्रष्टः = छूट गया।

अनुवाद–निश्चेष्ट कम्पायमान तथा पसीने से युक्त सीता का वह पल्लव तुल्य हाथ, स्तब्ध कम्पायमान और स्वेदयुक्त मेरे हाथ से सहसा छूट गया।

सीताः–हा धिक्, हा धिक्, अद्याप्यनुबद्धबहुघर्णमानवेदनं न संस्थापयाम्यात्मानम्। (हद्धी, हद्धी अज्जवि अणबद्धबहुघुम्मंतवेअणं णसंगवेमि अत्ताणं।)

सीता–हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है, निरन्तर वर्तमान अत्यन्त क्षोभयुक्त वेदना से युक्त अपने को अब भी नहीं स्थिर कर पा रही हूँ।

तमसाः–(सस्नेहकौतुकस्मितम् निर्वर्ण्य)

तमसा–(स्नेह, उत्कण्ठा और मन्दमुस्कान के साथ देखकर)

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता कदंबयष्टिः स्फुटकोरकेव।।42।।

अन्वय–वत्सा प्रियस्पर्शसुखेन मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता स्फुटकोरका कदम्बयष्टिरिव सस्वेदरोमांचितकम्पिताङ्गी जाता।

शब्दार्थ–वत्सा = पुत्री, प्रियस्पर्शसुखेन = प्रियतम के स्पर्श सुख के कारण, मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता = वायु से कम्पित और नूतन जल से गिली, स्फुटकोरका = खिली हुई कलियों वाली, कदम्बयष्टिः = कदम्ब की शाखा, स्वेदरोमांचित कम्पिताङ्गी = पसीना, रोमांच और कम्पन से युक्त अंगों वाली, जाता = हो गई है।

अनुवाद–पुत्री (जानकी) प्रिय के स्पर्श-सुख के कारण, वायु से कम्पित और नवीन जल से सिक्त एवं खिली हुई कलियों वाली कदम्ब की शाखा की भाँति, स्वेद, रोमांच और कम्पन से युक्त अंगों वाली हो गई है।

सीताः–(स्वगतम्) अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषामंस्यत एष परित्याग एषोऽभिषङ्ग इति। (अवसेन एदेण अत्ताणएण लज्जाविदिम्हि भअवदीए तमसाए। किं ति किल एसा मण्णिस्सीद एस्सो परिच्चाओ एसो अहिसंगेत्ति।)

सीता–(मन में) विह्वल (मेरी) इस आत्मा ने मुझे भगवती तमसा के समक्ष लज्जित कराया है। यह क्या सोचती होंगी, (कहाँ तो) यह परित्याग और कहाँ यह प्रेम ?

रामः–(सर्वतोऽवलोक्य) हा, कथं नास्त्येव ? नन्वकरुणे वैदेहि!

राम–(सभी ओर देखकर) हाय, यह कैसे ? (वह) है ही नहीं ? हे निष्ठुर सीते!

सीताः–अकरुणास्मि यैवंविधं त्वां पश्यन्त्येव जीवामि। (अकरुणास्मि जा एव्वंविहं तुमं पेक्खंदी एव्वं जीवेमि।)

सीता–मैं निष्ठुर हूँ, जो इस प्रकार आपको देखती हुई भी जी रही हूँ।

रामः–क्वासि प्रिये, देवि, प्रसीद प्रसीद। न मामेवंविधं परित्यक्त-मर्हसि।

राम–कहाँ हो प्रिये ? देवि! प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ। मुझको इस अवस्था में छोड़ने के योग्य तुम नहीं हो।

सीताः–अयि आर्यपुत्र, विप्रतीपमिव (अयि अज्जउत्त, विप्पदीवं विअ।)

सीता–हे आर्यपुत्र! वह विपरीत है।

वासन्ती-देव, प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयाति भूमिं गतमात्मानम्। कुत्र मे प्रिय सखी ?

वासन्ती–महाराज! प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये। अपने ही असाधारण धैर्य से पराकाष्ठा को प्राप्त अपने को आप सँभालें। मेरी प्रिय सखी (सीता) कहाँ है ?

रामः–व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि तां न पश्येत् ? अपि खलु स्वप्न एष स्यात् ? न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा ? सर्वथापि स एवैषभगवाननेकबारपरिकल्पितो विप्रलम्भः पुनरनुबध्नाति माम्।

राम–स्पष्ट है कि वह नहीं है। नहीं तो वासन्ती भी उसको क्यों न देखती ? तो क्या यह स्वप्न होगा ? मैं सोया नहीं हूँ। राम को नींद कहाँ ? निश्चय ही वही यह शक्तिशाली तथा बार-बार विचार में आया हुआ भ्रम (मुझे) बार-बार आक्रान्त कर रहा है।

सीताः–मयैव दारुणया विप्रलब्ध आर्यपुत्रः। (मए एव्व दारुणाए विप्पलद्धो अज्जउत्तो।)

सीता–मुझ निष्ठुर ने ही आर्यपुत्र को भ्रान्त किया है।

वासन्तीः–देव, पश्य पश्च–

वासन्ती–महाराज! देखिए, देखिए–

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-
स्ते चैते पुरतः पिशाचबदनाः कंकालशेषाः खराः।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह-
न्नन्तर्व्यापृतविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः।।43।।

अन्वय–जटायुषा विघटितः अयं पौलस्त्यस्य कार्ष्णायसो रथः, पुरतः एते च ते पिशाचवदनाः कंकाललेषाः खराः खड्गच्छिन्नजटायु पक्षतिः अरिः चलन्तीं सीतां वहन् अंतर्व्याप्तविद्युत् अम्बुद इव इतः द्याम् अभ्युदस्थात्।

शब्दार्थ–जटायुषा = जटायु द्वारा, विघटितः = भङ्ग, पौलस्त्यस्य = रावण का, कार्ष्णायसो = लौह का, पिशाचवदनाः = राक्षस के समान मुख वाले, कंकालशेषाः = अस्थि-अवशिष्ट, खराः = गधे, खडगच्छिन्नजटायुपक्षतिः = तलवार से जटायु के पंखों को काटकर, अरिः = रावण चलन्तीम् छटपटाती, वहन = लिए हुए, अंतर्व्याप्तविद्युत् = भीतर चमकती हुई बिजली वाला, अम्बुद = बादल, द्याम् = आकाश को, अभ्युदस्थात् = उड़ गया।

अनुवाद–जटायु से भग्न हुआ यह रावण का लौह-स्पन्दन है, ये सामने वही

राक्षसों के समान मुख वाले अस्थिमात्र बचे खच्चर हैं। तलवार से जटायु के पंखों को छिन्न-भिन्न कर रावण छटपटाती सीता को लिये हुए, भीतर चमकती हुई बिजली से युक्त मेघ की भाँति यहाँ से आकाश में उड़ गया था।

सीताः–(सभयम्) आर्यपुत्र, तातो व्यापाद्यते। तस्मात्परित्रायस्व परित्रायस्व। अहमप्यपह्रिये। (अज्जउत्त, तादो वावादीअदि। ता परित्ताहि परित्ताहि। अहं वि अवहरिज्जामि।)

सीता–(भय सहित) आर्यपुत्र! तात की हत्या हो रही है। अतः रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, मेरा भी अपहरण हो रहा है।

रामः–(सवेगमुत्थाय) आः पाप! तातप्राणसीतापहारिन् लङ्कापते! क्व यास्यसि ?

राम–(वेग पूर्वक उठकर) अरे पापी! तात के प्राण और सीता का अपहरण करने वाले रावण! कहाँ जायेगा ?

वासन्तीः–अयि देव राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो! किमद्यापि ते मन्युविषयः ?

वासन्ती–हे महाराज! राक्षसवंश के विनाश के लिए धूमकेतु! क्या अब भी आपके कोप का पात्र कोई है ?

सीताः–अहो, उद्भ्रान्तास्मि। (अम्महे, उब्भत्तम्हि।)

सीता–अहो, मैं घबड़ा गई हूँ।

रामः–अन्य एवायमधुना विपर्ययो वर्तते।

राम–अब यह दूसरा ही दशा-परिणाम है।

उपायानां भावादविरतविनोदव्यतिकरै-
र्विमर्दैर्वीराणां जगति जनितात्यद्भुतरसः।
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्
कटुस्तूर्ष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः।।44।।

अन्वय–उपायानां भावात् अविरतविनोदव्यतिकरैः वीराणां विमर्दैः जगति जनितात्यद्भुतरसः मुग्धाक्ष्याः सवियोगः रिपुघातावधिः अभूत् खलु तु कटुः तूष्णीं सह्यः अयं प्रविलयः निरवधिः।

शब्दार्थ–उपायानाम् = साधनों के, भावात् = होने से, अविरतविनोद-व्यतिकरैः = अविश्रान्त मनोरंजन संबंधों से, वीराणां विमर्दैः = वीरों के संग्रामों से, जगति = संसार में, जनितात्यद्भुतरसः = महान् अद्भुत रस उत्पन्न करने वाला, मुग्धाक्ष्याः = मनोहर नेत्र वाली का, वियोगः = विरह, खलु = निश्चय ही, रिपुघाताविधिः = शत्रु के वध तक, तूष्णीम् = चुप, सह्यः = सहने योग्य, प्रविलयः = विरह, निरवधिः = सीमारहित।

अनुवाद–साधन सम्पन्नता के कारण निरन्तर मनोरंजन के साधन स्वरूप

वीरों (हनुमानादि) के संग्रामों से संसार में अत्यन्त अद्‌भुत रस का उत्पादक, मनोहर नेत्र वाली जानकी का वह विरह निश्चय ही शत्रु-वध तक सीमित था, किंतु तीक्ष्ण एवं मूक होकर सहनीय यह वियोग तो असीमित है।

सीताः–निरवधिरिति हा हतास्मि मन्दभागिनी। (णिरवधित्ति हा हदम्हि मन्दभाइणी।)

सीता–वियोग अवधि-शून्य है, हाय, मैं अभागिनी मर गई।

रामः–कष्टं भोः,

राम–ओह, दुःख है।

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे वीर्यं हरीणां वृथा,
प्रज्ञा जाम्बवतो न यत्र, नगतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे।।45।।

अन्वय–यत्र मे कपीन्द्रसख्यमपि व्यर्थ, हरीणां वीर्यं वृथा, यत्र जाम्बवतः प्रज्ञा न, वायोः पुत्रस्य अपि गतिः न, यत्र विश्वकर्मतनयः नलोऽपि मार्गं कर्तुं न क्षमा, सौमित्रेरपि पत्रिणाम् अविषये तत्र क्व मे प्रिये असि ?

शब्दार्थ–कपीन्द्रसख्यम् = सुग्रीव की मित्रता, हरीणाम् = वानरों का, वीर्यम् = पराक्रम, प्रज्ञा = बुद्धि, वायोः पुत्रस्य = हनुमान की, विश्वकर्मतनयः = विश्वकर्मा का पुत्र, क्षमः = समर्थ, सौमित्रेः = लक्ष्मण के, पत्रिणाम् = बाणों का, अविषये = अलक्ष्य।

अनुवाद–जहाँ मेरी सुग्रीव के साथ मित्रता भी निष्फल है, वानरों का शौर्य भी असफल है, जहाँ जाम्बवान की बुद्धि असमर्थ है, हनुमान की भी गति नहीं है, जहाँ विश्वकर्मा के सुत नल भी पथ-निर्माण में अक्षम हैं और लक्ष्मण के भी बाणों से अगोचर वहाँ कहाँ, हे मेरी प्रियतमे हो ?

सीताः–बहुमानितास्मि पूर्वविरहे। (बहुमाणिदम्हि पुव्वविरहे।)

सीता–पूर्व वियोग के विषय में मैं बहुत सम्मानित हुई हूँ।

रामः–सखि वासन्ति! दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामदर्शनम्। कियच्चिरं त्वाम् रोदयिष्यामि। तदनुजानीहि मां गमनाय।

राम–सखि वासन्ती! इस समय राम का दर्शन बान्धवों के लिए कष्ट का कारण हो गया है। कितनी देर तक तुम्हें रुलाऊँगा ? अच्छा अब मुझे जाने की आज्ञा दो।

सीताः–सोद्वेगमोहं तमसामातिश्लष्य) हा भगवति तमसे, गच्छतीदानीमार्यपुत्रः। किं करोमि ? (हा भअवदि तमसे, गच्छदि दाणिं अज्जउत्तो ? किं करिस्सं।)

सीता–(उद्वेग एवं मोह के साथ तमसा का आलिंगन करके) हाय भगवती **तमसे!** अब आर्यपुत्र जा रहे हैं, क्या करूँ ?

(इति मूर्च्छति।)

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसाः–वत्से जानकि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। विधिस्तवानुकूलो भविष्यति। तदायुष्मतोः कुशलवयोर्वर्षद्धिमङ्गलानि संपादयितुं भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।

तमसा–हे पुत्री जानकी, धैर्य धारण करो, धैर्य धरो। भाग्य तुम्हारे अनुकूल होगा। इसलिए आयुष्मान् कुश और लव की जन्मगाँठ के मङ्गलाचारों को सम्पादित करने के लिए गंगा के चरणों के निकट ही हम चलें।

सीता–भगवति! प्रसीद। क्षणमात्रमपि दुर्लभदर्शनम् जनम् पश्यामि। (भअवदि! पसीद। खणमेत्तं वि दुल्लहदंसणं जणं पेक्खामि।)

सीता–भगवति तमसे! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। दुर्लभ-दर्शन आर्यपुत्र को क्षण भर और देख लूँ।

रामः–अस्ति चेदानीमश्वमेधसहधर्मचारिणी मे।

राम–इस समय अश्वमेघ यज्ञ के लिए मेरी सहधर्मिणी है।

सीताः–(साक्षेपम्) आर्यपुत्र! का ? (अज्जउत्त! का ?)

सीता–(आक्षेपपूर्वक) आर्यपुत्र! वह कौन है ?

वासन्तीः–परिणीतमपि किम् ?

वासन्ती–विवाह भी कर लिया क्या ?

रामः–नहि नहि, हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

राम–नहीं, नहीं, सोने की बनी सीता की प्रतिमा है।

सीताः–(सोच्छवासास्रम्) आर्यपुत्र! इदानीमसि त्वम्। अहो, उत्खातितमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण। (अज्जउत्त, दाणिं सि तुमं। अम्महे, उक्खाइदं दाणिं मे परिच्चा असल्लं अज्जउत्तेण।)

सीता–(ऊर्ध्व-श्वास लेकर तथा अश्रु भरकर) आर्यपुत्र! इस समय आप यथार्थ हैं। अहो, इस समय आर्यपुत्र ने मेरे परित्यागरूपी शल्य (काँटे) को निकाल दिया है।

रामः–तत्रापि तावद्बाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।

राम–उस स्वर्णमूर्ति में भी मैं अश्रुपूर्ण नेत्रों का रंजन करता हूँ।

सीताः–धन्या खलु सा यैवमार्यपुत्रेण बहुमन्यते। यैवमार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशाबन्धनं खलु जाता जीवलोकस्य। (धण्णा खु सा जा एव्वं अज्जउत्तेण बहुमण्णीअदि। जा एव्वं अज्जउत्तं विणोदयंदी आसाबंधणं खु जादा जीअलोअस्स।

सीता–वह स्वर्ण प्रतिमा निश्चय ही धन्य है, जिसको आर्यपुत्र अत्यन्त आदर

देते हैं तथा जो इस प्रकार आर्यपुत्र को सुख प्रदान करती हुई जीवलोक की आशा का सूत्र हो गई है।

तमसा–(सस्मितस्नेहार्द्रं परित्यज्य) अयिवत्से! एवमात्मा-स्तूयते।

तमसा–(प्रेमपूर्ण मुस्कराहट के साथ आलिंगन करके) हे बेटी! इस प्रकार तुम आत्मश्लाघा कर रही हो।

सीताः–(सलज्जम्) परिहसितास्मि भगवत्या। परिहसिदम्हि भअवदीए।)

सीता–(लज्जापूर्वक) भगवती तमसा ने मेरा परिहास किया है।

वासन्ती–महानर्य व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। गमनं प्रति यथा कार्यहानिर्न भवति तथा कार्यम्।

वासन्ती–आपका यह सम्मिलन हमारे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह है। प्रस्थान के विषय में आप वैसा ही निश्चय करें जिससे कार्य की हानि न हो।

रामः–तथास्तु।

राम–वैसा ही हो।

सीता–प्रतिकूलेदानी में वासन्ती संवृत्ता। (पडिऊला दाणिं मे वासंदी संवुत्ता।)

सीता–इस समय वासन्ती मेरे प्रतिकूल हो गई है।

तमसा–वत्से! एहि गच्छावः।

तमसा–पुत्री! आओ, हम चलें।

सीता–एवं कुर्वः। (एव्वं करम्ह)।

सीता–ऐसा ही करें।

तमसा–कथं वा गम्यते, यस्यास्तव–

तमसा–अथवा कैसे चलें ? जिस तुम्हारे–

प्रत्युप्तस्येव दयिते तृष्णादीर्घस्य चक्षुः।
मर्मच्छेदोपमैर्यत्नैः सन्निकर्षो निरुध्यते।।46।।

अन्वय–दयिते प्रत्युतस्य इव तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः मर्मच्छेदोपमैः यत्नैः सन्निकर्षः निरुध्यते।

शब्दार्थ–दयिते = प्रियतम में, प्रत्युप्तस्य = गाड़ा हुआ, तृष्णादीर्घस्य = इच्छा के कारण विस्तृत, चक्षुषः = नेत्रों का, मर्मच्छेदोपमैः = मर्मस्थलों को छेदने के सदृश, यत्नैः = प्रयासों से, सन्निकर्षः = संबंध, निरुध्यते = रोका जाता है।

अनुवाद–प्रियतम में मानो गंभीरता से गड़े हुए और अवलोकन की आकांक्षा से विस्तृत्त हुए तुम्हारे नयनों का संबंध मर्मस्थानों में छेदन के तुल्य प्रयासों के द्वारा रोका जा रहा है।

सीता–नमः सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्।

(णमो सुकिदपुण्णजणर्दसणिज्जाणं अज्जउत्तघलणकमलाणं।)

सीता–पुण्यात्मा लोगों से दर्शन करने योग्य आर्यपुत्र के पाद-पद्मों को प्रणाम है।

(इति मूर्च्छति)

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा वत्से, समाश्वसिहि।

तमसा–बेटी, धैर्य धरो।

सीताः–(आश्वस्य) कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम् ? (कि अच्चिरं वा मेहंतरेण पुण्णचंददंसणं ?)

सीता–(धैर्य धारण करके) मेघ के अवरोध के कारण पूर्णचन्द्र का दर्शन इतनी देर तक ?

तमसाः–अहो संविधानकम्–

तमसा–अहो सृष्टिविधान विचित्र है–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समस्तम्।।47।।

अन्वय–एकः करुणो रस एव निमित्तभेदात् भिन्नः पृथक्-पृथक् विवर्तान श्रयते इव, यथा अम्भः आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान् (श्रयते) तु तत् समस्तं सलिलम् एव हि।

शब्दार्थ–निमित्तभेदात् = कारण-भेद से, विवर्तान् = वस्तु की अन्य रूप में प्रतीति, श्रयते = अवलम्ब करता है। अम्भः = जल, आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् = जलभँवर, बुलबुला और तरंगरूपा, विकारान् = रूपान्तरों को।

अनुवाद–एक ही करुण रस कारण (विभावादि) भेद से भिन्न होता हुआ पृथक्-पृथक् परिणामों (शृंङ्गारादि) को मानो प्राप्त करता हुआ सा प्रतीत होता है, जैसे (एक) जल ही भँवर, बुलबुला और लहर आदि विकारों को प्राप्त होता है, (पर वास्तव में) वह सब जल ही है।

रामः–अयि विमानराज, इत इतः।

राम–हे विमानराज पुष्पक! इधर, इधर।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

(सभी उठ खड़े होते हैं।)

तमसाबासन्त्यौ–(सीतारामौ प्रति)

तमसा और वासन्ती–(सीता और राम के प्रति)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः

स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।
स च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ–
स्तव वितरतु भद्रं भूयसे मंगलाय।।48।।

अन्वय–अवनिः अमरसिन्धुः अस्मद्विधाभिः सार्धं यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता स च कुलपतिः अनुयातारुन्धीकः स च मुनिः वसिष्ठश्च तव भूयसे मंगलाय भद्रं वितरतु।

शब्दार्थ–अस्मद्विधाभिः = हम जैसों के, सार्धम् = सहित, अवनिः = पृथ्वी, अमरसिन्धुः = गंगा, कुलपतिः = बाल्मीकिः, छन्दसाम् = पद्यों का, प्रयोक्ता = निर्माता, भूयसे = अत्यधिक, भद्रम् = कल्याण, वितरतु = प्रदान करें।

अनुवाद–पृथ्वी, गंगा और हम जैसों के साथ, जो छन्दों का प्रथम निर्माता (है) वह कुलपति बाल्मीकि तथा अरुन्धती से अनुसृत वह मुनि वसिष्ठ आपके महान मंगल के लिये 'शिवम्' प्रदान करें।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(सबका प्रस्थान।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचितउत्तररामचरिते
'छाया' नाम तृतीयोऽङ्कः।

चतुर्थोऽंकः

(ततः प्रविशतस्तापसौ)

(तदनन्तर दो तपस्वी प्रवेश करते हैं)

एकः–सौधातके! दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य। तथाहि–

एक–हे सौधातकि! आज भगवान् वाल्मीकि के आश्रम की, बहुत अधिक अतिथियों के आगमन से वृद्धि को प्राप्त होती हुई अनेक आयोजनों वाली सुषमा तो देखो। जैसा कि–

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूतप्रिया–
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते।।1।।

अन्वय–तपोवनमृगः सद्यःप्रसूतप्रियापीतात् अभ्यधिकम् उष्णमधुरं नीवारौदनमण्डं पर्याप्तम् आचामति। सर्पिष्मतो भक्तस्य स्फुरता गन्धेन मनाक् अनुसृतः कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते।

शब्दार्थ–तपोवनमृगः = आश्रम का हरिण, सद्यः = तत्क्षण, बच्चे को जन्म देने वाली प्रिया (मृगी) द्वारा पिये हुए से, अभ्यधिकम् = बचे हुए (माँड) को, उष्णमधुरम् = गर्म और मीठा, नीवारौदनमण्डम् = जंगलीधान्य (चावल) के भात का माँड़, आचामति = पी रहा है। सर्पिष्मतो = घृत-युक्त, भक्तस्य = भात के, स्फुरता गन्धेन = फैलती हुई सुगन्धि से, मनाक् = कुछ-कुछ, अनुसृतः = अनुगत अर्थात् युक्त, कर्कन्धूः = बेर-मिश्रित सागों के पकाने का सौरभ, परिस्तीर्यते = चारों ओर फैल रहा है।

अनुवाद–(यह) आश्रम का हरिण (अपनी) उसी समय ब्याई हुई प्रिया के पीने से बचे हुए नीवार के भात का गर्म और मधुर माँड़ यथेच्छ पी रहा है। घी पड़े हुए भात की उड़ती हुई सुगन्धि से कुछ-कुछ मिश्रित होकर बदरी फलों (बेर) से युक्त शाक के पकने का सौरभ चारों ओर फैल रहा है।

सौधातकिः–स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूचर्चानिमनध्यायकारनणानां

तपोधनानाम्। (साअदं अणेअपआराणं जिण्णंकुच्छाणं अणज्झाअकालणाणं तपोधणाणं।

सौधातकि—विविध प्रकार के, श्वेत दाढ़ी वाले एवं अनध्याय के कारण तपस्वियों का स्वागत है।

प्रथमः–(विहस्य) अपूर्वः खलु बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके।

पहला–(हंसकर) हे सौधातिक, गुरुओं के प्रति विशेष आदर का सूचक यह तुम्हारा हेतु अदभुत है।

सौधातकिः–जो दण्डायन, किंनामधेय इदानीमेष महत्ः स्त्री-सार्थस्य धुरधरोऽद्यतिथिरागतः?

(भे दण्डाअण किंणामहेओ दाणिं एसो महत्तस्स इत्थिआसत्यस्स धुरंधरो अज्ज अदिही आअदो?)

सौधाताकि–हे दण्डायन, आज इस विशाल स्त्री-समूह के अग्रणी अतिथि जो पधारे हैं उनका क्या नाम है?

दण्डायनः–धिक्प्रहसनम्! नन्वयमृष्यशृंगाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि ?

दण्डायन—धिक्कार है तुम्हारे इस प्रहसन को। ऋष्यशृंग के आश्रम से अरुन्धती को आगे करके तथा महाराज की पत्नियों को साथ लेकर भगवन् वसिष्ठ आए हुए हैं। अतः इस प्रकार अनर्थक बातें क्यों कर रहे हो ?

सौधातकिः–हुं वसिष्ठः ? (हुं वसिट्ठो ?)

सौधातकि—ऐं, यह वसिष्ठ है ?

दण्डायनः–अथ किम् ?

दण्डायन—और क्या ?

सौधातकिः = मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इवैष इति।

(मए उण जाणिदं को वि वग्धो विअ एसो त्ति।)

सौधातकि—मैंने तो समझा कि यह कोई व्याघ्र जैसा है।

दण्डायनः–आः, किमुक्त भवति ?

दण्डायन—ओह, क्या कह रहे हो ?

सौधातकिः–येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता।

(जेण परावडिदेण एव्व सा वराई कविला कल्लाणी बलामोडिअ मडमडाइआ।)

सौधातकि—जिनके आते ही बेचारी पीत बछिया को बलपूर्वक मड़-मड़ा दिया गया।

दण्डायनः–समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रिया-याभ्यागताय वत्सतरों महोक्षं वा महाराजं वा पचन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।

दण्डायन—'मधुपर्क मांस के साथ होता है।' इस वेद-वचन को विशेष महत्व देने वाले गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अतिथि के लिए दो वर्ष की बछिया को, अथवा बड़े बैल को अथवा बड़े बकरे को पकाते हैं, धर्मसूत्रों के रचयिताओं ने इसे धर्म-कार्य बताया है।

सौधातकिः—भो निगृहीतोऽसि। (भो णिगिहीदोसि।)

सौधातकि—अरे, तुम निग्रह-स्थान में आ गए हो।

दण्डायनः—कथमिव ?

दण्डायन—कैसे ?

सौधातकिः—येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निवर्तितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता।

(जेण आअदेसु वसिट्ठमिस्सेसु वच्छदरी विससिदा अज्ज। एव्व पच्चाअदस्स राएसिणो जणअस्स अभवदा वम्मीइणा धहिमहूहिं एव णिव्वत्तिदो महुवक्को। वच्छतरी उण विसज्जिदा।)

सौधातकि—इसलिए कि महर्षि वसिष्ठ के आगमन पर बछिया मारी गई थी किंतु आज ही समागत राजर्षि जनक के लिये भगवान् बाल्मीकि ने दधि और मधु से मिश्रित मधुपर्क प्रदान किया और बछिया रहने दी।

दण्डायनः—अनिवृत्तामांसानामेवं कल्पं व्याहरन्ति केचित्। निवृत्तमांसस्तु तत्रभवान् जनकः।

दण्डायन—कुछ धर्मशास्त्रकार, जिन्होंने मांसभक्षण नहीं त्यागा है उनके लिए मांस सहित मधुपर्क का विधान, कहते हैं। पूजनीय जनक ने तो मांस खाना छोड़ दिया है।

सौधातकिः—किं निमित्तम् ? (किं णिमित्तं ?)

सौधातकि—किसलिये ?

दण्डायनः—यद्देव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः, तस्य कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

दण्डायन—इसलिये कि सीता देवी का वैसा भाग्य-दुष्परिणाम सुनकर जनक वानप्रस्थ हो गए हैं। तथा चन्द्रद्वीप नामक तपोवन में तपस्या करते हुए उन्हें अनेक वर्ष हो गए हैं।

सौधातकिः—ततः किमित्यागतः ? (तदो किंति आअदो ?)

सौधातकि—तो वे यहां किसलिए आये हैं ?

दण्डायनः—संप्रति च प्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम्।

दण्डायन—आजकल वे अपने प्रिय मित्र भगवान् वाल्मीकि को देखने आए हैं।

सौधातकिः–अप्यद्य सम्बन्धिनीभिः समं निर्वृत्त दर्शनमस्य न वेति ? (अवि अज्ज संबन्धिणीहिं समं णिउत्तं दंसणं से ण वेत्ति ?)

सौधातकि–तो क्या आज उनका अपनी सम्बन्धिनियों से मिलना हुआ या नहीं।

दण्डायनः–संप्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्याः कौसल्यायाः सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता यत् स्वयमुपेत्य स्नेहादयं द्रष्टव्य इति।

दण्डायन–अभी ही भगवान् वसिष्ठ ने भगवती अरुन्धती को कौशल्या देवी के समीप यह कहने के लिए भेजा है कि वे स्वयं निकट जाकर प्रेमपूर्वक जनक के दर्शन करें।

सौधातकिः–यथैते स्थविराः परस्परं मिलिताः, तथावामपि बटुभिः सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सवं खेलन्तो मानयावः। अथ कुत्र स जनकः ? (जह एदे टूठविरा परस्परं मिलिदा, तह अम्हे वि वडुहिं सह मिलिअ अणज्झाअमहुस्सवं खेलंतो मणेम्ह। अह कुत्थं सो जणओ ?)

सौधातकि–जिस प्रकार ये वृद्धजन आपस में मिल गए हैं, उसी भाँति हम दोनों भी अन्य छात्रों के साथ मिलकर खेलते हुए अनध्याय के आनन्द को उठाएँ। वे राजर्षि जनक कहाँ हैं ?

दण्डायनः–तथायं प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य संप्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति। य एषः–

दण्डायन–वही ये जनक वाल्मीकि और वसिष्ठ की अर्चना करके आश्रम के बाहर तरु के नीचे बैठे हुए हैं।

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।
अंतः प्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पतिः।।2।।

अन्वय–अंतः प्रसृप्तदहनः जरन् वनस्पतिः इव हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।

शब्दार्थ–अंतःप्रसृप्तदहनः = अन्दर व्याप्त अग्नि वाला, जरन् = जर्जर, जीर्ण, वनस्पतिः = (शमी) वृक्ष, हृदि = हृदय में, नित्यानुषक्तेन = निरन्तर लगे हुए, सीताशोकेन = सीता के दुःख से, तप्यते = जलता है।

अनुवाद–हृदय में सदा विद्यमान जानकी के दुःख से, भीतर व्याप्त अग्नि वाले जीर्ण (शमी) वृक्ष के सदृश ये सन्तप्त होते रहते हैं।

(इति निष्क्रान्तौ)

(ऐसा कहकर निकल जाते हैं।)

(इति मिश्रविष्कम्भः)

(मिश्र विष्कम्भक समाप्त।)

(ततः प्रविशति जनकः)

(तदनन्तर जनक का प्रवेश)

जनकः–**अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता**
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे,
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति।।3।।

अन्वय–अपत्ये तादृक् यत् दुरितम् अभवत् महता तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयतां तेन विषक्तः पटुः धारावाही चिरेण अपि नव इव मे मन्युः क्रकच इव मर्माणि निकृन्तन् न विरमति।

अन्वय–अपत्ये तादृक् यत् दुरितम् अभवत् महता तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयतां तेन विषक्तः पटुः धारावाही चिरेण अपि नव इव में मन्युः क्रकच इव मर्माणि निकृन्तन् न विरमति।

शब्दार्थ–अपत्ये = सन्तान अर्थात् पुत्री सीता के विषय में, तादृक् = उस प्रकार का, यत् दुरितम् = जो अनर्थ (लोकापवाद के कारण परित्याग), महता = महान, तीव्रेण = उग्र अथवा तीक्ष्ण, व्रणितहृदयेन = हृदय को घायल कर देने वाले से, व्यथयता = पीड़ा पहुँचाने वाले, विषक्तः = विशेष रूप से लगा हुआ, पटुः = समर्थ, धारावाही = धारा सदृश निरन्तर बहने अर्थात् व्याप्त रहने वाला, मन्युः = (सीता विषयक) शोक, क्रकच इव = आरे के समान, निकृन्तन् = कतरता हुआ, न विरमति = शान्त नहीं होता।

अनुवाद–जनक–(मेरी) सन्तान (पुत्री सीता) पर जो उस प्रकार का अनर्थपात हुआ, उस विशाल, तीक्ष्ण, हृदय-विदारक तथा वेदना उत्पन्न करने वाले (परित्याग) से विशेषतः सम्बद्ध, सक्षम, निरन्तर संचरित होने वाला और दीर्घकाल के बाद भी नये के समान प्रतीत होने वाला मेरा यह शोक आरे के समान मर्मस्थलों को चीरता हुआ शान्त नहीं होता।

जनकः–**कष्टं एवं नाम जरया दुःखेन च दुरासदेन भूयः पराकसां-तपनप्रभृतिभिस्तपोभिः शोषितान्तः शरीरधातोरवष्टम्भ एव। अद्यापि मम दग्धदेहो न पतति। अन्धतासिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते। अनेक संवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भासः प्रत्यग्र इव न मे दारुणो दुःखसंवेगः प्रशाम्यति। अयि मातः देवयजनसंभवे सीते! ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतः येन लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितुं न शक्यते। हा पुत्रि,**

जनक–अत्यंत दुःख की बात है कि इस प्रकार वृद्धावस्था तथा दुःसह दुःखों से, फिर पराक और सांतपन आदि शरीरशोधक व्रतों से शरीरान्तर्वर्ती धातुओं के

सूख जाने से केवल प्राणों से ही शरीर रुका हुआ है। अभी भी मेरा दग्धप्राय शरीर नष्ट नहीं हो रहा है। ऋषियों का कहना है कि जो आत्मघाती होते हैं, उन्हें मरने पर सूर्यरहित अथवा असुरों के अन्धकार परिपूर्ण लोकों में जाना पड़ता है। अनेक वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी प्रतिक्षण सीताजन्य-चिन्तन से स्पष्ट प्रकाशयुक्त और नवीन सा यह मेरा कठोर दारुण दुःख प्रवाह शान्त नहीं हो रहा है। हा पूजनीये! यज्ञभूमि समुत्पन्ने सीते! तुम्हारे जीवनावशेष भाग्य का ऐसा परिणाम हुआ कि लज्जा के कारण स्वच्छन्दतापूर्वक रोया भी नहीं जा सकता है। हा पुत्री!–

अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं ते।।4।।

अन्वय–अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुडमलाग्रं स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं शिशोः ते वदनकमलकं स्मरामि।

शब्दार्थ–अनियतरुदितस्मितम् = अनियमित रोदन और हास्य वाले, विराजत् = सुशोभित, कतिपय = थोड़े से, कोमल दन्तकुड्मलाग्रम् = कोमल दन्त-मुकुलों के अग्रभागों वाले, स्खलत् = तोतले अर्थात् अस्पष्ट, असमञ्जस = असम्बद्ध, मञ्जु = मनोरम, जल्पितम् = आलाप (वचन) वाले, शिशोः = शैशवावस्था के, वदनकमलकम् = मुख-कमल को, स्मरामि = याद करता हूँ।

अनुवाद–बिना किसी क्रम के रोदन और हास्य वाले, सुशोभित होते हुए थोड़े से कोमल दाँतों रूपी मुकुलों के अग्रभाग वाले, तोतले, असंगत और मनोरम आलापों वाले, तेरे शैशवकालीन मुखकमल को याद कर रहा हूँ।

भगवति वसुन्धरे! सत्यमति दृढ़ासि।

भगवती पृथ्वी! वास्तव में आप अत्यन्त कठोर हैं।

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु–
र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः
विद्यां वागिव यामसूत भवतो शुद्धिं गतायाः पुनः–
स्तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः ?।।5।।

अन्वयः–दारुणै! त्वं वह्निः मुनय, वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यदि वा रघोः कुलगुरुः स्वयं भास्करः देवः यस्याः माहात्म्यं विदुः वाक् विद्याम् इव भवती याम् असूत तस्याः शुद्धि गतायाः त्वद्दुहितुः पुनः तथा विशसनं किम् अमृष्यथाः ?

शब्दार्थ–दारुणे = हे कठोर (हृदय वाली), त्वम् = पृथ्वी, रघोः कुलगुः = रघुवंश के अधिष्ठाता, भास्करः = सूर्य, यस्याः = जिस (सीता) के, माहात्म्यम् = महत्व को, विदुः = जानते हैं, वाक् = वाग्देवता सरस्वती, भवती = आप (पृथ्वी) ने, याम् = जिस (सीता) को, असूत = जन्म दिया, शुद्धि गतायाः = अग्नि-परीक्षा

द्वारा निर्दोष प्रमाणित की गई, विशसनम् = (परित्याग रूप) विनाश को, किम् अमृष्यथाः = कैसे सहन कर लिया ?

अनुवाद–हे कठोर हृदये! (धरित्रि!) जिसके माहात्म्य को तुम, अग्निदेव, मुनिजन, वसिष्ठ की पत्नी (भगवती अरुन्धती), गङ्गा और रघुकुल के आदि-पुरुष स्वयं सूर्यदेव (भी) जानते हैं; जिस प्रकार वाग्देवी विद्या को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार आपने जिसको उत्पन्न किया है, उस शुद्ध प्रमाणित अपनी पुत्री के ऐसे विनाश को फिर तुमने कैसे सह लिया ?

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

इत इतो भगवती महादेव्यौ।

भगवती (अरुन्धती) और महादेवी (कौशल्या) इधर से आइये, इधर से।

जनकः–(दृष्ट्वा) अये, गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती। (उत्थाय) कां पुनर्महादेवीत्याह। (निरूप्य) हा हा, कथमियं महाराजस्य दशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या ? क एतां प्रत्येति सैवेयमिति नाम ?

जनक–अरे, गृष्टि नामक कंचुकी के द्वारा जिसे मार्ग दिखाया जा रहा है, यह भगवती अरुन्धती है। (उठकर) अच्छा तो 'महादेवी' किसको कहा है। (ध्यानपूर्वक देखकर) हाय, हाय, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी और मेरी प्रियसखी कौसल्या हैं ? कौन इन्हें पहिचान सकता है कि यह वही हैं।

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः।।6।।

अन्वय–इयं दशरथस्य गृहे श्रीर्यथा आसीत् वा श्रीरेव (आसीत्) उपमानपदेन किम् ? बत कष्टम् सा एषा दैववशेन अन्यत् किमपि दुःखात्मकं भूतम् इव जाता, अहो विकारः।

शब्दार्थ–श्रीर्यथा = लक्ष्मी के समान, वा = अथवा, श्रीरेव = लक्ष्मी ही, उपमानपदेन किम् = औपम्यसूचक पद से क्या प्रयोजन, वत कष्टम् = खेद है (दोनों अव्यय खेदसूचक होते हैं), सा एषा = वही यह (कौशल्या) दैववशेन = दुर्भाग्यवश, अन्यत् = कोई और (दूसरी), किमपि = अज्ञात, अनिर्वचनीय, दुःखात्मकम् = दुःखरूप, भूतम् इव = जीवधारी के समान, जाता = हो गई है, अहो विकारः = आश्चर्यजनक परिणाम है।

अनुवाद–यह (कौशल्या) महाराज दशरथ के भवन में लक्ष्मी जैसी थीं। औपम्यसूचक शब्द (यथा) से क्या प्रयोजन ? किंतु हाय दुःख है, कि दुर्भाग्यवश

वही यह अन्य किसी अत्यन्त दुःखी प्राणी के सदृश हो गई हैं। अहो! आश्चर्यजनक परिणाम है।

य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः।
क्षते क्षारमिवासह्य जातं तस्यैव दर्शनम्।।7।।

अन्वय–य एव जनः पूर्वं मे मूर्तः महोत्सवः आसीत्, तस्यैव दर्शनं क्षते क्षारम् इव असह्यं जातम्।

शब्दार्थ–मूर्तः = शरीरधारी, क्षते = घाव पर, क्षारम् इव = नमक की भाँति, असह्यम् = असहनीय, जातम् = हो गया है।

अनुवाद–जो यह व्यक्ति इस वृत्तान्त (सीता परित्याग) से पूर्व मेरे लिए शरीरधारी महोत्सव था, (आज) उसी का दर्शन कटे हुए स्थान पर नमक छिड़करने के सदृश असहनीय हो रहा है।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती कौशल्या कञ्चुकी च)

अरुन्धतीः–ननु ब्रवीमि द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येवं वः कुलगुरोरादेशः। अतएव चाहं प्रेषिता। तत्कोऽयं पदे पदे महानध्यवप्तायः ?

(तदनन्तर अरुन्धती, कौशल्या और कंचुकी का प्रवेश)

अरुन्धती–मैं कहती हूँ–स्वयं उनके पास जाकर महाराज जनक का दर्शन करें, ऐसा आपके कुल गुरु वशिष्ठ का आदेश है और इसीलिये मैं यहाँ भेजी गई हूँ तब फिर आप पग-पग पर यह महान् अप्रवृत्ति क्यों दिखाती हैं ?

कञ्चुकी–देवि, संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशमिति विज्ञापयामि।

कञ्चुकी–हे देवि, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मन को स्थिर करके भगवान् वसिष्ठ की आज्ञा का पालन करें।

कौशल्या–ईदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वदुःखान्यवतरन्ति। तस्मान्न शक्नोम्युद्धर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम्। (ईरिसे काले मिहिलाहिवो मएदिट्ठव्वो त्ति समं एव्व सव्वदुक्खाइं ओदरंति। ता ण सक्कणोमि उव्वट्ठमाणमूलबंधणं हिअअं पज्जवत्थावेदुं।)

कौशल्या–ऐसे समय मुझे मिथिला के राजा जनक का साक्षात्कार करना है इस कारण सभी दुःख एक साथ ही प्रकट हो रहे हैं। इसलिये मैं अपने हृदय को जिनके अंतस्तल की ग्रन्थियाँ टूट चुकी हैं, स्थिर कर पाने में असमर्थ हूँ।

अरुन्धती–अत्र कः सन्देहः ?

अरुन्धती–इसमें क्या सन्देह है ?

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि।
दृष्टेजने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरव संप्लवन्ते।।8।।

अन्वय–मानुषाणां सन्तानवाहीन्यपि सम्बन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रेयसि जने दृष्टे दुःखसहानि (भूत्वा) स्रोतः सहस्रैः इव संप्लवन्ते।।8।।

शब्दार्थ–सन्तानवाहीन्यपि–सतत प्रवाहित होने वाले (अर्थात् निरन्तर अनुभूत होने वाले) सम्बन्धि वियोगजानि = प्रिय-सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न, प्रेयसि-जने दृष्टे = अतिस्नेही व्यक्ति के देखे जाने पर, दुःसहानि = कठिनता से सहनीय अथवा असहनीय (होकर), स्रोतः सहस्रैः = हजारों स्रोतों से, संप्लवन्ते = बहने लगते हैं।

अनुवाद–मानवों के निरन्तर सञ्चरित होने वाले, संबंधीजनों के वियोग से उत्पन्न दुःख (अपने) प्रिय व्यक्ति के दिखाई पड़ने पर सहन-शक्ति का अतिक्रमण करके अगणित धाराओं के समान प्रवाहित होने लगते हैं।

कौसल्या–कथं नु खलु वत्साया मे वध्वा वनगतायास्तस्याः पितूराजर्षेर्मुखं दर्शयामः ? (कहं णु खु वच्छाए मे बहूए वनगदाए तस्सा पिदुणो राएसिणो मुहं दंसम्ह ?)

कौशल्या–प्रिय पुत्री वधू सीता के वन में निर्वासित हो जाने पर मैं उसके पिता राजर्षि जनक को कैसे मुँह दिखलाऊँ ?

अरुन्धती–एषः वः श्लाघ्यसंबंधी जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ।।9।।

अन्वय–एषः वः श्लाघ्यसंबंधी जनकानां कुलोद्वहः (अस्ति), यस्मै याज्ञवल्क्यो मुनिः ब्रह्मपारायणं जगौ।

शब्दार्थ–वः = तुम लोगों का, श्लाघ्यसंबंधी = प्रशंसा-योग्य समधी, जनकानां = जनक-वंशीय राजाओं के, कुलोद्वहः = वंश में सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्मपारायणम् = वेद (ब्रह्म) का उपदेश, किया है।

कौशल्या–एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे वध्वाःपिता विदेहराजः सीरध्वजः। स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान् दिवसान्। हा दैव, सर्वं तन्नास्ति। (एसो सो महाराअस्स हिअअणिव्विसेसो वच्छाए मे बहुए पिदा विदेहराओ सीरद्धओ। सुमारिदम्हि अणिव्वेदरमणीए दिवहे। हा देव्व, सव्वं तं णत्थि।)

कौशल्या–यह महाराज के अभिन्न-हृदय और मेरी प्यारी बहू के पिता मिथिलेश्वर सीरध्वज ही हैं मुझे सुखद और मनोहर उन दिनों की याद जिन्होंने दिला दी है। हा विधाता। अब वह सब कुछ नहीं रहा।

जनकः–(उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति, वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते।

जनक–(समीप पहुँचकर) भगवती अरुन्धती विदेहराज सीरध्वज आपका अभिवादन करता है।

यथा पूतम्मन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः

पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः।
त्रिलोकीमङ्गल्यामवन्तिललीनेन शिरसा
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम्।।10।।

अन्वयः--पवित्रस्य महसः निधिरपि पूर्वेषां गुरुणां गुरुतमः अपिते पतिः यथा पूतम्मन्यः खलु, त्रिलोकीमङ्गल्यां जगद्वन्द्यां देवीम् उषसम् इव भगवतीम् अवनि तललीनेन शिरसा वन्दे।

शब्दार्थ--पवित्रस्य महसः = पुनीत तेज के, निधिः = आश्रय, पूर्वेषाम् = प्राचीनों के, गुरुणाम् = गुरुओं के, गुरुतमः = सर्वश्रेष्ठ गुरु, ते पतिः = तुम्हारे (अरुन्धती के) पति (वसिष्ठ), यया = जिसके (तुम्हारे) द्वारा, पूतम्मन्यः = स्वयं को पुनीत मानने वाले, खलु = निश्चय ही, त्रिलोकीमङ्गल्याम् = तीनों भुवनों का कल्याण करने वाली को, जगद्वन्द्याम् = विश्व-वन्दनीया को, देवीम् उषसम् इव = उषा देवी के सदृश, भगवतीम् = ऐश्वर्यमयी को, अवनितललीनेन = पृथ्वी पर रखे हुए, शिरसा = मस्तक से।

अनुवाद--पावन तेज के निधान एवं पूर्ववर्ती गुरुओं के भी श्रेष्ठ गुरु आपके पति (ब्रह्मर्षि वसिष्ठ) जिस आपसे स्वयं को पुनीत मानते हैं, (उन) तीनों लोकों की कल्याणकारिणी तथा विश्व-वन्दनीया उषा देवी के सदृश ऐश्वर्यमयी आपको पृथ्वी पर रखे हुए मस्तक से प्रणाम करता हूँ।

अरुन्धतीः--अक्षरं ते ज्योतिः प्रकाशताम्। स त्वां पुनातु देवः परो रजसां, य एष तपति।

अरुंधती--आपको अविनाशी तेज प्रकाशित हो। वे आदित्य देव आपको पवित्र करें। जो--रजोगुण आदि दोषों से रहित हैं। वे ये प्रकाशित हो रहे हैं।

जनकः--आर्य गृष्टे, अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः ?

जनक--हे आर्य कञ्चुकी! प्रजापालक भगवान् राम की माँ कोसल्या स्वस्थ तो हैं ?

कञ्चुकी--(स्वगतम्) निरवशेषमितिनिष्ठुरमुपालब्धाः स्मः। (प्रकाशम्) राजर्षे, अनेनैवमन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनां नार्हसि दुःखयितुमति दुःखितां देवीम्। रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि। यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौराः। न चाग्निशुद्धिमनल्पकाः प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन।

कञ्चुकी--(मन में) इन्होंने बड़ी निष्ठुरता के साथ कुछ भी न छोड़कर हम लोगों को उलाहना दिया है। (प्रकट रूप से) राजर्षि। इसी क्षोभ के कारण बहुत काल से रामभद्र का दर्शन त्याग किये हुई अत्यन्त दुःखित महादेवी को कष्ट देना आपके लिये उचित नहीं है रामभद्र का भी कोई भाग्य--दुष्परिणाम रहा है, जिससे चारों ओर पुरवासी वीभत्स किंवदन्ती फैलाने में प्रवृत्त हो गए हैं। उनमें से बहुत

से क्षुद्र-बुद्धि पुरवासी सीता-अग्नि-परीक्षा द्वारा प्रमाणित निर्दोषता पर विश्वास नहीं करते हैं। अतः महाराज ने ऐसा दारुण कार्य किया है।

जनकः–(सरोषम्) आः, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशो घने ? कष्टमेवंवादिना जनेन रामभद्र परिभूता अपि पुनः परिभूयामहे।

जनक–(रोषपूर्वक) ओह, मेरी सन्तान की शुद्धि करने के लिये 'अग्नि' कौन होता है ? कष्ट है कि 'अग्नि' ने सीता को निर्दोष प्रमाणित किया यह कहने वाले जन ने रामभद्र के द्वारा तिरस्कृत किये गए हमें 'पुनः तिरस्कृत किया है।

अरुन्धती–(निःश्वस्य) एवमेतत्। अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि। सीतेत्येव पर्याप्तम्। हा वत्से।

अरुंधती–(निःश्वास लेकर) यह ऐसा ही है। सीता के लिये अग्नि के अक्षर क्षुद्र हैं 'सीता' यह नाम ही पर्याप्त है। हा बेटी!

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतुननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।।11।।

अन्वय–मम शिशुर्वा शिष्या वा असि यत् तत् तथा तिष्ठतु, तु विशुद्धेः उत्कर्षः त्वयि मम भक्तिं द्रढयति। ननु शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, जगतां वन्द्या असि, गुणिषु गुणाः पूजास्थानं, लिङ्गं न वयश्च न।

शब्दार्थ–शिशुः = बालिका, वा = अथवा, तत् = तथा, तिष्ठतु = वह संबंध वैसा ही रहे, विशुद्धेः = आचरण-शुद्धि की, उत्कर्षः = पराकाष्ठा, द्रढ़यति = सुस्थिर करती है, स्त्रैणम् = नारीत्व, जगतां = विश्व की, वन्द्या = पूज्या, पूजास्थानम् = समादर के अधिष्ठान, लिङ्गम् = (पुरुषत्व, स्त्रीत्व, जटाधारण आदि) चिह्न विशेष, वयः = अवस्था।

हिंदी अनुवाद–तुम मेरी चाहे पुत्री हो अथवा शिष्या हो, वह (संबंध) वैसा ही बना रहे, किंतु चरित्रोज्ज्वलता की उन्नति तुममें मेरी श्रद्धा को सुस्थिर करती है। तुममें शैशव हो अथवा नारीत्व, वस्तुतः तुम विश्व की वन्दनीया हो। गुणियों में गुण ही पूजा के अधिष्ठान होते हैं, न तो कोई चिह्न और न अवस्था विशेष।

कौशल्या–अहो, समुन्नमूलयन्तीव वेदनाः। (अहो, समुम्मूलअंति विअ वेअणाओ)।

कौशल्या–ओह, वेदनाएँ मुझे मानो जड़ से उखाड़ रही हैं।

(इति मूर्च्छति)

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

जनकः–हन्त, किमेतत् ?

जनक–हाय, यह क्या ?

अरुन्धतीः–राजर्षे, किमन्यत्?

अरुन्धती–हे राजर्षि, और क्या ?

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।
विपाके घोरेऽस्मिन्नथ खलु विमूढा तव सखी
पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।।12।।

अन्वय–सुहृदि त्वयि दृष्टे स राजा तत् सौख्यं स च शिशुजनः ते च दिवसाः तदखिलम् स्मृतौ आविर्भूतम्। अथ अस्मिन् घोरे विपाके तव सखी विमूढ़ा खलु, हि पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं भवति।

शब्दार्थ–सुहृदि = मित्र के, त्वयि = आपके, दृष्टे = दृष्टिगोचर होने पर, सौख्यम् = सुख, अखिलम् = समस्त, स्मृतौ = स्मरण में, आविर्भूतम् = उत्पन्न हो गई हैं। घोरे विपके = भीषण परिणाम में, विमूढ़ा = मूर्च्छित, पुरन्ध्रीणाम् = पति पुत्रवती स्त्रियों का, कुसुमसुकुमारम् = फूल के समान कोमल।

अनुवाद–तुम्हारे जैसे सहृदय संबंधी के दृष्टिगोचर होने से वे राजा (दशरथ), वह सुख-समुदाय और वे (रामादि) बालक तथा वे दिन यह सब स्मृतिपटल पर उभर आईं, जिससे इस भीषण दशा-विपर्यास में तुम्हारी सखी मूर्च्छित हो गई है। क्योंकि कुलवधुओं का चित्त कुसुम की भाँति कोमल होता है।

जनकः–हन्त, सर्वथा नृशंसोऽस्मि। यश्चिरस्य दृष्टान्प्रिय सुहृदः प्रियदारान् स्निग्ध इव पश्यामि।

जनक–हाय मैं पूर्णतया निर्दय हूँ जो चिरकाल के पश्चात् मिलने पर भी अपने प्रिय सुहृद् (दशरथ) की प्रिय पत्नी (कौशल्या) को स्नेहहीन-सा होकर देख रहा हूँ।

स संबंधी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं
सचानन्द साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्।
शरीरं जीवो या यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं
महाराजः श्रीमान् किमिव मम नासीद्दशरथः।।13।।

अन्वय–स श्लाघ्यः संबंधी असौ प्रिय सुहृत् तच्च हृदयं स च साक्षात् आनन्दः अपि च निखिलं जीवितफलं शरीरं जीवो वा अतः अधिकम् अन्यत् प्रियतरं श्रीमान् महाराजो दशरथो मम किमिव न आसीत् ?

शब्दार्थ–श्लाघ्यः = प्रशंसनीय, जीवितफलम् = जीवन के फलरूप, अधिकम् अन्यत् प्रियतरम् = इससे भी अधिक प्रिय, श्रीमान् = राज्य लक्ष्मी के आश्रयभूत।

अनुवाद–वे प्रशंसनीय समधी, स्नेही मित्र, प्राणस्वरूप एवं प्रत्यक्ष आनन्द तथा

जीवन के समग्र फल रूप थे। वे मेरे शरीर अथवा जीवात्मा थे। यही नहीं मुझे इस जीवात्मा से भी अधिक प्यारे (अर्थात् परमात्मा) थे। श्री से विभूषित महाराज दशरथ मेरे लिए क्या न थे ?

कष्टमियमेव सा कौशल्या–

दुःख का विषय है कि यही वह कौशल्या हैं–

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभू–
दभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभू–
दलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम्।।14।।

अन्वय–अस्याः पत्युर्वा रहसि यत् परमन्त्रायितम् अभूत्, अहं दम्पत्योः पृथक् उपालम्भाविषयः अभूवम्। तदनु प्रसादे कोपे वा मदधीनो विधिः अभूत् तत्स्मृत्वा अलं यत् हृदयम् अवस्कन्द्य दहति।

शब्दार्थ–अस्याः = इसका, पत्युः वा = अथवा इनके स्वामी दशरथ का, रहसि = एकांत में, परमन्त्रायितम् = गुप्त भाषण, दम्पत्योः = पति-पत्नी का, उपालम्भविषयः = उलाहने का आश्रय, प्रसादे = मनाने में, अवस्कन्द्य = अभिभूत करके।

अनुवाद–इनका और इनके स्वामी का विजन स्थल में जो वचनप्रण-यापराध होता था, उसमें मैं पति-पत्नी के अलग-अलग उलाहनों का आश्रय होता था तदनंतर उनको मनाने अथवा रुष्ट करने की विधि मेरे आधीन रहती थी। (अब) उस पूर्व वृत्त को याद करना व्यर्थ है, क्योंकि यह हृदय को खिन्न करके दग्ध करता है।

अरुन्धतीः–हा कष्टम्! अतिचिरनिरुद्ध-निःश्वास निष्पन्दम् हृदयमस्याः।

अरुन्धती–हाय कष्ट है! इनका हृदय चिरकाल तक रोके गये प्राणवायु के कारण स्पन्दन रहित हो गया है।

जनकः–हा प्रियसखिः!

जनक–हाय प्रिय सखी!

(इति कमण्डलूदकेन सिञ्चति।)

(ऐसा कहकर कमण्डलु का जल छिड़कते हैं।)

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां प्रथममेकरसामनुकूलताम्।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम्।।15।।

अन्वय–विधिः प्रथमं सुहृत् इव सुखप्रदाम् एक रसाम् अनुकूलतां प्रकटय्य पुनः अकाण्डविवर्तनदारुणः (भूत्वा) मनसो रुजं परिशिनष्टि।

शब्दार्थ–एकरसाम् = एक समान, प्रकटय्य = प्रकट करके, अकाण्डविवर्तन दारुणः = असमय में परिवर्तन के कारण भीषण, परिशिनष्टि = सर्वथा बढ़ रहा है, मनसो रुजम् = मानसिक पीड़ा को।

हिन्दी-अनुवाद–विधाता पहले मित्र की भाँति सुखदायिनी एवं एक रस अनुकूलता दिखाकर फिर अनुपयुक्त समय में ही विपरीत स्थिति से भयकंर होकर मनोव्यथा को विशेष रूप से बढ़ा देता है।

कौसल्या–(आश्वस्य) हा, वत्से जानकि, कुत्रासि ? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलं संफुल्लमुग्धमुखपुण्डरीकमारोहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम्। एहि मे पुनरपि जाते, उद्द्योतयोत्सङ्गम्। सर्वदा महाराज एवं भणति–एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूरस्माकं तु जनकसुता दुहितैव।

(हा वच्छे जाणइ, कहिं सि ? सुमरामि दे णवविवाह लच्छीपरिग्गहेक्कमंगलम् संफुल्लमुद्धमुहपुंडरीअं आरुहंतकौमुदीचंदसुन्दरं। एहि मे पुणो वि जादे उज्जो एहि उच्छंगं। सव्वादा महाराअ एव्वं भणादि–एसा रहुउलमहत्तराणं वहूअम्हाणं दु जणअसुदा दुहिदेव्व।)

कौशल्या–(आश्वस्त होकर) हाय पुत्री सीता! तुम कहाँ हो ? नव-पाणिग्रहण संस्कार की शोभा को वरण करने से अनुपम मंगलकारी एवं नवोदित कार्तिक-पूर्णिमा के चन्द्र के समान सुन्दर, तेरा विकसित और मंजुल मुख मुझे याद आ रहा है। हे पुत्री, आओ और मेरी गोद को आलोकित करो। महाराज दशरथ सदा यही कहते थे–'यह सीता रघुकुल के पूर्वजों की पुत्रवधू है किंतु हमारी तो पुत्री ही है।

कञ्चुकी–यथाह देवी!

कञ्चुकी–महारानी उचित कहती हैं।

पञ्चप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रुः।
वधूचतुष्केऽपि तथैव नान्या प्रिया तनू जाऽस्य यथैव सीता।।16।।

अन्वय–पञ्चप्रसूतेः अपि तस्य राज्ञः सुबाहुशत्रुः विशेषेण प्रियः तथैव अस्य वधूचतुष्केऽपि सीता एव तनूजा यथा प्रिया अन्या न।

शब्दार्थ–पञ्चप्रसूतेः अपि = पाँच संतानों वाले होने पर भी, सुबाहुशत्रुः = राम, वधूचतुष्केऽपि = चार पुत्र-वधुओं में भी, तनूजा यथा = पुत्री शांता के सदृश।

अनुवाद–पाँच संतानों के होने पर भी उन महाराज को राम विशेषतः प्रिय थे। उसी भाँति चार पुत्र-वधुओं में जानकी ही बेटी के समान प्यारी थी, अन्य कोई उतनी नहीं।

जनकः–हा प्रियसख महाराज दशरथ! एवमसि सर्वप्रकारहृदयंगमः। कथं विस्मर्यते ?

जनक–हाय प्रिय मित्र महाराज दशरथ! आप इस भाँति पूर्णतया प्रीतिभाजन थे आप कैसे विस्मृत हो सकते हैं।

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्त जनं
संबंधे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।

त्वं कालेन तथाविधोऽप्यपहृतः संबंधबीजं च तद्
घोरेऽस्मिन् मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्।।17।।

अन्वयः–कन्यायाः पितरः जामातुः आप्त जनं पूजयन्ति कि, संबंधे मयि ते तत् आराधनं विपरीतम् एव अभूत्। तथाविधोऽपि त्वं कालेन अपहृतः तत् संबंधबीजं च, अस्प्तिन् घोरे जीवलोक तरके पापस्य, मम जीवितं धिक्।

शब्दार्थ–पितरः = पितृवर्ग, जामानुः = जमाता के, आप्तम जनम् = मान्य-सम्बन्धियों को, संबंधे = संबंध हो जाने पर, तत् आराधनम् = वह समादर तयाविधोऽपि त्वम् = इस प्रकार के भी तुम, कालेन अपहृतः = मृत्यु के द्वारा छीन लिए गए। तत्संबंधबीजम् च = और वह संबंध का कारण (सीता) भी, जीवलोकनरके = संसार रूप नरक में।

अनुवाद–कन्या के पितृगण जामाता के आत्मीय जनों का समादर करते हैं, (अतः) हमारे संबंध में आपका वह सम्मान-प्रदर्शन सर्वथा विरुद्ध था। ऐसे सौजन्यशील भी आप मृत्यु के द्वारा छीन लिए गए तथा वह हमारे संबंध का निमित्त (जानकी) भी। इस दारुण जीवलोक रूपी नरक में मुझ पापी के जीवन को धिक्कार है।

कौसल्या–जाते जानकि, किं करोमि! दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवित मां मन्दभागिनों न परित्यजति। (जादे जाणइ, किं करोमि ? दिढवज्जलेवपडिबद्धणिच्चलं हदजीविदं मं मंदभाइर्णी ण पडिच्चिअदि।

कौशल्या–वत्से सीते! मैं क्या करूँ ? कठोर वज्र लेप के द्वारा बन्धन के कारण मानो यह मेरा निन्दनीय जीवन मुझ मन्दभागिनी का परित्याग नहीं कर रहा है।

अरुन्धती–आश्वसिहि राज्ञि! वाष्प विश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवितर्व्य तथेत्यु पजातमेव, किंतु कल्याणोदर्क भविष्यतीति ?

अरुन्धती–महारानी, आश्वस्त होइये, बीच-बीच में अश्रुपात रोकना ही चाहिए, क्या आपको याद नहीं है कि जो ऋष्य शृंग के आश्रम में आपके कुलगुरु वशिष्ठ ने कहा था कि–भवितव्यता जैसी थी वैसी ही हुई। किंतु परिणाम मङ्गलमय होगा।

कौशल्या–कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत्।

(कुदो अविक्कदमणोरहाए मह एद।)

कौशल्या–जो समस्त कामनाओं को गंवा चुकी है, ऐसी मुझ मन्दभागिनी के लिये यह किस भाँति संभव हो सकता है ?

अरुन्धती–तत्किं मन्यसे राजपत्नि, मृषोद्यतदिति ? न हीदं क्षत्रिये! मन्तव्यम्।

अरुन्धती–हे राजपत्नी, तो आप क्या आप मानती हैं कि उनका कथन असत्य है। हे राजपुत्री! आपको ऐसा नहीं मानना चाहिए।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।।18।।

अन्वय–आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहाराः तेषु संशयो मा भूत्। हि एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीः निषक्ता, एते विप्लुतार्थां वाचं न वदन्ति।

शब्दार्थ–आविर्भूतज्योतिषाम्–ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने वालों के, ब्राह्मणानाम्–ब्रह्मर्षियों के, व्याहाराः = उक्तियां, वाचि = वाणी में लक्ष्मी-निषक्ता = सिद्धि सन्निहित रहती है। विप्लुतार्थाम् = अयथार्थ, वाचम् = वाणी को।

अनुवाद–ब्रह्म-ज्योति का दर्शन कर लेने वाले ब्रह्मर्षियों की जो उक्तियाँ होती हैं, उनमें किञ्चित् सन्देह नहीं होना चाहिए, क्योंकि उनकी गिरा में शिवं प्रदायिनी सिद्धि सन्निहित रहती है। ये मिथ्या कथन नहीं करते हैं।

(नेपथ्ये कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति।)

(नेपथ्य में कोलाहल। सभी सुनने लगते हैं।)

जनकः–अये अद्य खलु शिष्टानध्याय इत्यस्खलितं खेलतां वटूनां कोलाहलः।

जनक–अरे, अतिथियों के आगमन से आज पढ़ाई न होने के कारण निबोध खेलते हुए छात्रों का यह कोलाहल है।

कौशल्या–सुलभसौख्यमिदानीं बालन्वं भवति। (निरूपय) अहो, एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैर-ङ्गैदरिकोऽस्माकं लोचने शीतलयति (सुलहसोक्खं दाणिं बालत्तणं होदि। (निरूप्य) अम्महे, एदाणंमज्झे को एसो रामभद्दस्य कौमारलच्छीसावट्ठम्भेहिं मुद्ध-ललिदेहिं अंगेहिं दारओ अम्हाणं लोअणेसीअ-लावेदि ?)

कौशल्या–इस बाल्यावस्था में सुख सुलभ होता है (ध्यानपूर्वक देखकर) अरे, इन छात्रों के मध्य में यह कौन है जो रामभद्र की बाल्यावस्था की सुषमा से शोभित अपने कोमल और मनोहर अंगों से हमारे नेत्रों को शीतल बना रहा है।

अरुन्धती–(स्वगतम्। सहर्षोत्कण्ठम्) इदं नाम भागीरथी निवेदितं रहस्यकर्णामृतम्। न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति। (प्रकाशम्)

अरुन्धती–मन में हर्ष और उत्कंठा के सहित) भगवती भागीरथी गंगा के द्वारा विज्ञापित यह गुप्त एवं कानों के हेतु सुधासदृश समाचार है। किंतु मुझे यह ज्ञान नहीं, कि आयुष्मान कुश और लव में से यह कौन है ? (प्रकट में)

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम्। ?।।19।।

अन्वय–कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनः पुण्यश्रीकः श्रिया वटुपरिषदं

समाजयन् इव पुनः शिशुः भूतः स मे वत्सो रघुनन्दन इव कोऽयं दृष्टः झटिति दृशोः अमृताञ्जनं कुरुते।।

शब्दार्थ–कुवलयदलस्निग्धश्यामः = नीलकमल के पत्र के सदृश मनोहर तथा श्यामवर्णवाला, शिखण्डकमण्डनः = काकपक्षविभूषित, पुण्यश्रीकः = पुनीत-सुषमा-संयुक्त, श्रिया = शारीरिक सौष्ठव से, वटुपरिषदम् = छात्रसमुदाय को, सभाजयन् = अलंकृत करता हुआ, झटिति = शीघ्र, दृशोः = नेत्रों में, अमृताञ्जनम् = अमृत का आँजन, कुरुते = लगा रहा है।

अनुवाद–नीलकमल के पत्र के सदृश कोमल एवं श्यामल काकपक्ष से अलंकृत, पावन कान्ति से युक्त, कान्ति से छात्रसमुदाय को अलंकृत सा करता हुआ, वह मेरा सुत रामभद्र मानो पुनः बालक हो गया है। यह कौन है, जो देखने पर शीघ्र ही नयनों में सुधा रूपी अञ्जन को लगा रहा है।

कञ्चुकी–नू नं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयम् इति मन्ये।

कञ्चुकी–मेरा निश्चय है कि यह क्षत्रिय ब्रह्मचारी बालक है।

जनकः–एवमेतत्। अस्य हि–

जनक–हाँ ऐसा ही है। क्योंकि यह–

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपवित्र लाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डं तथा पैप्पलम्।।20।।

अन्वय–पृष्ठतः अभितः चूडाचुम्बितकङ्कपत्रं तूणीद्वयं, भस्मस्योकपवित्रलाञ्छनम् उरः, रौरवींत्वचम्, अधः मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितं माञ्जिष्ठकं वासः पाणौ कार्मुकम्, अक्षसूत्र वलयम्, तथा पैप्पलं दण्डं धत्ते।

शब्दार्थ–चूडा = शिखा, चुम्बित = स्पष्ट, कंकपत्र = बाण में लगे कंकपङ्ख, तूणीद्वयम् = दो तरकश, भस्मस्तोकपवित्र लाञ्छनम् = भस्म के पवित्र चिह्न से सुशोभित, उरः = वक्षस्थल, रौरवीम् = रुरु मृग की, त्वचम् = चर्म को, अधः = नीचे, मौर्व्या = मूँज की, मेखलया = करधनी, नियन्त्रितम् = बँधी हुई, माञ्जिष्ठकम् = मँजीठ से रञ्जित, वासः = धोती, पाणौ = हाथ में, कार्मुकम् = धनुष, अक्षसूत्र बलयम् = रुद्राक्ष की माला को, पैप्पलम् = पीपल की, दण्डम् = लाठी को, धत्ते = धारण करता है।

अनुवाद–पीठ के दोनों भागों में चोटी से स्पर्श किए गए कंकपत्रों से युक्त दो तरकश, थोड़ी सी भस्म के चिह्न से अलंकृत वक्षस्थल, रुरु मृग का चर्म नीचे मूँज की मेखला से बँधे हुए मँजीठ के रंग का परिधान, हाथ में धनुष, (गले में) रुद्राक्ष की माला और (हाथ में) पीपल का दण्ड धारण करता है।

भगवत्यरुन्धति, किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्योऽयमिति ?

भगवती अरुन्धती, यह बालक किसका है ? आपका क्या अनुमान है ?

अरुन्धती–अद्यैव वयमागताः।

अरुन्धती–हम आज ही आए हैं।

जनकः–आर्य गृष्टे, अति कौतुकं वर्तते। तद्भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च दारकं ब्रूहि। वत्स, कोऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव इति।

जनक–आर्य कंचुकी! मुझे बहुत उत्कण्ठा हो रही है अतः भगवान् वाल्मीकि के ही समीप जाकर पूछो और इस बच्चे से कहना कि–बेटे, ये कुछ वृद्ध व्यक्ति तुम्हें देखना चाहते हैं।

कञ्चुकी–यदाज्ञापयति देवः।

कञ्चुकी–जो महाराज की आज्ञा।

(इति निष्क्रान्तः)

(कंचुकी का प्रस्थान)

कौशल्या–किं मन्यध्वे एवं भणित आगमिष्यति वा न वेति ? (किं मण्णेध एव्व भणिदो आअमिस्सदि वा ण वेत्ति ?)

कौशल्या–आप लोगों की क्या धारणा है ? इस भाँति कहने पर वह आयेगा या नहीं ?

जनकः–भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।

जनक–क्या ऐसी मनोहर आकृति वाला यह बालक सद्व्यवहार का उल्लंघन कर सकता है ?

कौशल्या–(निरूप्य) कथं सविनयनिशमितगृष्टिवचनो विसर्जिताशेषसदृशदारक इतोभिमुखमपसृत एव स वत्सः ? (कहं सविणअणिसमिदगिट्ठिवअणी विसज्जिदासेसरिसदारओ इतोहिमुहं अवसरिदो एव्व स वच्छो ?)

कौशल्या–(ध्यानपूर्वक देखकर) कैसे नम्रतापूर्वक कंचुकी की बात सुनकर अपने सदृश सभी बालकों को छोड़कर वह चिरंजीव इधर ही आ रहा है।

जनकः–(चिरं निर्वर्ण्य) भोः किमप्येतत्–

जनक–(बहुत देर ध्यान से देखकर) अहा! यह तो अपूर्व है।

महिम्नामेतस्मिन् विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरपिदग्धैरतिशयः।
मनो मे सम्मोहः स्थिरमपि हरत्येव बलवा-
नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः।।21।।

अन्वय–एतस्मिन् विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो महिम्नान् अतिशयो विदग्धैः

निर्ग्राह्यः पुनः अविदग्धैः न, बलवान् सम्मोहः मे स्थिरमपि मनः परिलघुः आयस्कान्तशकलः अयोधातुं यद्वत् हरत्येव।

शब्दार्थ–एतस्मिन् = इसमें, विनयशिशिरः = नम्रता से शीतल, मौग्ध्यमसृणः = सुन्दरता से (भोलेपन से) कोमल, महिम्मानू = महिमाओं का, अतिशयः = आधिक्यः विदग्धैः = विज्ञजनों से, निर्ग्राह्यः = ग्रहण करने योग्य, अविदग्धैः = मूर्खों से, संमोहः = मोह, परिलघुः = छोटा सा, अयस्कान्तशकलः = चुम्बक धातु खण्ड, अयोधातुम् = लौह धातु को, हरति = खींचता है।

अनुवाद–इस शिशु में विनय के कारण शीतल तथा सुन्दरता से कोमल जो गरिमा का उत्कर्ष है, उसे विवेकीजन ही जान सकते हैं, अविवेकी नहीं। प्रबलमोह मेरे स्थिर–भी मन को, छोटा चुम्बक का टुकड़ा यथा लोहे को, खींच रहा है।

लवः–(प्रविश्य) अविज्ञात्वयः क्रमौचित्यात्पूज्यानपि सतः कथमभिवादयिष्ये ? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणाम-पर्यायः।

लव–(प्रवेश करके) अवस्था और क्रम के औचित्य का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण पूज्य होते हुए भी इन सज्जनों को किस भाँति प्रणाम करूँ ? (विचार करके) अच्छा यह प्रणाम करने की रीति निर्दोष है ऐसा गुरुजनों से सुना जाता है। (विनय पूर्वक समीप जाकर) यह लव की, सिर झुकाकर पूज्यानुक्रम से, आप लोगों को प्रणाम-परंपरा है।

अरुंधती जनकौ–कल्याणिनू, आयुष्मान्भूयाः।

अरुंधती और जनक–हे कल्याण-सम्पन्न, आयुष्मान् हो।

कौशल्या–जात, चिरंजीव। (जाद, चिरजीव)

कौसल्या–पुत्र, चिरंजीवी हो।

अरुन्धती–एहि वत्स, (लवमुत्सङ्गे गृहीत्वा। आत्मगतम्) दिष्ट्या न केवलमुत्सङ्गश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरितः।

अरुंधती–हे पुत्र आओ! (लव को गोद लेकर अपने मन में) भाग्य से केवल मेरी गोद ही नहीं चिरकालीन मनोरथ भी पूर्ण हुआ है।

कौसल्याः–जात, इतोऽपि तावदेहि। (उत्सङ्गे गृहीत्वा) अहो, न केवलं दरविस्पष्ट कुवलयमांसलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन कवलितारविन्द केसरकषायकण्ठ कलहंस घोषघर्घरानुनादिना स्वरेण च रामभद्रमनुसरति। ननु कठोर-कमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात, पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम् (चिबुकमुन्नमय्य निरूप्य सवाष्पाकूतम्) राजर्षे, किं न पश्यसि निपुणं निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि संवदत्येव ? (जाद इदो वि दाव एहि। (उत्सङ्गे गृहीत्वा) अम्महे, ण केवलं दरविप्पट्टकंदोट्टमंस लुज्जलेण देहबंधणेण

कवलिदारविंदकेसरकसाअकंठकलहंसघोसघग्घराणुणादिणा सरेण अ रामभद्दं अणुसरेदि। णं कठोर कमलगब्भप्पम्मलसरीरप्पस्सो वि तारिसो एव्व। जाद, पेक्खामि दे मुहपुंडरीअं (चिबुकमन्नमय्य-निरूप्य सबाष्याकूतम्) राएसि किं ण पेक्खसि णिण्णं णिरुवज्जंतो वच्छाए मे बहूए मुहचंदेण वि संवददि एव्वं ?

कौशल्या–पुत्र, यहाँ भी एक बार आओ (गोद में लेकर) ओह, यह बालक अधखिले नीलसरोज के समान पुष्ट और तेजस्वी शारीरिक रचना द्वारा ही नहीं, बल्कि कमल केसर के खाने से प्रिय ध्वनि वाले हंस के रव के समान घर्घर ध्वनियुक्त शब्द के द्वारा भी यह बालक राम का ही अनुसरण करता है। वस्तुतः पूर्ण विकसित कमल के भीतर वाले पत्र की भाँति कोमल इसका शरीर स्पर्श भी उसी प्रकार ही है। पुत्र, मैं तुम्हारा मुख-कमल देखूं। (ठुड्डी उठाकर विशेष रूप से अवलोकन कर आँसू और विशेष उद्देश्य के सहित) हे राजर्षि! क्या आप नहीं देख रहे हैं कि ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने पर इसका मुख वधू सीता के मुखकमल से भी मिल रहा है।

जनकः–पश्यामि सखि, पश्यामि।

जनक–देख रहा हूँ सखी देख रहा हूँ।

कौशल्या–अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं कुतो मुखं विलपति। (अम्महे, उम्मत्तीभूदं विअ से हिअअं कुदोमुहं विलवदि।)

कौशल्या–ओह, मेरा हृदय विक्षिप्त सा होकर किसी विषय में लगकर विलाप कर रहा है।

जनकः–वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभि व्यज्यते
संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः।
सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानु भावोऽप्यसौ
हा हा देवि! किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति।।22।।

अन्वय–अस्मिन् शिशौ वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च संवृत्तिः प्रतिबिम्बिता इव अभिव्यज्यते, सा एव निखिला आकृतिः, सा द्युतिः, सा वाणी, स एव सहजो विनयः, असौ पुण्यानुभाव अपि, हा हा देवि! मम मनः पारिप्लवम् (सत्) उत्पथैः किं धावति ?

शब्दार्थ–अस्मिन् शिशौ = इस बालक में, वत्सायाश्च = सीता का, रघूद्वहस्य = रामभद्र का, संवृत्तिः = संबंध, प्रतिबिम्बिता = झलकता, अभिव्यज्यते = दिखाई दे रहा है। निखिला = समस्त, आकृतिः = आकार, द्युतिः = कान्ति, सहजः = स्वाभाविक, विनयः = शील, पुण्यानुभावः = पवित्र तेजविशेष, पारिप्लवम् = चंचल, उत्पयैः = विपरीत मार्गों से, धावति = दौड़ता है।

अनुवाद–इस बालक में सीता और राम का संबंध प्रतिबिम्बित सा हो रहा है। वही आकार, वही कान्ति, वही वाणी, वही स्वाभाविक विनम्रता और यह पवित्र प्रभाव भी है। हाय, हाय सीते! मेरा मन अस्थिर होकर क्यों कुमार्गों से संचरित हो रहा है।

कौशल्या–जात, अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम् ? (जाद, अत्थिदे मादा, सुमरसि वा तादं ?)

कौशल्या–वत्स तुम्हारी मां है ? अथवा पिता का स्मरण करते हो ?

लवः–नहि।

लव–नहीं।

कौशल्या–ततः कस्य त्वम् ? (तदो कस्स तुमं)

कौशल्या–तो तुम किसके पुत्र हो ?

लवः–भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः।

लव–भगवान पुण्यात्मा वाल्मीकि के।

कौशल्या–अयि जात, कथयितव्यं कथय।

(अयि जाद, कहिदव्वं कहेहि।)

कौसल्या–हे पुत्र, बताने योग्य बात है, बताओ।

लवः–एतावदेश जानामि।

लव–इतना ही मैं जानता हूँ।

(नेपथ्ये)

नेपथ्य में)

भो भीः सैनिकाः, एष खलु कुमारश्चन्द्र केतुराज्ञापयति न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमयः आक्रमितव्या इति।

हे सैनिको! यह राजकुमार चन्द्रकेतु आज्ञा देते हैं कि–आश्रम के निकटवर्ती प्रदेशों में कोई आक्रमण न करे।

अरुन्धतीजनकौ–अये, मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गादुपागतो वत्सश्चन्द्र-केतुर्द्रष्टव्य इत्यहो सुदिवसः।

अरुन्धती और जनक–अहा, अश्वमेघ यज्ञ की रक्षा के सिलसिले में आये कुमार चन्द्रकेतु को देखेंगे, इसलिये आज मेरा शुभ दिन है।

कौशल्या–वत्स लक्ष्मणस्य पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते।

कौशल्या–'पुत्र लक्ष्मण का पुत्र आदेश देता है' ये अक्षर अमृत-बिन्दु के समान सुन्दर-सुनाई पड़ रहे हैं।

लवः–आर्य! क एष चन्द्रकेतुर्नाम ?

लव–आर्य! यह चन्द्रकेतु कौन है ?

जनकः–जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?

जनक–क्या तुम दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण को जानते हो ?

लवः–एतावेव रामायणकथापुरुषौ ?

लव–क्या ये ही रामायण की कथा के प्रमुख पुरुष पात्र हैं ?

जनकः–अथ किम् ?

जनक–और क्या ?

लवः–तत्कथं न जानामि ?

लव–तब क्यों नहीं जानूंगा ?

जनकः–तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

जनक–उन लक्ष्मण का पुत्र यह चन्द्रकेतु है।

लवः–ऊर्मिलायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रिः।

लव–तो वह ऊर्मिला का पुत्र और मिथिलाधि पतिराजर्षि जनक के दौहत्रि हैं।

अरुंधतीः–आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

अरुंधती–इस बालक ने रामायण की कथा में कुशलता प्रकट की है।

जनकः–(विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तदब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किंनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि ?

जनक–(विचार करके) यदि तुम रामायण की कथा में ऐसे निपुण हो तो हम तुम्हारी विज्ञता जानना चाहते हैं। बताओ–दशरथ के उन पुत्रों के किस-किस पत्नी से किस-किस नाम वाले कितने पुत्र उत्पन्न हुए हैं ?

लवः–नायं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः।

लव–कथा का यह अंश, हमने या अन्य किसी ने अभी तक नहीं सुना है।

जनकः–किं न प्रणीतः कविना ?

जनक–क्या कवि ने इसकी रचना नहीं की ?

लवः–प्रणीतो न प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः प्रबन्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान्व्य-सृजद्भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य।

लव–बनाया है, परंतु उसे प्रकाशित नहीं किया है! उसी के एक भाग को अन्य प्रबंध के साथ मिलाकर सरस एवं अभिनय के योग्य बनाया है और उसको अपने हाथ से लिखकर भगवान् वाल्मीकि ने नाट्यशास्त्र के प्रणेता भगवान् भरत के समीप भेजा है।

जनकः–किमर्थम् ?

जनक–किसलिये ?

लवः–स किल भगवान्भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।

लव–वह भगवान् भरत मुनि अप्सराओं से उन ग्रन्थ का अभिनय कराएंगे।

जनकः–सर्वमिदमाकूततरमस्माकम्।

जनक–यह सब कुछ हमारे लिये अतिगूढ़ अभिप्राय युक्त है।

लवः–महती पुनस्तस्मिन्भगवतो वाल्मीकेरास्था। यतः केषांचि-दन्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणिः प्रमादच्छेदनार्थ-मस्मद् भ्राता प्रेषितः।

लव–भगवान् वाल्मीकि की उस ग्रन्थ भाग में महती आस्था है! अतः कुछ छात्रों के द्वारा उन्होंने वह पुस्तक भरत मुनि के आश्रम में भेजी है। प्रमाद-निवारण के लिये हाथ में धनुष-धारण किये हुए मेरे भाई को उनका अनुगामी बनकर भेजा है।

कौशल्या–जात, भ्रातापि तेऽस्ति ? (जाद, भादावि दे अत्थि ?)

कौशल्या–वत्स! क्या तुम्हारा भाई भी है ?

लवः–अस्त्यार्यः कुशो नाम।

लव–हाँ, आर्य! 'कुश' उनका नाम है।

कौशल्या–ज्येष्ठ इति भणितं भवति।

(जेट्ठोत्ति भणिदं होदि।)

कौशल्या–तुम्हारे कहने से ज्ञात होता है कि वे ज्येष्ठ भाई हैं।

लवः–एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

लव–जी हाँ! वह जन्मक्रम में मुझसे बड़े हैं।

जनकः–किं यमावायुष्मन्तौ ?

जनक–क्या चिरंजीवी तुम दोनों एक साथ उत्पन्न हो ?

लवः–अथ किम् ?

लव–और क्या ?

जनकः–वत्स, कथय कथाप्रपञ्चस्य कियान्पर्यन्तः ?

जनक–पुत्र, बताओ कथा का विस्तार कहाँ तक है ?

लवः–अलीकपौरापवादोर्द्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसंभवां सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्त इति।

लव–नागरिकों के झूठे अपवाद से उद्विग्न राजा द्वारा त्यागी हुयौ असहाय एवं प्रसव वेदना से पीड़ित, यज्ञभूमि से उत्पन्न सीता देवी को वन में छोड़कर लक्ष्मण लौट गये हैं।

कौशल्या–हा वत्से मुग्धमुखि, क इदानीं ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः। (हा वच्छे मद्धमुहि, को दाणिं दे सरीरकुसुमस्य झत्ति देव्वदुव्विलासपरिणामो एक्काइणीए निवडिदो।)

कौशल्या–हाय मुग्धमुखी वत्से सीते, तुझ अकेली के कुसुमवत-कोमल शरीर पर सहसा भाग्य की दुश्चेष्टा का परिणाम उपस्थित हो गया ?

नूनं त्वया परिभवञ्च वनञ्च घोरं

ताञ्च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
सन्त्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम्।।23।।

अन्वय–परिभवं च घोरं वनं च, प्रसवकालकृतां तां व्यथां च अवाप्य परितः क्रव्याद्गुणेषु परिवारयत्सु सन्त्रस्तया त्वया अहं शरणम् इति नूनम् असकृत् स्मृतः।

शब्दार्थ–परिभवम् = तिरस्कार, घोरम् = भयंकर, प्रसवकालकृताम् = प्रसवकाल की, व्यथाम् = पीड़ा को, अवाप्य = प्राप्त कर, परितः = चारों ओर, क्रव्याद्गुणेषु = मांस खाने वाले जीवों में, परिवारयत्सु = घिर जाने पर, संत्रस्तया = डरी हुई, शरणम् = रक्षक, नूनम् = निश्चय, असकृत = बार-बार, स्मृतः = याद किया गया।

अनुवाद–अनादर, विकराल वन और प्रसूतिकाल की पीड़ा को प्राप्त कर चारों ओर से हिंसक जन्तुओं के द्वारा घिर जाने पर भयभीत तुमसे मैं रक्षक (के रूप में) निश्चय ही पुनः-पुनः स्मरण किया गया हूँगा।

लवः–**आर्ये कावेतौ ?**

लव–आर्या, ये दोनों कौन हैं ?

अरुन्धती–इयं कौसल्या। अयं जनकः।

अरुन्धती–ये कौसल्या हैं और ये महाराज जनक हैं।

(लवः सबहुमानखेदं कौतुकं पश्यति।)

(लव विशेष आदर, खेद और कौतूहल के साथ देखता है।)

जनकः–अहो! दुष्टात्मा नागरिकों की ऐसी निर्दयता। ओह रामभद्र की यह जल्दबाजी!

एतद्वैशस घोरवज्रपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः
क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

अन्वय–एतत् वैशसघोरवज्रपतनं शश्वत् उत्पश्यतः मम क्रोधस्य चापेन शापेन वा झटिति ज्वलितुस् अवसरः।

शब्दार्थ–एतत् = वह, वैशस = हनन, घोर = भयंकर, वज्रपतनम् = वज्रपात, शश्वत् = सदा, उत्पश्यतो = चिन्तन करते हुए का, मम = मेरा, क्रोधस्य = कोप, चापेन = धनुष से, झटिति = शीघ्र, ज्वलितुम् = जलने का, अवसरः = समय।

अनुवाद–इस (निर्वासन) हिंसा रूप भयानक वज्रपात का सतत चिन्तन करते हुए मेरे कोप (रूप अनल) के, शरासन अथवा शाप से, शीर्ष प्रज्वलित होने का अवसर है।

कौशल्या–(सभयकम्पम्) भगवति, परित्रायताम्, प्रसादय कुपितं राजर्षिम् (भअवदि, परित्ताअदु। पसादेहि कुविदं राएसिं।)

कौशल्या–(भय और कम्पन से युक्त) भगवती रक्षा कीजिये–क्रुद्ध राजर्षि को मनाइए।

लवः–एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम्।
अरुन्धती–राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जनाः।।24।।

अन्वय–परिभूतानां मनस्विनाम् एतद्धि प्रायश्चित्तम्। राजन्! रामः ते अपत्यं कृपणाः जनां च पाल्याः।।

शब्दार्थ–परिभूतानाम् = अपमानित, मनस्विनाम् = महानुभावों का, एतत् = यह, प्रायश्चितम् = चित्तशुद्धि, अपत्यम् = सन्तान, कृपणाः = दीन, पाल्याः = पालन करने योग्य।

अनुवाद–लव–तिरस्कृत महापुरुषों के लिए यही प्रायश्चित्त है।

अरुन्धती–हे राजन्! रामचन्द्र आपकी सन्तान हैं, दीनजन रक्षा के योग्य होते हैं।

जनकः–शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं तत्पुत्रभाण्डं हि मे।
भूयिष्ठ द्विज बालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः।।25।।

अन्वय–वा रघुनन्दने तत् उभयं शान्तं हि तत् मे पुत्रभाण्डं, पौरो जनश्च भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणः।

शब्दार्थ–रघुनन्दने = राम के विषय में, तत् उभयम् = वे दोनों बातें, पुत्रभाण्डम् = पुत्र रूपी मूलधन, पौरः जनः = नागरिक लोग, भूयिष्ठ = द्विज, बाल वृद्ध, विजलस्त्रैणः = बहुत ब्राह्मण बालक, वृद्ध, विकलांग और स्त्रियाँ।

अनुवाद–जनक–अथवा रामचन्द्र के विषय में वे दोनों बातें (धनुष और शाप) समाप्त हों, क्योंकि वह मेरा पुत्ररूपी मूलधन है। नागरिकों में बाहुल्य, ब्राह्मण-बालक-वृद्ध-विकलांग और स्त्रियों का है।

संभ्रान्ता वटवः–कुमार कुमार, अश्वोऽश्व इति कोऽपिभूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमधुनास्माभिः स्वयं प्रत्यक्षीकृतः।

भयभीत ब्रह्मचारी–कुमार, कुमार, जनपद में 'अश्व' नाम का यह अदृष्टपूर्व प्राणिविशेष सुना जाता है, उसे हमने अभी प्रत्यक्ष देखा है।

लवः–अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते, तद्ब्रूत कीदृशः।

लव–पशु शास्त्र और धनुर्वेद में 'अश्व' यह नाम है। अच्छा बताओ वह कैसा है ?

वटवः–अये श्रूयताम्–

ब्रह्मचारी–तो सुनो।–

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं

दीर्घग्रीवः सभवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाभ्रमात्रान्।
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहियामः।।26।।

अन्वय–पश्चात् विपुलं पुच्छं वहति, तच्च अजस्रं धूनोति, स दीर्घग्रीवो भवति, तस्य चत्वार एव खुराः, शष्पाणि अत्ति, आम्रमात्रान् शकृत्पिण्डकान् प्रकिरति, व्याख्यानैः किं ? स पुनः दूरं व्रजति, एहि एहि, यामः।।

शब्दार्थ–पश्चात् = पीछे, विपुलम् = बड़ी, पुच्छम् = पूँछ, वहति = धारण करता है। अजस्रम् = निरन्तर, धूनोति = हिलाता है। दीर्घग्रीवः = लम्बी गर्दन, चत्वारः = चार, शष्पाणि = घास, अत्ति = खाता है। आम्रमात्रान् = आम के फल के बराबर, शकृत्पिण्डकान् = लीद के ढेर, प्रकिरति = बिखेरता है। व्याख्यानैः = कथनों से, व्रजति = जाता है। एहि-एहि = आओ-आओ, यामः = हम जाते हैं।

अनुवाद–(वह) पिछले भाग में विशाल पूँछ धारण करता है और उसे सदैव हिलाता रहता है। वह लम्बी गर्दन वाला है। उसके चार ही खुर हैं, घास खाता है, आम के सदृश लीद के ढेर बिखेरता है। कथनों से क्या ? वह फिर दूर जा रहा है। आओ-आओ हम जा रहे हैं।

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षति।)

(यह कहकर मृगचर्म और दोनों कर पकड़कर खींचते हैं।)

लवः–(सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्याः, पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि।

लव–(उत्कण्ठा अनुरोध और विनम्रता के साथ) आर्यगण देखिये। यह लोग मुझे ले जा रहे हैं।

(इति त्वरितं परिक्रामति)

(यह कहकर शीघ्रता से चल देता है।)

अरुन्धती-जनकौ–महत्कौतुकं वत्सस्य।

अरुन्धती और जनक–बालक को बहुत कुतूहल है।

कौशल्या–अरण्यगर्भरूपालापैर्यूयं तोषिता वयं च। भगवति, जानामि तं पश्यन्ती वञ्चितेव। तस्मादितोऽन्यतोभूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमानं दीर्घायुषम्। (अरण्णगब्भरूवालावेहिं तुम्हे तोसिदा अम्हे अ। भअवदि, जाणामितं पेक्खंती वंचिदा विअ। ता इदो अण्णदो भविअ पेक्खम्ह दाक पलाअंतं दीहाउं।)

कौशल्या–अरण्य में उत्पन्न इस बालक ने अपने रूप और वार्तालाप से आपको और हमें सन्तुष्ट किया है। भगवति, मैं समझती हूँ कि उसको देखकर मैं तो चकित-सी रह गयी। इसलिए यहाँ से अन्यत्र अवस्थित होकर दौड़ते हुए उस चिरंजीव बालक को देखें।

अरुन्धतीः–अतिजवेन दूरमतिकान्तः स चपलः कथं दृश्यते ?

अरुन्धती–अत्यन्त वेग से दूर चला गया वह चपल बालक अब कैसे दिखाई दे सकता है ?

कञ्चुकी–(प्रविश्य) भगवान्बाल्मीकिराह 'ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि' रिति।

कञ्चुकी–(प्रवेश करके) भगवान् वाल्मीकि ने कहा है–आप लोगों को यह सब कुछ यथासमय ज्ञात हो जायेगा।

जनकः–अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धति, सखि कौसल्ये, आर्य गृष्टे, स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः।

जनक–यह कोई अत्यन्त रहस्यभरी बात है। भगवती अरुन्धती, सखी कौशल्या, आर्य कंचुकी हम सब स्वयं चलकर भगवान् वाल्मीकि से मिलते हैं।

(इति निष्क्रान्तो वृद्ध वर्गः।)

(तत्पश्चात् वृद्धजनों का प्रस्थान।)

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

वटवः–पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्।

ब्रह्मचारीगण–कुमार! यह आश्चर्य देखो।

लवः–**दृष्टमवगतं च, नू नमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।**

लव–मैंने देख लिया और समझ लिया। निश्चय ही घोड़ा अश्वमेघ का है।

वटवः–कथं ज्ञायते ?

ब्रह्मचारीगण–आपने यह कैसे जाना ?

लवः–**ननु मूर्खाः, पठितमेवहि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्चय रक्षितारः ? तत्प्रायमेवान्यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययवस्तत्पृच्छथ।**

लव–अरे मूर्खो, तुमने भी तो वह अश्वमेघ प्रकरण वाला अंश पढ़ा ही है। क्या देख नहीं रहे हो कि प्रत्येक दिशा में सौ संख्या वाले कवचधारी, दण्डधारी और तरकशधारी रक्षकगण नियुक्त हैं। प्रायः उसी प्रकार की अन्य सामग्री भी दिखाई देती है, यदि विश्वास न हो तो पूछ लो।

वटवः–भो भोः, किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति ?

ब्रह्मचारीगण–अरे, रक्षकों से घिरा हुआ यह अश्व किसलिये फिर रहा है ?

लवः–**(सस्पृहमात्मगतम्) अश्वमेघ इति नाम विश्वजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्ष निकषः।**

लव–(अभिलाषा सहित, मन में) 'अश्वमेघ' नामक यज्ञ विश्वविजेता क्षत्रियों के तेज का सूचक तथा सकल क्षत्रियों के पराभव का बोधक अश्वमेघ यज्ञ उत्कर्ष सूचक बहुत बड़ी कसौटी है।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में।)

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः।।27।।

अन्वय–अयं यः अश्वः, इयं सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विष पताका अथवा वीरघोषणा।

शब्दार्थ–अयम् = यह, यः = जो, अश्वः = घोड़ा, सप्तलोकैकवीरस्य = सात भुवनों में अद्वितीय वीर, दशकण्ठ = रावणवंश के शत्रु की, पताकाध्वज, वीरघोषणा = पराक्रम की विज्ञप्ति।

अनुवाद–यह जो अश्व है, यह सातों भुवनों में अद्वितीय वीर तथा रावण-वंश के शत्रु राम की (विजय) वैजयन्ती अथवा शौर्य की विज्ञप्ति है।

लयः–(सगर्वम्) अहो संदीपनान्यक्षराणि।

लव–(अभिमान के साथ) ओह, ये अक्षर बहुत उत्तेजक है।

वटवः–किमुच्यते ? प्राज्ञः खलु कुमारः।

ब्रह्मचारी गण–आप क्या कहते हैं ? कुमार तो बुद्धिमान् है।

लवः–भो भोः! तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?

लव–अरे रक्षको! क्या धरणी क्षत्रिय-विहीन हो गयी है, जो इस प्रकार से घोषणा कर रहे हो ?

(नेपथ्ये)

(नेपथ्ये)

रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ?

अरे-रे, महाराज राम के समक्ष क्षत्रिय कहाँ ?

लवः–धिग्जाल्मान्।

लव–धिक्कार है मूर्खों को–

यदि नो सन्ति सन्त्येव, केयमद्य विभीषिका ?
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः।।28।।

अन्वय–नो सन्ति यदि सन्ति एव अद्य इयं का विभीषिका ? अधुना एभिः उक्तैः किम् ? वः तां पताकां हरामि।

शब्दार्थ–नो = नहीं, विभीषिका = डर, अधुना = इस समय, उक्तैः = वचनों से, हरामि = छीनता हूँ।

अनुवाद–यदि कहो कि क्षत्रिय नहीं हैं, तो वे हैं ही। अब यह कैसा भय ? इस समय इन वचनों से क्या ? तुम्हारी इस वैजयन्ती को छीन रहा हूँ।

हे वटवः! परिवृत्य लोष्टैरभिध्नन्तोन यतैनमश्वम्। एष रोहितानां मध्येचरो भवतु।

हे ब्रह्मचारियो, इस अश्व को घेर कर ढेलों से मारते हुए ले जाओ। यह हरिणों के बीच में विचरण करे।

(प्रविश्य सक्रोधः)

(प्रवेश करके क्रोध के पूर्वक)

पुरुषः–धिक्चपल! किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्तः, सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति तावत्तवरितमनेन तरुगहनेनाप-सर्पत।

पुरुष–अरे चपल बालक, तुझे धिक्कार है। तूने क्या कहा ? अत्यन्त तीक्ष्ण आयुधों को धारण करने वाले भटों के समुदाय बालक की भी दर्पपूर्ण उक्ति को सहन नहीं करते हैं। प्रचण्ड विक्रम वाले राजकुमार चन्द्रकेतु, जो आकृष्ट चित्त होकर अपूर्व वन का अवलोकन कर रहे हैं, जब तक नहीं आते हैं, तब तक शीध्रता से वृक्षों के निबिड इस पथ से निकल भागो।

बटवः–कुमार, कृतं कृतमश्वेन। तर्जयन्ति विस्फारितशरासनाः कुमारमायुधीयश्रेणयः। दूर चाश्रमपदमितः तदेहि, हरिणप्लुतैः पलायामहे।

ब्रह्मचारीगण–कुमार! घोड़ा हम लोगों को नहीं चाहिए। ये शस्त्रधारियों का झुण्ड अपने धनुषों को ताने हुए कुमार की भर्त्सना कर रहे हैं। आश्रमभूमि यहाँ से दूर है! अतः आओ मृग के समान छलांग भरते हुए हम लोग भाग ललें।

लवः–किं नाम विस्फुरन्ति शत्राणि। (इतिधनुरारोपयन्)

लव–क्या शस्त्र चमक रहे हैं ? (यह कहकर धनुष पर प्रत्यंचा रोपण करते हुए)–

ज्याजिह्वयावलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र–
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र–
जृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम्।।29।।

अन्वय–ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिर्दंष्ट्रम् उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषम् एतत् चापं ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र जृम्भाविडम्बि विकटोदरम् अस्तु।

शब्दार्थ–ज्याजिह्वया = मौर्वीरूपी जीभ से, वलयित = लपेटी, उत्कट = भयंकर, कोटि = अगला हिस्सा, दंष्ट्रम् = दाढें, उदमूरि = असंख्य, घोर = भयानक, घनघर्घरघोष = घने घर्घर शब्द वाला, चापम् = धनुष, ग्रास = निगलना, प्रसक्त = लगा हुआ, हसत् = हँसता हुआ, अन्तक = यमराज, वक्त्रयन्त्र = मुख, जृम्भा = जँभाई, विडम्बि = अनुकरण करने वाला, विकटोदरम् = विशाल पेट वाला।

अनुवाद–प्रत्यञ्चा रूपी जीभ से परिवेष्टित दो उग्र दाढ़ों के तुल्य अग्र भागों से युक्त तथा अगणित भीषण एवं घनी घर्घर ध्वनि वाला यह धनुष, जगत् को

कवलित करने में प्रवृत्त और हास्ययुक्त यमराज के मुखरूपी यन्त्र की जँभाई का अनुकर्ता तथा भयंकर मध्य भाग वाला हो जाये।

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(तत्पश्चात् यथोचितरीति से घूमकर सभी निकल जाते हैं।)

इति महाकवि श्रीभवभूति विरचितउत्तररामचरिते
कौशल्या-जनकयोगो नाम चतुर्थोऽङ्कः।

महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में कौशल्या और जनकयोग नामक चतुर्थ अङ्क समाप्त।

पंचमोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

भो भोः! सैनिकाः! जातमवलम्बनमस्माकम्।

अरे-(अरे) सैनिको! हमें (अब) सहारा मिल गया ?

नन्वेष त्वरितसुमन्त्रनुद्यमान-प्रोदुवल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन।
उत्खातप्रवलितकोविदारकेतुः श्रुत्वा वः प्रधनमुपैतिचन्द्रकेतुः।।1।।

अन्वय–ननु, त्वरितसुमन्त्र नुद्यमान प्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना, रथेन, उत्खात-प्रचलित कोविदार केतुः, एष (= एषः) चन्द्रकेतुः वः प्रधनं श्रुत्वा उपैति।।1।।

शब्दार्थ–ननु = हे (सैनिको ?) ध्यान दें, त्वरित–वाजिना = शीघ्रतापूर्वक सुमन्त्र के द्वारा हाँके जाते हुए (अतएव) छलाँगें भर-भर कर अति तीव्र वेग से दौड़ते हुए घोड़ों वाले, रथेन = रथ से, उत्खात...केतुः = ऊँची-नीची (= ऊबड़-खाबड़) भूमि पर (तीव्रगति से दौड़ने के कारण) काँपती (= हिलती) हुई, कोविदार (–नामक वृक्षविशेष के काष्ठ से–) निर्मित पताका वाले, एष चन्द्रकेतुः = वे चन्द्रकेतु नामक (हमारे) सेनापति, वः = तुम (सैनिक) लोगों की, (लव के साथ) प्रधनम् = युद्ध वार्ता को, श्रुत्वा = सुनकर, उपैत्ति = (यहाँ हम लोगों के) समीप आ रहे हैं।

अनुवाद–(कोई सैनिक नेपथ्य से अपने साथी सैनिकों के प्रति कहता है–) हे सैनिकों! आप लोग ध्यान दें कि सुमन्त्र के द्वारा शीघ्रताःपूर्वक हाँके जाने के कारण छलाँगें लगा-लगाकर अत्यन्त वेग से दौड़ रहे (एवं रथ में जुते हुए) घोड़ों से युक्त रथ से, ऊँची-नीची भूमि पर तीव्रगति से दौड़ (रहे रथ) के कारण हिलती हुई, कोविदार नामक वृक्ष के काष्ठ से निर्मित पताका (से युक्त रथ-) वाले, ये हमारे सेनापति चन्द्रकेतु, तुम लोगों की (लव के साथ चल रही हुई) युद्ध-वार्ता को सुनकर (यहाँ हम लोगों के-) समीप आ रहे हैं।

ततः प्रविशति सुमन्त्रासारथिना रथेन धनुष्पाणिः साद्भुतहर्ष संभ्रमश्चन्द्रकेतुः।

(तदनन्तर सारथि सुमन्त्र के साथ रथ पर सवार तथा हाथ में धनुष धारण

किए हुए आश्चर्य, हर्ष और घबराहट इन तीन भावों से युक्त चन्द्रकेतु प्रवेश करता है।)

चन्द्रकेतुः—**आर्य सुमन्त्र, पश्य पश्य—**

चन्द्रकेतु—आर्य सुमन्त्र! देखिए! देखिए ?—

किरति कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्री—
रविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण।
समरशिरसि चाञ्चत्पञ्चचूडश्चमूना-
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः।।2।।

अन्वय—अयं कोऽपि वीरपोतः कलित-किञ्चित्-कोप-रज्यन्-मुखश्रीः, चञ्चत्पञ्चचूडः, समरशिरसि, अविरत गुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण, चमूनाम् उपरि, शर-तुषारं किरति।

शब्दार्थ—अयम् = यह, कोऽपि = कोई (अद्भुत), वीरपोतः = वीर बालक, कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्रीः = कुछ (कुछ) क्रोध करने से लाल हो गयी मुख की कान्ति वाला, चञ्चत्पञ्चचूडः = हिलती हुई पाँचों शिखाओं (शिर की चोटियों) वाला, समरशिरसि = युद्ध के मैदान में अथवा सङ्ग्राम के मोर्चे पर, अविरतगुणगुञ्जत्कोटिना = लगातार (धनुष की) डोरी से निकलती हुई टङ्कार से युक्त धनुष के दोनों सिरों वाले, कार्मुकेण = धनुष-द्वारा, चमूनाम् उपरि = सेनाओं के ऊपर, शरतुषारम् = बाण रूपी ओलों को अर्थात् ओलों की वर्षा के समान बाणों को, किरति = बरसा रहा है।

(चन्द्रकेतु अचानक वीरवेशधारी लव को देखकर आश्चर्य से सुमन्त्र के प्रति कहता है—)

अनुवाद—यह कोई (अनोखा) वीर बालक, कुछ-कुछ क्रोध करने के कारण लाल हो गयी मुख की कान्ति से युक्त, (तथा) हिलती हुई शिर की पाँचों चोटियों से युक्त (होकर), युद्ध के मोर्चे पर (अथवा युद्ध के मैदान में) लगातार डोरी से निकलती हुई टङ्कार (= भनभनाहट) से युक्त, धनुष के दोनों सिरों (नोकों) वाले, धनुष के द्वारा, (हमारी) सेनाओं के ऊपर, ओलों के समान बाणों को बरसा रहा है।

आश्चर्यमाश्चर्यम्—

आश्चर्य! आश्चर्य!—

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः संप्रकोपा—
न्नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धः प्ररोहः।
दलितकरि कपोलग्रन्थिटङ्कारघोर-
ज्वलितशरसहस्रः कौतुकं मे करोति।।3।।

अन्वय–रघुवंशस्य अप्रसिद्धः नवः प्ररोहः इव एकः मुनिजनशिशुः, सम्प्रकोपत्, सर्वतः, दलितकरिकपोल ग्रन्थिटङ्कारघोर ज्वलित शर सहस्रः (सन्) मे कौतुकं करोति।

शब्दार्थ–रघुवंशस्य = रघुवंश का, अप्रसिद्धः = प्रसिद्धि को अप्राप्त, अर्थात् प्रसिद्धि से रहित, नवः = नवीन, प्ररोहः इव = अङ्कुर के समान, एकः = एक, (अकेला) मुनिजनशिशुः = मुनि का बालक, सम्प्रकोपात् = अधिक क्रोध के कारण, सर्वतः = चारों ओर, दलितकरि. = हाथियों की खण्डित की गयी कनपटियों (गण्डस्थलों) की गाँठों की टङ्कार से भयजनक (एवं) अत्यधिक जलते हुए हजारों बाणों से युक्त (हुआ यह बालक), मे = मुझ (चन्द्रकेतु के मन) में कौतुकम् = आश्चर्य को, करोति = (उत्पन्न) कर रहा है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु लव के पराक्रम को देखकर पुनः आश्चर्ययुक्त होकर सुमन्त्र के प्रति कहता है।)

रघुवंश के (किसी) अप्रसिद्ध नवीन अङ्कुर के समान यह अकेला मुनि-बालक, अत्यधिक क्रोध के कारण चारों ओर हाथियों की खण्डित की गयी कनपटियों (गण्डस्थलों) की गाँठों की टङ्कार से भयानक एवम् अत्यधिक जलते हुए हजारों बाणों से युक्त हुआ, मुझ-चन्द्रकेतु के मन-में आश्चर्य को उत्पन्न कर रहा है।

सुमन्त्रः–आयुष्मन्,

सुमन्त्र–चिरञ्जीव!

अतिशयितसुरासुरप्रभावं
शिशुमवलोक्य तथैव तुल्यरूपम्।
कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे
धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि।।4।।

अन्वयः–तथा एव अतिशयितसुरासुर प्रभावं तुल्यरूपं (च) शिशुपु अवलोक्य, कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतनुषं रघुनन्दनं स्मरामि।।

शब्दार्थ–तथा एव = उसी (रामभद्र के समान) प्रकार से, अतिशयित. —अतिशयित = अतिक्रमण किया है, सुरासुर = देवों तथा दानवों के, प्रभावम् = प्रभाव को जिसने, ऐसे, अर्थात्–देवों और दानवों के प्रभाव को पार कर जाने वाले, (और उन्हीं रामभद्र के), तुल्यरूपम् = समान रूप (आकृति) वाले, शिशुम् = बालक को, अवलोक्य = देखकर। कुशिकसुत. = कुशिकसुत = विश्वामित्र के, मख = यज्ञ का, द्विषाम् = विध्वंस कर देने वाले, (राक्षसों के), प्रमाथे = विध्वंस करते समय, धृतधनुषम् = धनुषधारण किए हुए, रघुनन्दनम् = राम को, स्मरामि = स्मरण कर रहा हूँ।

(लव के पराक्रम को देखकर सुमन्त्र आश्चर्यसहित चन्द्रकेतु के प्रति कहते हैं)

अनुवाद–उसी (राम के समान) प्रकार से, देवों तथा दानवों (राक्षसों) के प्रभाव को पार कर जाने वाले, और राम के समान (ही) आकृति वाले, इस बालक को देखकर (मैं-सुमन्त्र) विश्वामित्र के यज्ञ के विध्वंसकर्ता राक्षसों का विनाश करते समय धनुष को धारण करने वाले रामचन्द्र को स्मरण कर रहा हूँ।

चन्द्रकेतुः–मम त्वेकमुद्दिश्य भूयसामारम्भ इति हृदयमपत्रपटे।

चन्द्रकेतु–एक बालक को लक्ष्य करके (उसके साथ हमारे) अनेक सैनिकों के इस युद्ध का आरम्भ होने से मेरा हृदय लज्जित हो रहा है।

अयं हि शिशुरेकको मदभरेण भूरिस्फुर-
त्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैर्बलैः।
क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनै–
रमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैरावृतः। ।5 । ।

अन्वय–हि अयम् एककः शिशुः मदभरेण भूरिस्फुरत-कराल कर कन्दली जटिलशस्त्र जालैः, क्वणत्कनक किङ्कणी-झणझणायितस्यन्दनैः अमन्दमद दुर्दिनद्विरदडामरैः बलैः आवृतः।

शब्दार्थ–हि = क्योंकि, अयम् = यह, एककः = अकेला, शिशुः = बालक, मदभरेण = मद की अधिकता से, भूरिस्फुरत्.-भूरिस्फुरत् = अत्यधिक चमकते हुए, कराल = भयङ्कर, निर्दय, करकन्दली = केले के समान विशाल हाथों में धारण किए गए, जटिल = अत्यन्त पैने, प्रखर अथवा तीव्र, शस्त्रजालैः = शस्त्र समूह से युक्त। क्वणत्कनकः–क्वणत् = शब्द करती हुई (= शब्दायमान), कनक किङ्कणी = स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियों के, झणझणायितस्यन्दनैः = 'झन-झन' की ध्वनि वाले रथों से युक्त। अमन्दमद.-अमन्दमद-अत्यधिक मदरूपी जल को, दुर्दिन = बरसाने वाले दुर्दिन के समान, द्विरद = हाथियों से, डामरैः = भयानक, बलैः = सैनिकों से, आवृतः = घिरा हुआ।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु अपनी लज्जा के कारण को और अधिक स्पष्ट कर रहा है–)

क्योंकि यह अकेला बालक मद-जल की अधिकता से अपनी केले के वृक्षों के समान विशाल भुजाओं में, अत्यधिक चमकते हुए, निर्दय, और अत्यन्त पैने (घातक) शस्त्र-समूह को लिए हुए, (एवं) 'झन-झन का शब्द करती हुई, स्वर्णनिर्मित छोटी-छोटी घंटियों (की झन-झनाहट वाले रथों से युक्त, तथा बहुत अधिक मात्रा में मद-जल) को बरसाने वाले दुर्दिनों के समान हाथियों से भयानक (विकराल) सैनिकों द्वारा घिरा हुआ है।

सुमन्त्रः–वत्स, एभिः समस्तैरपि नालमस्य, किं पुनर्व्यस्तैः ?

सुमन्त्र–पुत्र, ये सब (सैनिक) मिलकर भी इसके लिए यथाऽऽवश्यक (काफी) नहीं हैं, फिर अलग-अलग तो कहना ही क्या है ?

चन्द्रकेतुः–आर्य, त्वर्यतांत्वर्यताम्। अनेन हि महानाश्रितजनप्रमारोऽस्माकमारब्धः तथा हि–

चन्द्रकेतु–आर्य! शीघ्रता कीजिए ? शीघ्रता कीजिए ? इसने हमारे आश्रितों (सैनिकों) का महानाश प्रारम्भ कर दिया है। क्योंकि–

आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वर–
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्यातमुज्जृम्भयन्।
वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैर्वीरो विधत्तं भुवं
तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव।।6।।

अन्वय–(एषः) वीरः अमन्ददुन्दुभिरवैः आध्मातम्, आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटा-निस्तीर्ण कर्णज्वर ज्या निर्घोषम् उज्जृम्भयन्, बेल्लद्भैरव-रुण्डखण्डनिकरैः भुवं तृष्यत्कालकरलवक्त्र विघसव्याकीर्यमाणाम् इव विधत्ते।

शब्दार्थ–एषः वीरः = यह वीर बालक, अमन्ददुन्दुभिरवैः = घोर नगाड़ों की ध्वनि–(-यों) से, आध्यातम् = सब ओर से बढ़े हुए। आगर्जद्.–आगर्जद् = जोर से गरजते हुए, गिरिकुञ्जकुञ्जर = पहाड़ी झुरमुटों में रहने वाले हाथियों के, घटानिस्तीर्ण = झुण्ड के हेतु प्रदान की है, कर्णज्वर = कानों की वेदना (= दर्द) जिसने, ऐसे, ज्यानिर्घोषम् = धनुष की डोरी की टङ्कार को। उज्जृम्भयन् = उत्पन्न करता हुआ। बेल्लद्भैरव.–वेल्लत् = तड़पते–(-छटपाते-) हुए, भैरव-रुण्ड-खण्ड = भयानक धड़ों एवं शिरों के (अथवा) भयानक धड़ों के टुकड़ों के, निकरैः = समूह से। भुवम् = पृथ्वी को। तृष्यत् काल.–तृष्यत् = प्यास से बेचैनी, काल = यमराज के, कराल = भयानक, वक्त्र = मुख के, विघस = जूठन (उच्छिष्ट भोजन) से, व्याकीर्यमाणाम् इव = मानो चारों तरफ छितरा दिए गए जूठन वाली (आच्छादित अथवा परिव्याप्त) सी, विधत्ते = कर रहा है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु लव के द्वारा किए जा रहे राम-सेना के महानाश का वीभत्स-वर्णन सुमन्त्र के प्रति प्रस्तुत करता है–)

यह वीर बालक घोर नगाड़ों की गड़गड़ाहट के कारण चारों तरफ से बढ़े हुए, तथा (भय-वश) चिङ्घाड़ते हुए, पहाड़ी झुरमुटों निवासी गजसमूह, के कानों में (तीव्रता एवं कर्कशता के कारण) तीव्र वेदना (असहनीय-पीड़ा) प्रदान करने वाले वाले (अपने धनुष की) डोरी के टङ्कार को उत्पन्न करता हुआ, तड़पते-छटपटाते-हुए भयानक धड़ों एवं शिरों (अथवा भयानक धड़ों के टुकड़ों) के समूह से, पृथ्वी को, माना प्यास से बेचैन यमराज के भयानक मुख के जूठन से चारों तरफ छितरा दिए गए जूठन वाली (= आच्छादित अथवा परिव्याप्त-) सी कर (-बना-) रहा है।

सुमन्त्रः–(स्वगतम्) कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसंप्रहारमनुजानीमः ? (विचिन्त्य) अथवा इक्ष्वाकुकुलवद्धाः खलु वयम्। प्रत्युपस्थिते रणे च का गतिः ?

सुमन्त्र–(अपने मन में) किस प्रकार ऐसे वीर के साथ पुत्र चन्द्रकेतु को द्वन्द-युद्ध की अनुमति दूँ ? (विचार करके) अथवा हम इक्ष्वाकुवंश के वृद्ध हैं। और युद्ध के समुपस्थित होने पर (इसके अतिरिक्त और) क्या करें ? (अर्थात् अनुमति देना ही एकमात्र उपाय है।)

चन्द्रकेतुः–(सविस्मयलज्जासंभ्रमम्) हन्त धिक्, अपावृत्तान्येव सर्वतः सैन्यानि मम।

चन्द्रकेतु–(आश्चर्य, लज्जा और तेजी सहित) ओह, धिक्कार है, मेरी सेनाएँ सभी ओर से पीछे ही हट रही हैं।

सुमन्त्रः–(रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, एष ते वाग्विषयीभूतः स वीरः।

सुमन्त्र–(रथ के वेग को अभिनीत करके) दीर्घायु, वह वीर (अब) तुम्हारी इस वाणी का विषय हो गया है।

चन्द्रकेतुः–(विस्मृतिमभिनीय) आर्य, किंनामधेयमाख्यातमाह्वायकैः ?

चन्द्रकेतु–(भूलने का अभिनय करके) आर्य, पुकारने वालों के द्वारा यह किस नाम से कहा (पुकारा) गया था ?

सुमन्त्रः–लव इति।

सुमन्त्र–'लव' ऐसा।

चन्द्रतुः–भो भो लव! महाबाहो! किमेभिस्तव सैनिकैः।
एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु।।7।।

अन्वय–भो! भो! महाबाहो! लव! एभिः सैनिकैः तव किम् ? एषः अहम्। माम् एव एहि। तेजः तेजसि शाम्यतु।।7।।

शब्दार्थ–भो भो महाबाहो लव = हे हे विशालभुजाओं वाले लव। एभिः = इन, सैनिकैः = सैनिकों से, तव = तुम्हारा, किम् = क्या (प्रयोजन) ? एषः = यह, अहम् = मैं चन्द्रकेतु हूँ। माम् एव = मेरे पास ही, एहि = आओ, तेजः = (तुम्हारा) तेज, तेजसि = (मेरे) तेज में, शाम्यतु = शान्त (समाप्त) हो जाये।

(चन्द्रकेतु और लव के मध्य परस्पर वार्तालाप करने मात्र की दूरी रहने पर चन्द्रकेतु युद्ध के लिए लव को ललकारता है।)

अनुवाद–हे महाबाहु लव! इन (हमारे) सैनिकों से तुम्हारा (= तुम्हारे सदृश तेजस्वी वीर का) क्या प्रयोजन ? (अर्थात् इन सैनिकों से युद्ध करना तुम्हें शोभा नहीं देता) यह (प्रमुख सेनापति अथवा प्रमुख योद्धा) मैं चन्द्रकेतु हूँ। (अतः) मेरे पास ही आओ (और तुम्हारा) तेज (मेरे) तेज में शान्त (समाप्त) हो जाए।

सुमन्त्रः–कुमार, पश्य पश्य–

सुमन्त्र–कुमार! देखो! देखो!!

विनिवर्तित एष वीरपोतः पृतनानिर्मथनात्त्वयोपहूतः।
स्तनयित्नुरवादिभावलीनामवमर्दादिव दृप्तसिंहशावः।।8।।

अन्वय–एष वीरपोतः त्वया उपहूतः (सन्), दृप्तसिंहशावः स्तनयित्नुरवात् इभाऽवलीनाम् अवमर्दात् इव, पृतनानिर्मथनात् विनिवर्तितः।

शब्दार्थ–एष = यह, वीरपोतः = वीर बालक, त्वया = तुम्हारे (= चन्द्रकेतु के) द्वारा, उपहूतः सन् = पुकारा (= ललकारा) जाने पर, दृप्तसिंहशावः = कोई गर्वीला सिंह-शावक, स्तनीयत्नुरवात् = मेघ के गर्जन से, इभाऽवलीनाम् = हाथियों के झुण्ड के, अवमर्दात् इव = संहार (कार्य) से जैसे (निवृत्त हो जाता है–उसी प्रकार) पृतनानिर्मथनात् = सेना का संहार करने से, विनिवर्तितः = निवृत्त हो गया है, अर्थात् तुम्हारी ओर लौट पड़ा है।

(चन्द्रकेतु की ललकार अथवा चुनौती को सुनकर बड़े गर्व के साथ चन्द्रकेतु की ओर लौट पड़े हुए कुमार लव का वर्णन सुमन्त्र चन्द्रकेतु के प्रति कर रहा है–)

अनुवाद–यह वीर बालक तुम्हारे द्वारा ललकारा जाने पर (= चुनौती दी जाने पर) सेना के विनाश-कार्य से उसी प्रकार अलग हो गया है, जिस प्रकार कोई गर्वीला सिंह-शावक बादल की गरज सुनकर हाथियों के झुण्ड का संहार करना बन्द कर देता है, (किंतु बादल की गरज के उत्तर में स्वयं भी दहाड़ने लगता है।)

(ततः प्रविशति धीरोद्धतपराक्रमो लवः)

(तदुपरान्त धीर और उद्दाम पराक्रमी लव प्रवेश करता है।)

लवः साधु राजपुत्र, साधु। सत्यमैक्ष्वाकः खल्वसि। तदहं परागत एवास्मि।

लव–साधु राजपुत्र! शाबाश! तुम वास्तव में इक्ष्वाकुवंशी हो। अतः मैं भी तुम्हारी ओर लौट ही पड़ा हूँ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः)

(नेपथ्य में महान् कोलाहल होता है)

लवः–(सावष्टम्भं परावृत्य) आः, कथमिदानीं भग्ना अपि पुनः प्रतिनिवृत्ताः पृष्ठानुसारिणः पर्यवष्टम्भयन्तिमां चमूपतयः ? धिग्जाल्मान्–

लव–(गर्व समेत लौटते हुए) ऐं ? तितर-बितर किए जाने पर भी अब फिर से ये सेनापति लौटकर मेरा पीछा करते हुए मुझे घेर कैसे रहे हैं ? धिक्कार है इन जालिमों (नीचों) को ?

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभु-
क्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे।
समन्तादुत्सर्पघनतुमुलहेलाकलकलः
पयोराशेरोधःप्रलयपवनास्फालित इव।।9।।

(सवेगं परिक्रामति।)

अन्वय–अयं समन्तात् उत्सर्पद्धनतुमुलहेलाकलकलः, प्रलयपवनास्फालितः पयोराशेः ओधः इव मे शैलाघात क्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु।

शब्दार्थ–अयम् = यह, समन्तात् = चारों तरफ, उत्सर्पद्. उत्सर्पत् = उभरता हुआ, घन = घनघोर तथा, तुमुल = घमासान, हेलाकलकलः = सङ्ग्राम-रूपी खेल का कोलाहल। प्रलय. = प्रलयकाल में, पवन = वायु द्वारा, आस्फालितः = आहत, आन्दोलित, पयोराशेः = महासागर के, ओधः इव = बाढ़ की भाँति, मे = मेरे, शैलाघात–शैलाघात = पहाड़ों की टक्कर से, क्षुभित = तिलमिलाए हुए, वडवाग्नि = वडवा नामक समुद्री अग्नि के, वक्त्र = मुख में, हुतभुक = पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु को निगल जाने वाले वाडवाग्नि के समान, प्रचण्ड क्रोधार्चिर्निचय = प्रचण्डक्रोधाग्नि पुञ्ज में, कवलत्वम् = ग्रास, व्रजतु = बने।

(लव अपनी क्रोधाग्नि में सम्पूर्ण राम-सेना को भस्म कर देने का रोष व्यक्त कर रहा है)

अनुवाद–यह चारों ओर से उभरता हुआ घनघोर तथा घमासान सङ्ग्रामरूपी खेल का कोलाहल, प्रलयकाल में वायु द्वारा आहत महासागर की बाढ़ की भाँति, मेरे–पहाड़ों की टक्कर से तिलमिलाए हुए (वडवा-घोड़ी-नामक समुद्री अग्नि के मुख में पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु को निगल जाने वाले) वाडवाग्नि के समान प्रचण्ड क्रोधाग्नि पुञ्ज में ग्रास बन जाए।

(वेगपूर्वक चारों तरफ घूमता है)

चन्द्रकेतुः–भो भोः कुमार,

चन्द्रकेतु–हे कुमार!

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियो मे
तस्मात्सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः।।10।।

अन्वय–अत्यद्भुतात् गुणातिशयात् अपि त्वं मे प्रियः सखा असि, तस्मात् यत् मम तत् तव एव। तत् निजे परिजने किं कदनं करोषि ? ननु एषः चन्द्रकेतुः तब दर्पनिकषः (अस्ति)।

शब्दार्थ–अत्यद्भुतात् = अत्यन्त आश्चर्यजनक, गुणातिशयात् = गुणों की अधिकता अथवा उत्कर्ष के कारण, अपि = भी, त्वम् = तुम, मे = मेरे, प्रियः = प्रिय, सखा = मित्र, असि = हो, तस्मात् = इसलिए, यत् = जो, मम = मेरा है, तत् = वह, तवएव = तुम्हारा ही है। तत् = अतएव, निजे = अपने, परिजने = सेवक समूह पर, किम् = किसलिए, किस कारण से, कदनम् = संहार-कार्य,

करोषि = कर रहे हो। ननु = निःसन्देह, अवश्य, एषः = यह, चन्द्रकेतुः = चन्द्रकेतु, **तव** = तुम्हारे दर्पनिकषः = गर्व की कसौटी है।

(चन्द्रकेतु एक वीरोचित उक्ति द्वारा लव को अपनी ओर युद्ध हेतु आकृष्ट कर रहे हैं–)

अनुवाद–अत्यधिक आश्चर्यजनक गुणों के उत्कर्ष (आधिक्य) के कारण भी तुम मेरे प्रिय हो, (और इसीलिए) मित्र हो। अतएव जो कुछ मेरा है, वह तुम्हारा ही है। अतः अपने आश्रित सेवकों (सैनिकों) का, क्यों, विनाश, कर रहे हो ? यह चन्द्रकेतु अवश्य ही तुम्हारे गर्व की कसौटी हैं, अर्थात् तुम्हारे वीरता-गर्व का परीक्षा स्थान मैं–चन्द्रकेतु-हूँ।।

लवः–(सहर्षसंभ्रमं परावृत्य) अहो, महानुभावस्य प्रसन्नकर्कशा वीरवचनप्रयुक्तिर्विकर्तनकुलकुमारस्य। तत्किमेभिः ? एनमेव तावत्संभावयामि।

लव–(हर्ष और शीघ्रता सहित लौटकर) अरे, महानुभाव भानुवंशी कुमार के वीर-वचनों का प्रयोग प्रसन्न और कटु है। तब इनसे क्या ? पहले इस चन्द्रकेतु का ही (सङ्ग्रामोचित्) आदर करता हूँ।

(पुनर्नेपथ्ये कलकलः)

लवः–(सक्रोधनिर्वेदम्) आः, कदर्थीकृतोऽहमेभिर्वीरसंवादविघ्नकारिभिः पापैः।

(इति तदभिमुखं परिक्रामति)

(फिर नेपथ्य में शोर)

लवः–(क्रोध और दुःख सहित) ओह, मैं इन वीर–? संवाद में विघ्न करने वाले पापियों के द्वारा तिरस्कृत किया गया हूँ।

(ऐसा कहकर उस सेना के सम्मुख लौटता है)

चन्द्रकेतुः–आर्य,! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्–

चन्द्रकेतु–आर्य! देखने योग्य दृश्य (अवश्य) देखिए–

दर्पेण कौतुकवता मयि बद्धलक्ष्यः
पश्चाद्बलैरनुसतोऽयमुदीर्णधन्वा।
द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य धत्ते
मेघस्य माघवतचापधरस्य लक्ष्मीम्।।11।।

अन्वय–कौतुकबता दर्पेण मयि बद्धलक्ष्यः, पश्चाद् बलैः अनुसृतः, उदीर्णधन्वा (च) अयं द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य माधवत चापधरस्य मेघस्य लक्ष्मी घत्ते।

शब्दार्थ–कौतुकवता = कुतूहल से युक्त, दर्पेण = (वीरता के) गर्व से, मयि = मुझ–चन्द्रकेतु–पर, बद्धलक्ष्यः = अपनी दृष्टि लगाए हुए, घूरते हुए, तथा पश्चात् = पीछे की ओर से, बलैः = सैनिकों (अथवा सेनाओं) द्वारा, अनुसृतः = पीछा किया गया और, उदीर्णधन्वा = धनुष ताने हुए, अयम् = यह वीर-बालक (लव)

द्वेधा = दोनों ओर से (दुतरफा), समुद्धतमरुत् तरलस्य = प्रचण्ड गति वाले वायु-द्वारा चञ्चल तथा माघवतचापधरस्य = इन्द्रधनुषधारी, मेघस्य = मेघ की, लक्ष्मीम् = शोभा को, धत्ते = धारण कर रहा है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु लव की वीरतामयी छवि का सुमन्त्र के प्रति वर्णन करता है–) कुतूहल से युक्त–(वीरता के–) गर्व से मुझ–चन्द्रकेतु–पर अपनी दृष्टि लगाए (अर्थात् तीव्र दृष्टि से मुझे लगातार घूरता हुआ) तथा पीछे की ओर से सेनाओं द्वारा पीछा किया गया और धनुष ताने हुए यह वीर-बालक (लव) दोनों ओर (दुतरफा) से प्रचण्ड गतिवाले वायु द्वारा चञ्चल और इन्द्र-धनुष को धारण करने वाले मेघ की जैसी शोभा को धारण कर रहा हैं।

सुमन्त्रः–कुमार एवैनं द्रष्टुमपि जानाति। वयं तु केवलं परवन्तो विस्मयेन।

सुमन्त्र–तुम (कुमार चन्द्रकेतु) ही इस (लव) को (भलीभाँति) देखना भी जानते हो। हम तो केवल आश्चर्यवश पराधीन हैं।

चन्द्रकेतुः–भो भोः, राजानः।

चन्द्रकेतु–हे भूपालो!

संख्यातीतैर्द्विरदतुरगस्यन्दनस्थेः पदाता–
वत्रैकस्मिन्कवचनिचितैर्नद्धि चर्मोत्तरीये।
कालज्येष्ठंरपरवयसि ख्यातिकामैर्भवद्रिभ
योऽयं बद्धो युधि समभरस्तेन धिग्वो धिगस्मान्।।12।।

अन्वय–संख्यातीतैः द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः कवच निचितैः कालज्येष्ठैः अपरवयसि (अपि) ख्याति कामैः भवद्भिः एकस्मिन् पदातौ नद्धचर्मोत्तरीये अत्र युधि यः अयं समर भरः बद्धः, तेन वः धिक्, अस्मान् च धिक्।

शब्दार्थ–संख्यातीतैः = अगणित, द्विरद तुरगस्यन्दनस्थैः = हाथी घोड़ों व रथों पर आरूढ़, कवच निचितैः = कवचों से आवृत मर्म-स्थानों वाले, काल-ज्येष्ठैः = आयु से ज्येष्ठ (बड़े), अपरवयसि = वृद्धावस्था में (भी), ख्यातिकामैः = यश के लोभी, भवद्भिः = आप सब राजाओं, द्वारा एकस्मिन् = अकेले, पदातै = पैदल लड़ने वाले, नद्धचर्मोत्तरीये = (केवल) मृगचर्म का उत्तरीय बाँधे हुए, अत्र = इस बालक (लव) पर, युधि = युद्ध में, यः = जो, अयम् = यह, समभरः = युद्ध करने का समान उत्तरदायित्व, बद्धः = बांधा गया है, अर्थात् डाल दिया गया है, तेन वः धिक् = उस कारण से आप सबको धिक्कार है, अस्मान् च धिक् = और हम लोगों को भी धिक्कार है।

अनुवाद–(अकेले लव पर सामूहिक आक्रमण हेतु प्रयत्नशील सैनिक-राजाओं के लिए चन्द्रकेतु का यह धिक्कार वाक्य है–) अगणित हाथियों घोड़ों तथा रथों पर आरूढ़, मर्म-स्थानों पर कवच बाँधे हुए, आयु से बड़े, वृद्धावस्था में भी यश

के लोभी, आप सब राजाओं के द्वारा (सामूहिक रूप से) अकेले, पैदल युद्ध करने वाले, (कवच के स्थान पर केवल) मृगचर्म का उत्तरीय (चादर) बाँधे हुए, इस बालक (लव) पर युद्ध में जो यह युद्ध करने का समान उत्तरदायित्व डाल दिया गया है (अर्थात् उसे सबसे एक साथ युद्ध के लिए ललकार कर बाध्य किया गया है) उस कारण से आप सबको धिक्कार है, और (आप लोगों के पक्ष में अन्याय के पक्ष में—होने से) हम लोगों को भी धिक्कार है।

लव–(सोन्माथम्) आः, कथमनुकम्पते नाम ?

(ससम्भ्रमं विचिन्त्य) भवतु, कालहरण प्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रैण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि।

(इति ध्यानं नाटयति)

लव–दुःख अथवा खीझ के साथ) अरे! तो क्या यह मुझ पर कृपा कर रहा है ? (हड़बड़ाहट के साथ सोचकर) अस्तु, समय व्यर्थ न जाए, इसके लिए मैं तब तक इन सेनाओं को जृम्भकास्त्र द्वारा चेष्टा-रहित (जड़ अथवा निष्क्रिय) किए देता हूँ।

(इस प्रकार कहकर ध्यान करने का अभिनय करने लगता है)

सुमन्त्रः–तत्किमकस्मादुल्लोलाः सैन्यघोषाः प्रशाम्यन्ति ?

सुमन्त्र–तो कारण क्या है, जिससे सैनिकों के प्रचण्ड कोलाहल अकस्मात् शान्त हो गए हैं ?

लवः–पश्याम्येनमधुना प्रगल्भम्।

लव–अब मैं देखता हूँ, इस ढीठ को ?

(अर्थात् अब इसकी ढिठाई मैं ठीक किए देता हूँ)

सुमन्त्रः–(समम्भ्रमम्) वत्स, मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्त्र-मामन्त्रितमिति।

सुमन्त्र–(घबराहट के साथ) वत्स! मैं समझता हूँ कि उस छोटे बालक ने 'जृम्भक' नामक अस्त्र का प्रयोग किया है।

(क) **चन्द्रकेतुः–अत्र कः संदेहः ?**

चन्द्रकेतु–इस (विषय) में क्या सन्देह है ?

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च
प्रणिहितमपि चक्षुर्ग्रस्तमुक्तं हिनस्ति।
अथ लिखितमिवैतत्सैन्यमस्पन्दमास्ते
नियतमजितवीर्यं जृम्भते जृम्भकास्त्रम्।।13।।

अन्वय–तामसः वैद्युतः च भीमः व्यतिकरः इव, प्रणिहितम् अपि ग्रस्त-मुक्तं चक्षुः हिनस्ति, अथ एतत् सैन्यं लिखितम् इव अस्पन्दम् आस्ते, नियतम अजितवीर्यं जृम्भकास्त्रं जृम्भते।

शब्दार्थ–तामसः = अन्धकार संबंधी, वैद्युतः च = तथा बिजली से सम्बन्धित, भीमः = भयानक, व्यतिकरः इव = सम्मिश्रण (अर्थात् संगम) के समान, प्रणिहितम् अपि = ध्यान में निश्चल (एकाग्र) की गयी भी, ग्रस्त-युक्तम् = पहले (अन्धकार द्वारा) ग्रस्त और बाद में (उससे) मुक्त, चक्षुः-दृष्टि को, हिनस्ति = बोधित (निश्चेष्ट) कर रहा है। अथ = और (साथ ही) एतत् = सामने खड़ी हमारी, सैन्यम् = सेना लिखितम् इव = चित्र में चित्रित की गयी-सी, अस्पन्दम् = चेष्टा रहित, स्तब्ध, आस्ते = हो रही है। नियतम् = अनिवार्य रूप से, अजितवीर्यम् = अजेय शक्ति वाला (वह), जृम्भकास्त्रम् = जृम्भक नामक आयुध, जृम्भते = प्रकाशित हो रहा है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु, कुमार लव के द्वारा राम-सेना पर प्रयोग किए गए जृम्भकास्त्र के प्रभाव का वर्णन कर रहा है–) अन्धकार तथा विद्युत के भीषण मिश्रण (संगम) के समान यह ध्यानावस्था में एकाग्र की गयी भी दृष्टि को पहले अन्धकार द्वारा ग्रस्त और बाद में उससे (प्रकाशोदय के कारण) मुक्त करता हुआ बाधित कर रहा है (अर्थात् घोर अन्धकार के क्षण भर बाद ही बिजली जैसी कौंध द्वारा यह दृष्टि के समक्ष चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है) और साथ ही (अन्य बात यह भी है कि) यह सामने खड़ी हमारी सेना चित्र में लिख-दी (चित्रित की) गयी सी बिल्कुल क्रियाशून्य है। निश्चय ही अजेय शक्ति वाला यह जृम्भकास्त्र प्रकाशित हो रहा है।

(ख) आश्चर्यमाश्चर्यम्–

(चन्द्रकेतु) आश्चर्य ? आश्चर्य ?

पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमः श्यामैर्नभो जृम्भकै–
रूत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभिस्तीर्यते
लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव।।14।।

अन्वय–पातालोदर कुञ्ज पुञ्जिततमः श्यामैः, उत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः जृम्भकैः कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद् व्यस्तैः लीनाम्भोदतडित्कडार कुहरैः विन्ध्याद्रिकूटैः इव नभः अभिस्तीर्यते।

शब्दार्थ–पातालोदरकुञ्ज पुञ्जिततमः श्मामै. = पाताल के भीतरी कुञ्जों में एकत्रित अन्धकार के सदृश काले, उत्तप्तस्फुरदारकूट कपिल ज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः = तपे एवं देदीप्यमान पीतल की पतिप्रभा के सदृश प्रज्वलित कान्ति से युक्त, जृम्भकैः = जृम्भक नामक अस्त्रों के द्वारा कल्पाक्षेपकठोर-भैरवमरुद्धव्यस्तैः = प्रलयकालिक प्रचण्ड तथा भीषण पवन के द्वारा (उड़ाकर) बिखरा दिए गए, लीनाम्भोदतडित्कडार कुहरैः = भीतरी भाग में स्थित मेघों और विद्युत् के कारण

लाल-पीली गुफाओं वाले, विन्ध्याद्रिकूटैः इव = विन्ध्य पर्वत के शिखरों के समान (बनकर), नमः = सम्पूर्ण आकाश, अभिस्तीर्यते = चारों ओर व्याप्त किया जा रहा है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु आश्चर्य के साथ जृम्भकास्त्र का वर्णन करता है) पाताल के भीतर (विद्यमान) कुंजों में एकत्रित अन्धकार के सदृश काले और तपे हुए देदीप्यमान पीतल की पीतप्रभा के समान प्रज्वलित कान्ति से युक्त, जृम्भक अस्त्रों द्वारा प्रलयकालिक प्रचण्ड तथा भीषण पवन के द्वारा (उड़ाकर) बिखरा दिए गए तथा भीतरी भाग में स्थित मेघों और विद्युत् के कारण लाल-पीली गुफाओं वाले, विन्ध्य पर्वत के शिखरों के समान (बनकर) सम्पूर्ण आकाश चारों ओर मानो व्याप्त किया जा रहा है।

सुमन्त्रः–कुतः पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात् ?

सुमन्त्र–फिर इस (बालक) की जृम्भक अस्त्रों की उपलब्धि कहाँ से हुई ?

चन्द्रकेतुः भगवतः प्राचेतप्तादिति मन्यामहे।

चन्द्रकेतु–भगवान वाल्मीकि से हुई होगी ऐसा मैं मानता हूँ।

सुमन्त्रः–वत्स, नैतदेवमस्त्रेषु विशेषतो जृम्भकेषु। यतः–

सुमन्त्र–वत्स, अस्त्रों के संबंध में और विशेषतः जृम्भक अस्त्रों के संबंध में (तुम्हारी) यह बात ठीक नहीं है क्योंकि–

कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात्कौशिकं गताः।
अथ तत्संप्रदायेन रामभद्रे स्थिता इति।।15।।

अन्वय–एते हि कृशाश्वतनयाः कृशाश्वात् कौशिकं गताः। अथ तत्सम्प्रदायेन रामभद्रे स्थिताः इति।

शब्दार्थ–एते हि = वस्तुतः ये जृम्भक नामक अस्त्र, कृशाश्वतनयाः = कृशाश्व नामक महर्षि के पुत्र हैं (अर्थात् उनके तपः प्रभाव से उत्पन्न उनकी सन्तान के समान ही हैं)। कृशाश्वात् = महर्षि कृशाश्व से (ये अस्त्र) कौशिकम् = कुशिक नन्दन महर्षि विश्वामित्र को प्राप्त (संक्रान्त) हुए हैं। अथ = इसके पश्चात्, तत्सम्प्रदायेन = महर्षि विश्वामित्र के द्वारा शास्त्रविधि से भलीभाँति प्रदान (= उपदेश) किए जाने (ये) रामभद्रे = रामभद्र में (ही) स्थिताः = स्थित हो गए हैं (अर्थात् रामभद्र के उपरान्त उस सम्प्रदाय में अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुए हैं)

अनुवाद–(सुमन्त्र जृम्भकास्त्र को कृशाश्व का पुत्र बता रहे हैं–) वास्तव में ये जृम्भक नामक अस्त्र महर्षि कृशाश्व के पुत्र हैं (जो कि) महर्षि कृशाश्व से कुशिक नन्दन (महर्षि विश्वामित्र) को प्राप्त हुए हैं। इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र द्वारा शास्त्रविधि से भलीभाँति (रामभद्र को) प्रदान (उपदेश) किए जाने से (ये) रामभद्र में (ही) स्थित हो गए हैं।

आशय यह है कि कृशाश्व से रामभद्र तक तो गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा उपदेश पद्धति से ये उत्तरोत्तर (शिष्यों को) प्राप्त (संक्रान्त) होते रहे, किंतु रामभद्र के उपरान्त उस सम्प्रदाय में अन्य किसी को प्राप्त न होने से लव को ये कैसे प्राप्त हो गये, यह बात विशेष रूप से चिन्तनीय है।

चन्द्रकेतुः–अपरेऽपि प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः स्वयं सर्वं मन्त्रद्दशः पश्यन्ति।

चन्द्रकेतु–अन्य मन्त्रद्रष्टा ऋषिजन भी (तो अत्यधिक सत्वगुण से प्रकाशित अन्तःकरण से स्वयं सब कुछ देख (ज्ञात कर) लेते हैं। (अतएव सर्वज्ञ-कल्प महर्षि वाल्मीकि को भी इन अस्त्रों का साक्षात्कार सम्भव है ?)

सुमन्त्रः–वत्स, सावधानो भव। परागतस्ते प्रतिवीरः।

सुमन्त्र–पुत्र, सावधान हो जाओ। तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी (वीर अब) लौट आया है।

कुमारौ–(अन्योऽन्यं प्रति) अहो! प्रियदर्शनः कुमारः (सस्नेहानुरागं निर्वर्ण्य)

दोनों कुमार–(परस्पर के प्रति) ओह, (यह) कुमार देखने में प्रिय (सुन्दर) है। (स्नेह तथा अनुराग सहित देखकर)

यदृच्छासंवादः किमु गुणगणानामतिशयः
पुराणो वा जन्मान्तरनिबिडबवद्धः परिचयः।
निजो या संबंधः किमु विधिवशात्कोऽप्यविदितो
ममैतस्मिन्दृष्टे हृदयमवधानं रचयति।।16।।

अन्वय–एतस्मिन् दृष्टे यदृच्छा संवादः किमु, गुणागणानाम् अतिशयः (किमु), जन्मान्तर निबिडबद्धः पुराणः परिचयः वा विधिवशात् अविदितः कोऽपि निजः संबंधः वा किमु, (यत्) मम हृदयम् अवधानं रचयति।

शब्दार्थ–एतस्मिन् दृष्टे = इस (कुमार को) देखने पर, यदृच्छासंवादः किमु = क्या (यह) दैवाधीन मिलन हो गया है ? किमु = क्या यह, गुणगणानाम् = गुण समुदाय का, अतिशयः = उत्कर्ष है ? वा = अथवा, जन्मान्तर निबद्ध = जन्मजन्मान्तर का (कोई) घनिष्ट, (तथा) पुराणः = प्राचीन, परिचय = परिचय है ? वा किमु = अथवा क्या विधिवशात् = भाग्यवश, अविदितः = अज्ञात, कोऽपि–कोई, निजः = अपना, संबंधः = संबंध है ? जो मम = मेरे, हृदयम् = हृदय को, अवधानम् = (इसके प्रति) एकाग्र, रचयित = बना रहा है, अर्थात् इसकी ओर मेरे मन को आकृष्ट कर रहा है।

अनुवाद–(यहाँ दोनों कुमार परस्पर को देखते ही उत्पन्न हुए परस्परानुराग की समीक्षा कर रहे हैं–) इस (कुमार को) देखने पर क्या (यह कोई) दैवाधीन मिलन हो गया है, क्या यह गुणसमुदाय का उत्कर्ष है ? अथवा जन्मजन्मान्तर का (कोई) घनिष्ट (तथा) प्राचीन परिचय (निकल आया) है ? अथवा क्या भाग्यवश अज्ञात

कोई अपना (इससे) संबंध है (जो) मेरे हृदय को (बलात् इसके प्रति) एकाग्र बना रहा है, अर्थात् मेरे मन को इसकी ओर आकृष्ट कर रहा है। (वस्तुतः इस स्वतः उत्पन्न आकर्षण में कारण क्या है, यह मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ)

सुमन्त्रः–भूयसा जीविनामेव धर्म एष यत्र स्वरसमयी कस्यचित्क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचारस्यारामैत्रकं चक्षूराग इति। तदप्रतिसंख्येयनिबन्धनं प्रमाणमामनन्ति।

सुमन्त्र–बहुत से प्राणियों का यह स्वभाव ही है कि किसी की किसी (के प्रति) में, आनन्दमयी प्रीति हो जाती है। इसी प्रीति के विषय में लोकोक्ति है–नयनों की पुतलियों की 'मित्रता' अथवा आँखों का अनुराग (प्रेम)। विद्वज्जन ऐसी प्रीति को अतर्क्य प्रमाण मानते हैं।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति।।17।।

अन्वय–यः अहेतुः पक्षपातः तस्य प्रतिक्रिया नास्ति। हि सः स्नेहात्मकः तन्तुः भूतानि अन्तः सीव्यति।

शब्दार्थ–यः = जो, अहेतुः = अकारण, पक्षपातः = अनुराग, अर्थात् प्रेम के कारण पक्ष ग्रहण होता है, तस्य = उसका (कोई) प्रतिक्रिया = प्रतिकार (रोकथाम का उपाय), नास्ति = नहीं है। हि = क्योंकि, सः = वह, स्नेहात्मकः = अनुराग रूपी, (प्रेमरूपी) तन्तुः = सूत्र (तागा) है, (जो भूतानि = प्राणियों अथवा जीवों को, अन्तः = हृदय में भीतर ही भीतर, सीव्यति = सीं देता है, अर्थात् प्राणियों के हृदयों को सींकर परस्पर जोड़ देता है।

अनुवाद–(सुमन्त्र अकारण स्नेह का प्रभाव बता रहे हैं–) जो अकारण (निःस्वार्थ) अनुराग होता है, उसके रोक-थाम का कोई उपाय (प्रतिकार) नहीं है, क्योंकि वह अनुराग (प्रेम) रूपी सूत्र है (जो) प्राणियों के हृदयों को (परस्पर) सीं देता है।

कुमारौ–(अन्योन्यमुद्दिश्य)

दोनों कुमार–(एक दूसरे को मानकर)

एतस्मिन्मसृणितराजपट्टकान्ते
मोक्तव्याः कथमिव सायकाः शरीरे।
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा–
दुन्मीलत्पुलककदम्बमङ्गमास्ते।।18।।

अन्वय–मसृणितराजपट्टकान्ते एतस्मिन् शरीरे सायकाः कथमिक मोक्तव्याः ? यत्प्राप्तौ परिरम्भणाभिलाषात् मम अङ्गमम् उन्मीलत्पुलककदम्ब आस्ते।

शब्दार्थ–मसृणित राजपट्टकान्ते = चिकने उत्तम राजसीवस्त्र के समान

(सुशोभित) एतस्मिन् = इस, शरीरे = शरीर पर, सायकाः = बाण, कथमिव = कैसे, मोक्तव्याः = छोड़े जावेंगे, यत्प्राप्तौ = जिस (शरीर) के मिलने पर, परिरम्भणाभिलाषात् = आलिङ्गन करने की अभिलाषा से, मम = मेरा (लव अथवा चन्द्रकेतु का) अङ्गम् = शरीर, उन्मीलत्पुलककदम्बम् = रोमांचित, आस्ते = हो रहा है।

अनुवाद–(दोनों कुमार परस्पर अनुराग के कारण पारस्परिक-युद्ध में संशय कर रहे हैं–) चिकने उत्तम राजसी वस्त्र के समान सुशोभित इस शरीर पर (तीखे) बाण कैसे छोड़े जाएँगे ? जिस शरीर के मिलने पर (उससे) आलिङ्गन करने की अभिलाषा से मेरा (लव अथवा चन्द्रकेतु का) शरीर रोमांचित हो रहा है।

किं चाक्रान्तकठोरतेजसि गतिः का नाम शस्त्र विना
शस्त्रेणापि हि तेन किं न विषयो जायेत यस्येदृशः।
किं वक्ष्यत्ययमेव युद्धविमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे
वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहकर्म बाधते।।19।।

अन्वय–किञ्च आक्रान्तकठोरतेजसि शस्त्रं विना का नाम गतिः ? यस्य ईदृशः विषयः न जायेतहि तेन शस्त्रेण अपि किम् ? आयुधे उद्येत अपि युद्धविमुखं माम् अयम् एव किं वक्ष्यति ? हि दारुणरसः वीराणां समयः स्नेह क्रमं बाधते।

शब्दार्थ–किञ्च = और (इसके अतिरिक्त) आक्रान्तकठोरतेजसि = सर्वथा पूर्ण तेजस्वी के प्रति, शस्त्र बिना = शस्त्र ग्रहण से भिन्न, (अन्य) का नाम, गतिः = उपाय ही क्या है ? अर्थात् एकमात्र शस्त्र उठाना ही उपाय है। यस्य = जिसका, ईदृशः = ऐसा शूर-वीर, विषयः = लक्ष्य, न जायेत = न बने, हि = निश्चय ही, तेन = उस, शस्त्रेण = शस्त्र से, अपि = भी किम् क्या लाभ है ? अर्थात् कोई लाभ नहीं है। आयुधे = शस्त्र (के) उद्येत अपि = उठने पर भी, युद्धविमुखम् = युद्ध से पराङ्मुख अर्थात् युद्ध करने से मुख मोड़े हुए, माम् = मुझसे अर्थात् लव अथवा चन्द्रकेतु से, अयम् = यह, एव = ही, किं = क्या, वक्ष्यति = कहेगा ? हि = क्योंकि, दारुणरसः = निर्दय वीररस से युक्त, वीराणाम् = वीरों का, समयः = आचार (व्यवहार) स्नेहक्रमं = प्रेमव्यवहार को, बाधते = रोकता है, बाधा पहुँचाता है।

अनुवाद–(दोनों कुमार अब वीर धर्म के अनुसार परस्पर प्रेमव्यवहार की अपेक्षा युद्ध को अनिवार्य मान रहे हैं–) और दोनों इसके अतिरिक्त सर्वथा पूर्ण तेजस्वी के प्रति शस्त्र को ग्रहण करने के अतिरिक्त (अन्य) उपाय ही क्या है ? (अर्थात् एकमात्र शस्त्र उठाना ही उपाय है) जिसका ऐसा शूर-वीर लक्ष्य (= युद्ध में निशाना) न बने, निश्चय ही उस शस्त्र से भी क्या लाभ है ? (अर्थात् कोई लाभ नहीं है)। शस्त्र उठने पर भी युद्ध से पराङ्मुख (= युद्ध से मुख मोड़े हुए) मुझसे (लव अथवा

चन्द्रकेतु से) यह ही क्या कहेगा ? क्योंकि निर्दय वीररस से युक्त वीरों का आचार (व्यवहार) प्रेमव्यवहार को बाधा पहुँचाता है।

सुमन्त्रः–(लवं निर्वर्ण्य सास्रमात्मगतम्) हृदय, किमन्यथा परिप्लवसे ?

सुमन्त्र–(लव को देखकर आँखों में आँसू भरकर मन ही मन) हृदय! तू क्यों (निष्फल ही) विपरीत बात सोचकर विचलित हो रहा है।

मनोरथस्य यद्‌बीजं तद्दैवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्‌भवः कुतः ?।।20।।

अन्वय–मनोरथस्य यद् बीजं तत् दैवेन आदितः हृतम्। पूर्व लूनायां लतायां प्रसवस्य उद्‌भवः कुतः।

शब्दार्थ–मनोरथस्य = (सुतरूपी) मनोरथ का, य = जो, बीजम् = मूल (सीता रूपी)–कारण, (था), तत् = उसे, दैवेन = भाग्य ने, आदितः = पहले ही, हृतम् = छीन लिया, पूर्वलूनायाम् = पहले ही से कटी हुई, लतायाम् = लता में, प्रसवस्य = पुष्प की, उद्‌भवः = उत्पत्ति, कुतः = कैसे (हो सकती है)।

अनुवाद–(सुमन्त्र लव के सीता-पुत्र होने की सम्भावना पर विश्वास नहीं कर पा रहा है–) सुतरूपी मनोरथ का जो (सीता रूपी) मूल कारण था, उसे (तो) भाग्य ने पहले ही छीन लिया है। (अतः) पहले ही से कटी हुई लता में (अब) पुष्प की उत्पत्ति कैसे (अथवा कहाँ से) हो सकती है ? (अर्थात् नहीं हो सकती है)।

चन्द्रकेतुः–अवतराम्यार्य सुमन्त्र, स्पन्दनात्।

चन्द्रकेतु–आर्य सुमन्त्र, (मैं) रथ से उतरता हूँ।

सुमन्त्रः–कस्य हेतोः ?

सुमन्त्र–किस कारण से ?

चन्द्रकेतुः एकस्तावदयं वीरपुरुषः पूजितो भवति। अपि च–खल्वार्य, क्षात्रधर्मः परिपालितो भवति। न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्तीति शास्त्रविदः परिभाषन्ते।

चन्द्रकेतु–हे आर्यः! एक तो इस वीर पुरुष का (यथोचित्) स्वागत होता है, तथा (इसके अतिरिक्त) क्षत्रिय धर्म का निर्वाह (भी) हो जाता है। (क्योंकि) ''रथ-सवार वीर पैदल (सैनिक) से युद्ध नहीं करते हैं।'' ऐसा शास्त्रज्ञों का अभिमत है।

सुमन्त्रः–(स्वगतम्) आः! कष्टां दशामनुप्रपन्नोऽस्मि।

सुमन्त्र–(अपने मन में) ओह! कष्टमयी दशा को प्राप्त हो गया हूँ। (अर्थात् कठिन परिस्थिति अथवा धर्मसंकट में उलझ गया हूँ)

कथं हीदमनुष्ठानं मादृशः प्रतिषेधतु।
कथं वाऽभ्यनुजानातु साहसैकरसां क्रियाम्।।21।।

अन्वय–हि मादृशः इदम् अनुष्ठानं कथं प्रतिषेधतु, कथं वा साहसैक रसां क्रियां अभ्यनुजानातु।

शब्दार्थ–हि = क्योंकि, मादृशः = मुझ जैसा व्यक्ति, इदम् = इस प्रकार के वीरपुरुष के योग्य, अनुष्ठानम् = कार्य को, कथम् = किस प्रकार (कैसे) प्रतिषेधतु = रोके, मना करे। अथं वा = अथवा कैसे। साहसैकरसाम् = केवल साहस-प्रधान, (किंतु विचार शून्य), क्रियाम् = कार्य को, अभ्यनुजानातु = अनुमति (स्वीकृति, सहमति) प्रदान करे ?

अनुवाद–(सुमन्त्र इस समय धर्मङ्कट में पड़ गया है–) क्योंकि मुझ जैसा (सङ्ग्राम-धर्म का विज्ञ) व्यक्ति, इस प्रकार के वीर-पुरुष के योग्य कार्य को किस प्रकार मना करे ? अथवा कैसे (इस) एकमात्र साहस-प्रधान कार्य को (करने की) अनुमति प्रदान करे ?

चन्द्रकेतुः–यदा तातमिश्रा अपि पितुः प्रियसखं त्वामर्थसंशयेषु पृच्छन्ति, तत् किमार्यो विमृशति ?

चन्द्रकेतु–जब पूज्यपितृवर्ग (रामादि) भी अर्थ (कर्त्तव्य विषयों) में संदेह होने पर अपने पिता (दशरथ जी) के प्रियमित्र आपसे ही पूछते हैं, तो अब कार्य क्या विचार कर रहे हैं ?

सुमन्त्रः–आयुष्मन्! एवं यथाधर्ममभिमन्यसे।

सुमन्त्र–चिरञ्जीव! तुम इस प्रकार क्षत्रियों के लिए उचित धर्म को ही **सोच** रहे हो।

एष सांग्रामिको न्याय एष धर्मः सनातनः।
इयं हि रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः।।22।।

अन्वय–एष साङ्ग्रामिकः न्यायः, एष सनातनः धर्मः, हि इयं रघुसिंहानां वीरचारित्र पद्धतिः (अस्ति)।।

शब्दार्थ–एष सांग्रामिकः न्यायः = यह (वीर स्वागत रूपी आचरण) रण-धर्म से सम्बन्धित न्याय है, एष सनातनः धर्मः = यह सनातन धर्म है, हि = क्योंकि, इयम् = यही (तुम्हारी वीर-सत्कृति) रघुसिंहानाम् = रघुवंशी वीर सिंहों की, वीरचारित्रपद्धतिः = वीरोचित व्यवहार परिपाटी है।

अनुवाद–(सुमन्त्र चन्द्रकेतु की वीर धर्मनिष्ठा पर प्रसन्न हो रहा है–) यह (वीर-स्वागत रूपी आचरण) रण-धर्म से सम्बन्धित न्याय है, यह सनातन (अत्यन्त प्राचीन) धर्म है, (और) यह (ही) रघुवंशी वीर-सिंहों (–रघुकुल के श्रेष्ठ वीरों) की वीरोचित व्यवहार (आचार) परिपाटी है।

चन्द्रकेतुः–अप्रतिरूपं वचनमार्यस्य।

चन्द्रकेतु–आर्य (आप) का कथन अद्वितीय है।

इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च।
भवन्त एव जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम्।।23।।

अन्वय–इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च रघूणां च कुलस्थिति च (वस्तुतः) भवन्त एव जानन्ति।

शब्दार्थ–कुलस्थितिम् = कुल मर्यादा, वंश-परम्परा को। भवन्त एव = आप ही। शेष शब्द स्पष्ट है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु सुमन्त्र की यथोचित् टिप्पणी पर उनकी प्रशंसा कर रहा है–) इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र तथा रघुकुल राजाओं की वंश परम्परा को (यथार्थ रूप से) आप ही जानते हैं।

सुमन्त्रः–(सस्नेहास्त्रं परिष्वज्य)

सुमन्त्र–(अनुराग और आनन्दमिश्रित अश्रुओं सहित आलिङ्गन कर)

जातस्य ते पितुरपीन्द्रजितो निहन्तु-
र्वत्सस्य वत्स! कति नाम दिनान्यमूनि।
तस्याप्यपत्यमनुतिष्ठति वीरधर्मं
दिष्ट्यागतं दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम्।।24।।

अन्वय–हे वत्स! इन्द्रजितः निहन्तुः वत्सस्य ते पितुः अपि जातस्य अमूनि कति नाम दिनानि ? तस्य अपत्यम् अपि वीरधर्मम् अनुतिष्ठति, दिष्ट्या दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम् आगतम्।।

शब्दार्थ–हे वत्स! इन्द्रजितः = इन्द्र को जीतने वाले मेघनाद को, निहन्तुः = मारने वाले, वत्सस्य = वत्स के समान, ते पितुः = तुम्हारे पिता लक्ष्मण को, अपि = भी, जातस्य = उत्पन्न हुए, अभूनि = अभी ये, कति नाम दिनानि = कुल कितने दिन (हुए हैं) ?, तस्य = उस (लक्ष्मण) के, अपत्यम् अपि = पुत्र (तुम) भी, वीरधर्मम् = वीरसदृश धर्म का, अनुतिष्ठति = अनुपालन कर रहे हो, दिष्ट्या = भाग्य से, दशरथस्य = दशरथ जी का, कुलम = वंश, प्रतिष्ठाम् प्रतिष्ठा को, आगतम् = प्राप्त हो गया है।

अनुवाद–(छोटी आयु में भी वीरधर्म के पालक चन्द्रकेतु के कारण सुमन्त्र को रघुवंश के गौरव पर गर्व है। हे वत्स (चन्द्रकेतु) इन्द्र को जीतने वाले मेघनाद को, मारने वाले तुम्हारे पिता वत्स (लक्ष्मण) को भी उत्पन्न हुए अभी ये कुल कितने दिन हुए हैं ? उस (लक्ष्मण) के पुत्र (तुम) भी वीर सदृश (युद्ध) धर्म का अनुपालन कर रहे हो, (अतः प्रकट है कि) सौभाग्य से दशरथ जी का वंश (अब) प्रतिष्ठा को पहुँच गया है।

चन्द्रकेतुः–(सकष्टम्)

चन्द्रकेतु–(कष्ट-सहित)

अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः।
इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे।।25।।

अन्वय–कुलज्येष्ठे अप्रतिष्ठे नः कुलस्य का प्रतिष्ठा ? इति दुःखेन नः अपरे त्रयः पितरः तप्यन्ते।

शब्दार्थ–कुलज्येष्ठे = वंश में बड़े (राम) के, अप्रतिष्ठे = प्रतिष्ठा (–ससन्तान होने के गौरव से) रहित होने पर, नः = हमारे, कुलस्य = वंश की, का प्रतिष्ठा = क्या प्रतिष्ठा है ?, इति दुःखेन = इसी सन्ताप से, नः = हमारे, अपरे = अन्य, त्रयः = तीन, 'पितरः = पिता की कोटि के भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न, तप्यन्ते = सन्तान (दुःख) का अनुभव करते हैं।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु राम के निःसन्तान रह जाने से उत्पन्न पारिवारिक दुःख का वर्णन कर रहा है) (रघु-) वंश में बड़े (राम) के (निःसंतान होने के कारण वंश में) प्रतिष्ठित न होने पर (= स-सन्तान होने के गौरव से रहित होने पर) हमारे वंश की क्या प्रतिष्ठा है ? इसी सन्ताप से हमारे अन्य तीन पिता (पिता की कोटि के भरत-लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न) दुःख का अनुभव करते हैं।

सुमन्त्रः–अहह, हृदयमर्मदारणान्येव चन्द्रकेतोर्वचनानि।

सुमन्त्र–ओह, चन्द्रकेतु के ये वचन हृदय-विदारक हैं।

लवः-हन्त! मिश्रीकृतक्रमो रसो वर्तते।

लव–अहा! वासल्य रस वीर रस से सम्मिश्रित हो रहा है।

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढ़े कुमुदिनी
तथैवास्मिन् दृष्टिर्मम, कलहकामः पुनरयम्।
रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु–
र्धतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालव्रणमुखः।।26।।

अन्वय–इन्दौ समुपोढे कुमुदिनी यथा आनन्दं व्रजति, तथा एव अस्मिन् मम दृष्टिः (आनन्दं व्रजति)। रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद् गुरुधनुर्धृतप्रेमा विकचविकरालव्रणसुखः अयं (मम) बाहुः पुनः कलहकामः।

शब्दार्थ–इन्दौ = चन्द्रमा के, समुपोढे = उदित होने पर, कुमुदिनी = कुमुदिनी, यथा = जिस प्रकार, आनन्दम् = आन्दन को, व्रजति = प्राप्त होती है, अर्थात् विकास को प्राप्त होती है, तथा एव = उसी प्रकार, अस्मिन् = इस (चन्द्रकेतु) पर, मम = मेरी (लव की), दृष्टिः = दृष्टि, (आनन्द को प्राप्त हो रही है)। रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद् गुरुधनुर्धतप्रेमा = (परंतु) रणत्कार (रण रण इस प्रकार की ध्वनि विशेष) से कर्कश-झङ्कार वाली प्रत्यञ्चा के कारण गूँजते हुए (से) भारी धनुष प्रेम करने वाली (= धनुष को धारण करने वाली) तथा, विकचविकरालवणमुखः = करतल (हथेली) भाग में स्पष्ट एवं विकराल घावों वाली, अयं मम बाहुः = यह मेरी (दाहिनी) भुजा, पुनः = तो, कलहकामः = युद्ध के लिए इच्छा कर रही है।

अनुवाद–(लव, वीर और वात्सल्य रस के अद्भुत मिश्रण के अपने पूर्व अनुभव

की व्याख्या कर रहा है—) चन्द्रमा के उदित होने पर कुमुदिनी जिस प्रकार आनन्द (विकास) को प्राप्त होती है, उसी प्रकार इस (चन्द्रकेतु) पर मेरी (अर्थात् लव की) दृष्टि आनन्द को प्राप्त हो रही है, परंतु रणत्कार—'रण-रण' इस प्रकार की ध्वनि विशेष—सकर्कश-झङ्कार वाली प्रत्यञ्चा के कारण गूँजते हुए से भारी धनुष से ग्रहण करने वाली (अर्थात् भारी धनुष को धारण करने वाली) तथा अग्रभाग (= करतल-हथेली-भाग) में स्पष्ट एवं विकराल घावों वाली, यह मेरी (दाहिनी) भुजा तो युद्ध करने हेतु इच्छा कर रही है।

चन्द्रकेतुः—(अवतरणं निरूपयन्) आर्य! अयमसावैक्ष्वाकश्चन्द्रकेतुरभिवादयते।

चन्द्रकेतु—(उतरने का अभिनय करते हुए) आर्य! यह इक्ष्वाकुवंशी चन्द्रकेतु (आपको) अभिवादन करता है।

सुमन्त्रः—अहितस्यैव पुनः पराभवाय महानादिवराहः कल्पताम्।

सुमन्त्र—(तुम्हारे) अहितकारी अरि के पराजय हेतु वराहावतार भगवान विष्णु (= महान् आदिवराह पुनः) सन्नद्ध हों। ('अहित' के पराजय-हेतु ही तुम्हें भगवान आदि वराह से आशीर्वाद रूपी बल मिले, 'हित' के नाशार्थ नहीं। लव तुम्हारा 'हित' और 'प्रिय' है, अतः तुम्हारे द्वारा पराजय न होना ही मुझे अभीष्ट है।)

(अपि च)

(और भी)

देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्ते पति—
स्त्वां मैत्रावरुणोऽभिनन्दतु गुरुर्यस्ते गुरूणामपि।
ऐन्द्रावैष्णवमाग्निमारुतमथो सौपर्णमोजोऽस्तु ते
देयादेव च रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम्।।27।।

अन्वय—(सः) देवः सविता समरे त्वां धिनोतु, यः ते गोत्रस्य पतिः (अस्ति) (सः) मैत्रावरुणः त्वाम् अभिनन्दतु, यः ते गुरूणाम् अपि गुरुः। ऐन्द्रावैष्णवम् आग्निमारुतम् अथो सौपर्णम् ओजः ते अस्तु। रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रः च जयं देयात् एव।।27।।

शब्दार्थ—देवः = देव, सविता = सूर्य, समरे = युद्ध में, त्वाम् = तुम्हें, धिनोतु = प्रसन्न रखे, यः = जो, ते = तुम्हारे, गोत्रस्य = वंश का, पतिः = प्रवर्तक स्वामी है। मैत्रावरुणः = महर्षि वसिष्ठ, त्वाम! = तुम्हें, अभिनन्दतु = अभिनन्दित करें, यः ते = जो तुम्हारे, गुरुणाम् अपि = गुरुजनों अथवा पूर्वजों के भी, गुरुः = गुरु हैं। ऐन्द्रा-वैष्णवम् = इन्द्र तथा विष्णु का, आग्निमारुतम् = अग्नि और वायु का, अथो = तथा, सौपर्णम् = गरुड़ का, ओजः = तेज, ते अस्तु = तुम्हें (चन्द्रकेतु को) प्राप्त हो। रामलक्ष्मणधनुर्ज्या घोषमन्त्रः च = तथा राम और लक्ष्मण के धनुष की डोरी का टङ्कार रूपी मन्त्र, जयं देयात् एव = तुम्हें (अवश्य ही) विजय प्रदान करें।

अनुवाद–(सुमन्त्र चन्द्रकेतु के कल्याण के लिए उसे आशीर्वाद दे रहा है–) वह सूर्य-देव युद्ध में तुम्हें प्रसन्न रखें, जो तुम्हें कुल का प्रवर्त्तक (स्वामी) है, वह महर्षि वसिष्ठ तुम्हें अभिनन्दित करें, जो तुम्हारे गुरुजनों अथवा पूर्वजों के भी गुरु हैं। इन्द्र तथा विष्णु का अग्नि और वायु का तथा गरुड़ का तेज तुम्हें (चन्द्रकेतु को) प्राप्त हो और राम तथा लक्ष्मण के धनुष की डोरी का टङ्कार रूपी मन्त्र तुम्हें (अवश्य ही) विजय प्रदान करे।

लवः–अतीव नाम शोभसे रथस्य एव। कृतं कृतमत्यादरेण।

लव–(आप) रथ पर ही अधिक सुशोभित हो रहे हैं। अधिक आदर करने की क्या आवश्यकता है ?

चन्द्रकेतुः–तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलङ्करोतु।

चन्द्रकेतु–तब महाभाग (आप) भी दूसरे रथ को सुशोभित करें।

लवः–आर्य! प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्।

लव–आर्य! राजकुमार को रथ के ऊपर चढ़ाएँ।

सुमन्त्रः–त्वमप्यनुरुध्यस्व वत्सस्य चन्द्रकेतोर्वचनम्।

सुमन्त्र–तुम भी पुत्र चन्द्रकेतु की बात को मान लो।

लवः–को विचारः स्वेषूपकरणेषु ? किन्त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्त-रथचर्याः।

लव–अपने साधनों (के प्रयोग) में क्या विचार ? किंतु हम जंगल में रहने वालों का रथ में चलने का अभ्यास नहीं है।

सुमन्त्रः–जानासि वत्स! दर्पसौजन्ययोर्यदाचरितम्। यदि पुनस्त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदातस्य स्नेहेन हृदयम-भिष्यन्देत।

सुमन्त्र–वत्स! अभिमान और नम्रता का जो आचरण है (उसे) करना तुम जानते हो। यदि ऐसे (गुणसम्पन्न) तुमको इक्ष्वाकुवंश राजा रामचन्द्र जी देखते तो उनका हृदय स्नेह से पिघल जाता।

लवः–आर्य! सुजनः स राजर्षिः श्रूयते। (सलज्जमिव)

लव–आर्य! वह राजर्षि सज्जन हैं, (ऐसा) सुना जाता है।

(लज्जावान की तरह)

वयमपि न खल्वेवम्प्रायाः कृतुप्रतिघातिनः
क इह न गुणैस्तं राजानं जनो बहु मन्यते।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरङ्गमरक्षिणां
विकृतिमखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतयाऽकरोत्।।28।।

अन्वय–वयम् अपि खलु एवंप्रायाः क्रतुप्रतिघातिनः न, इह कः जनः गुणैः तं राजानं बहु न मन्यते ? तदपि तुरङ्गमरक्षिणां स व्याहारः खलु अखिल क्षत्राक्षेपप्रचण्डतया मे विकृतिम् अकरोत्।।28।।

शब्दार्थ–वयम् = हम (लव आदि वनवासी कुमार) अपि = भी, खलु = निश्चय ही (वस्तुतः) एवं प्रायः = ऐसे कोई, क्रतुप्रतिघातिनः = यज्ञविध्वंसक, न = नहीं हैं, इह = इस संसार में, कःजनः = (ऐसा) कौन पुरुष (होगा, जो), गुणैः = गुणों के कारण, तं राजानम् = उस राजा (राम) का, बहु न मन्यते = बहुत अधिक सम्मान नहीं करता है ? (अर्थात् सभी उनका आदर करते हैं), तदपि = तथापि, तुरङ्गमरक्षिणाम् = अश्व की रक्षा करने वालों के, स व्याहारः खलु = उस कथन ने ही, अखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डता = सम्पूर्ण क्षत्रियों के अपमान के कारण कोपवर्धक होने से, मे विकृतिम् अकरोत् = मुझमें क्रोध-विकार को उत्पन्न कर दिया (अर्थात् अश्व रक्षकों के कथन से ही मैं क्रोधित हो गया हूँ)

अनुवाद–(लव ने अपने क्रोध का कारण सैनिकों की गर्वोक्ति को बताया है–) हम भी निश्चय ही ऐसे कोई यज्ञ विध्वंसक नहीं हैं, इस संसार में ऐसा कौन, पुरुष होगा जो गुणों के कारण उस राजा (राम) का बहुत अधिक सम्मान नहीं करता है ? तथापि अश्व (अश्वमेधयज्ञीय अश्व) की रक्षा करने वालों के उस कथन (योऽयमश्व.-4-27) ने ही सम्पूर्ण क्षत्रियों के अपमान के कारण कोपवर्धक होने से मुझमें क्रोधविकार को उत्पन्न कर दिया (अर्थात् अश्वरक्षकों के कथन से ही मैं क्रोधित हो गया हूँ।)

चन्द्रकेतु–किन्नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽयमर्षः ?

चन्द्रकेतु–तो क्या आपका पिता (रामचन्द्र) के प्रताप और उन्नति के प्रति भी द्वेष है ?

लवः–अस्त्विहामर्षो मा भूद्वा। अन्यदेतत्पृच्छामि। दान्तं हि राजानं राघवं श्रृणुमः। स किल नात्मना दृष्यति, नाप्यस्य प्रजा वा दृप्ता जायन्ते। तत् किं मनुष्यास्तस्य राक्षसीं वाचमुदीरयन्ति ?

लव–ऐसे अवसर पर क्रोध हो अथवा न हो, (यह विवाद का विषय नहीं है) परंतु मैं आपसे एक अन्य बात पूछता हूँ–हम राजा रामचन्द्र को इन्द्रियदमनशील सुनते हैं। न वे स्वयं (कभी गर्व करते हैं, और न उनके प्रजा-जन ही गर्वीले होते हैं। तो फिर उनके (सैनिक) पुरुष क्यों (ऐसी) राक्षसी (दर्पयुक्त) वाणी बोलते हैं ?

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मतदृप्तयोः।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः।।29।।

अन्वय–ऋषयः उन्मत्तदृप्तयोः वाचं राक्षसीम् आहुः। सा सर्ववैराणां योनिः, सा हि लोकस्य निष्कृतिः।।29।।

शब्दार्थ–ऋषयः = ऋषिजन, उन्मत्तदृप्तयोः = मतवाले और गर्वीले व्यक्तियों की, वाचम् = वाणी को, राक्षसीम् = राक्षसी वाणी, आहुः = कहते हैं। सा = वह (राक्षसी वाणी), सर्व-वैराणाम् = सब वैरों (कलहों) का, योनिः = उत्पत्ति स्थान है,

सा हि = वह (वाणी) ही, लोकस्य = व्यक्ति के, निष्कृतिः = तिरस्कार का हेतु है।

अनुवाद–लव ने मतवाले और गर्वयुक्त वाणी को राक्षसी बताया है–ऋषिजन मतवाले और गर्वीले व्यक्तियों की वाणी को राक्षसी वाणी कहते हैं। वह सब बैरों (कलहों-झगड़ों) का उत्पत्ति स्थान है (और) वही व्यक्ति के तिरस्कार का हेतु है। (अर्थात् राक्षसी वाणी सब झगड़ों की जड़ है।)

इति ह स्म तां निन्दन्ति अथेतरामभिष्टुवन्ति।

इसलिए (वे लोग) उसकी निन्दा करते हैं और दूसरी (दैवी वाणी) की प्रशंसा करते हैं।

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीतिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति।
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराःसूनृतां वाचमाहुः।।30।।

अन्वय–(इतरा-दैवी-वाणी) कामं दुग्धे, अलक्ष्मीं विप्रकर्षति, कीर्ति सूते, दुर्हृदः निष्प्रलाति। (अतः) धीराः शुद्धां शान्तां मङ्गलानां मातरं सूनृतां वाचं धेनुम् आहुः।

शब्दार्थ–(अन्य-दैवी वाणी) कामन् = मनुष्य की अभिलाषा को, दुग्धे = पूर्ण करती है, अलक्ष्मीम् = अशुभ को, विप्रकर्षति = दूर करती है, कीर्तिम् = यश को, सूते = उत्पन्न करती है, दुर्हृदः = शत्रुओं को, निष्प्रलाति = नष्ट करती है, (अतएव) धीराः = विद्वान् लोग, शुद्धाम् = पवित्र, शान्ताम् = शान्त, मङ्गला-नामातरम् = कल्याण उत्पन्न करने वाली, सूनृताम् = सत्य और प्रिय, वाचम् = वाणी को, धेनुम् = कामधेनु, आहुः कहते हैं।

अनुवाद–(लव दैवी वाणी को कामधेनु बता रहा है) (दैवी वाणी) मनुष्य की अभिलाषा को पूर्ण करती है, अशुभ को दूर करती है, यश को उत्पन्न करती है, (तथा) शत्रुओं को नष्ट करती है, (अतएव) विद्वान् लोग पवित्र, शान्त, तथा कल्याण उत्पन्न करने वाली सत्य और प्रिय वाणी को कामधेनु बताते हैं।

सुमन्त्रः–परिभूतोऽयं बत कुमारः प्राचेतसान्तेवासी। वदत्ययम-भ्युपपन्नामर्षेण संस्कारेण।

सुमन्त्र–खेद है कि वाल्मीकि मुनि का शिष्य यह कुमार पराजित हुआ है, क्योंकि यह क्रोध-भावना से बोल रहा है।

लवः–यत्पुनश्चन्द्रकेतो, वदसि 'किं नु भवतस्तात प्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्षं' इति तत्पृच्छामि–किं व्यवस्थितविषयः क्षत्र धर्म इति।

लव–हे चन्द्रकेतु जी! आपने जो यह कहा कि "क्या तुम्हें तात (राम) के प्रताप के उत्कर्ष में भी क्रोध होता है ? तो मैं आपसे पूछता हूँ–क्या क्षात्र-धर्म किसी एक ही व्यक्तिविशेष तक नियन्त्रित है ? (अर्थात् क्या राम के अतिरिक्त किसी अन्य क्षत्रिय में क्षत्रिय धर्म नहीं हो सकता ?)

सुमन्त्र–नैव खलु जानासि देवमैक्ष्वाकं येनैवं वदसि। तद् विरमातिप्रसङ्गात्।

सुमन्त्र–(वस्तुतः) तुम इक्ष्वाकु वंशशिरोमणि महाराज (राम) को नहीं जानते हो, अतएव ऐसी बात बोलते हो। (अस्तु) अब इस अनावश्यक प्रसङ्गान्तर की चर्चा रोक दी।

सैनिकानां प्रमाथेन सत्यमोजायितं त्वया।
जामदग्नस्य दमने न हि निर्बन्धमर्हसि।।31।।

अन्वय–(इदम्) सत्यं सैनिकानां प्रमाथेन त्वया ओजायितम् जामदग्न्यस्य दमने निर्बन्धं न हि अर्हसि।।31।।

शब्दार्थ–(यह) सत्यम् = सत्य है कि, सैनिकानाम् = सैनिकों के, प्रमाथेन = उत्तेजक अनर्गल वचनों से, त्वया = तुम, ओजायितम् = क्षत्रियोचित ओज (तैश) में आ गए हो, (किंतु) जामदग्न्यस्य = जमदग्नि के पुत्र (परशुराम जी) के, दमने = दमन करने वाले (परशुराम-विजेता) रामचन्द्र के विषय में, निर्बन्धम् = दुराग्रह पूर्ण कटु भाषण रूपी आचरण, नहि अर्हसि = तुम्हें उचित नहीं है।

अनुवाद–सुमन्त्र लव को राम के प्रति कटु भाषण न करने को परामर्श दे रहा है–) यह सत्य है कि सैनिकों के उत्तेजक (मर्मवेधी) निरर्गल (उच्छृङ्खल) वचनों से तुम क्षत्रियोचित (अभिमानवश) ओज (तैश) में आ गए हो, किंतु ऋषि जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी के दमन करने वाले (परशुरामविजेता) रामचन्द्र के विषय में दुराग्रह पूर्ण कटु भाषण रूपी आचरण (करना) तुम्हें उचित नहीं है।

लवः–(सहासम्) आर्य, जामदग्न्यस्यदमनः स राजेति कोऽयमुच्चैर्वादः ?

लव–(हँसकर) आर्य! 'वे परशुराम के विजेता महाराजा हैं'' –यह कौन बड़ी बात है ? (अर्थात् मेरी दृष्टि में यह कोई प्रशंसा की बात नहीं है)

सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्य द्विजानाम्
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्य–
स्तस्मिन्दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः ?।।32।।

अन्वय–हि एतत् सिद्धं (यत्) वाचि वीर्यं द्विजानाम् (भवति) यत् (तु) बाह्वोः वीर्य, तत् तु क्षत्रियाणाम् (एव) जामदग्न्यः शस्त्रग्राही ब्राह्मणः, तस्मिन् दान्ते (सति) तस्य राज्ञः का स्तुतिः ?

शब्दार्थ–हि = क्योंकि, एतत् = यह बात, सिद्धम् = सिद्ध है कि, वाचि = वाणी में, वीर्यम् = सामर्थ्य, द्विजानाम् = ब्राह्मणों में होता है, यत् तु = किंतु जो, बाह्वोः = भुजाओं का, वीर्यम् = बल है, तत् तु = वह तो, क्षत्रियाणाम् = क्षत्रियों में, एव = ही होता है। जामदग्न्यः = परशुराम जी, शस्त्रग्राही = शस्त्रधारी,

ब्राह्मणः = ब्राह्मण हैं, तस्मिन् = उनका, दान्ते = दमन करने पर, तस्य राज्ञः = उस राजा राम की, का स्तुतिः = क्या प्रशंसा है

अनुवाद–(लव, ब्राह्मण परशुराम को जीतने में राम की कोई प्रशंसा नहीं मानता) क्योंकि यह बात सिद्ध (स्पष्ट) है कि वाणी का सामर्थ्य ब्राह्मणों में होता है, किंतु जो भुजाओं का बल है, वह तो क्षत्रियों में ही होता है। परशुराम जी शस्त्रधारी ब्राह्मण हैं, (अतः) उनका दमन करने पर उन राजा राम की क्या प्रशंसा है ? (अर्थात् बाहुबल से हीन मात्र शस्त्रधारी ब्राह्मण को पराजित करने में राम की कोई बड़ाई नहीं है)

चन्द्रकेतुः–(सोन्माथमिव) आर्य सुमन्त्र, कृतमुत्तरोत्तरेण।

चन्द्रकेतु–(उद्विग्न हुआ-सा) आर्य सुमन्त्र, (अब आप) उत्तर प्रत्युत्तर बन्द करें।

कोऽप्येष सम्प्रति नवः पुरुषावतारो
वीरो न यस्य भगवान्भृगुनन्दनोऽपि।
पर्याप्त सप्तभुवनाभय दक्षिणानि
पुण्यानि तातचरितान्यपि यो न वेद।।3।।

अन्वय–संप्रति एषः कोऽपि नवः पुरुषावतारः, यस्य भगवान् भृगुनन्दनः अपि वीरः न (अस्ति)। यः पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि पुण्यानि तात चरितानि अपि न वेद।।3।।

शब्दार्थ–सम्प्रति = इस समय, एषः = यह, कोऽपि = कोई अनोखा, नवः = नूतन, पुरुषावतारः = पुरुष रूप में भगवान विष्णु का अवतार है, यस्य = जिसके समक्ष (जिसकी दृष्टि में), भगवान् = ऐश्वर्यशाली, भृगुनन्दनः अपि = परशुराम जी भी, वीरः न = वीर नहीं हैं। यः = जो (लव) पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि = सम्पूर्ण रूप से सातों भुवनों को अभयदान देने वाले, पुण्यानि = पवित्र, तात-चरितानि अपि = पूज्य पिता जी के चरितों को भी, न वेद = नहीं जानता है।

अनुवाद–(चन्द्रकेतु लव को कोई अभूतपूर्व अवतार मान रहा है–) इस समय यह (लव कोई अद्भुत नवीन पुरुष रूप में भगवान विष्णु का अवतार (प्रतीत होता) है, जिसकी दृष्टि में ऐश्वर्यशाली परशुराम भी 'वीर' नहीं है। जो (लव) सम्पूर्ण रूप से सातों भुवनों को अभयदान देने वाले (एवं) पवित्र पूज्य पिता (श्री रामचन्द्र) जी के चरित्रों को भी नहीं जानता है।

लवः–को हि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति। यदि नाम किञ्चिदस्ति वक्तव्यम्। अथवा शान्तम्।

लव–कौन ऐसा पुरुष है जो राम के चरित तथा माहात्म्य को नहीं जानता ? भले ही उसमें कुछ टीका-टिप्पणी के योग्य है। अथवा (अब) शान्त रहना ही उचत है।

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
सुन्दरस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हिते।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः।।34।।

अन्वय–(यतः) ते वृद्धाः (अतः) विचारणीय चरिताः न (ते तथाभूता एव) तिष्ठन्तु, किं वर्ण्यते ? सुन्दरस्त्री मथने अपि अकुण्ठयशसः ते लोके महान्तः हि। खरायोधने यानि त्रीणि पदानि कुतोमुखानि अपि आसन्, वा इन्द्रसूनुनिधने यत् कौशलम् (प्रयुक्तमासीत्) तत्र अपि जनः अभिज्ञः।।34।।

शब्दार्थ–(क्योंकि) ते वृद्धाः = वे वृद्ध गुरुजन हैं, अतः, वे विचारणीय-चरिताः = टीका टिप्पणी करने योग्य चरित्र वाले नहीं हैं (हमें उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए), (ते तथा भता एव) तिष्ठन्तु = उन्हें वैसा ही रहने दिया जाए, किं वर्ण्यते = उनके लिए क्या वर्णन करें (क्या कहें), सुन्दस्त्रीमथने अपि अकुण्ठयशसः = सुन्द (नामक राक्षस) की पत्नी (ताडका) का वध कर देने पर भी निर्दोष कीर्तिवाले, ते लोके = वे लोग लोक में, महान्तः हि = महान ही हैं। खरायोधने = धर (राक्षस) के साथ युद्ध में, यानित्रीणि पदानि = जो तीन पैर (कदम), कुतोमुखानि अपि = पीछे की ओर भी हटाए गए, आसन् = थे, वा = अथवा, इन्द्रसूनुनिधने = इन्द्र-पुत्र (वाली) के वध में यत्कौशलम् = जो कौशल प्रयोग किया गया था, तत्र अपि = उस घटना से भी, जनः = जनसाधारण, अभिज्ञः = परिचित है।

अनुवाद–(लव राम के चरित पर व्यङ्ग्य युक्त आक्षेप कर रहा है–) क्योंकि वे वृद्ध गुरुजन हैं, अतः वे टीका-टिप्पणी करने योग्य चरित्र वाले नहीं हैं (अर्थात् हमें उनकी आलोचना नहीं करनीं चाहिए) उन्हें वैसा ही रहने दिया जाए, उनके लिए क्या वर्णन करें (अर्थात् क्या कहें), सुन्दर नामक राक्षस की पत्नी ताडका का वध कर देने पर भी निर्दोष (निष्कलङ्क अथवा अबाधित) कीर्ति वाले वे लोग लोक में महान ही हैं। खर राक्षस के साथ युद्ध करते समय जो तीन पैर (पग-कदम) पीछे की ओर भी (राम ने) हटाए थे, अथवा इन्द्र-पुत्र (वाली) के वध में जो कौशल प्रयोग किया गया था, उस घटना से भी जनसाधारण (भलीभाँति) परिचित है।

चन्द्रकेतुः–आः तातापवादिन् भिन्नमर्याद, अति हि नाम प्रगल्भसे।

चन्द्रकेतु–ओह, पिता (महाराज रामचन्द्र) जी के निन्दक! मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले! अब तू बहुत ही ढिठाई से बढ़-बढ़कर बात कर रहा है।

लवः–अये, मय्येव भृकुटीमुखः संवृत्तः।

लव–अरे! (यह तो) मेरे ही ऊपर भौहें तरेर रहा है।

सुमन्त्रः–स्फुरित मनयोः क्रोधेन। तथा हि–

सुमन्त्र–(अब) इन दोनों का (परस्पर) क्रोध भड़क उठा है। क्योंकि–

क्रोधेनोद्धत धूत कुन्तलभरः सर्वाङ्गजोवेपथुः।
किञ्चित्कोकनदच्छदस्य सदृसे नेत्रे स्वयं रज्यतः।
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्रमनयौर्भङ्गेन भीमं भ्रुवो-
श्चन्द्रस्योद्भटलाञ्छनस्य कमलस्यौद्भ्रान्तभृङ्गस्यच।।35।।

अन्वय–क्रोधेन उद्धत धूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजः वेपयुः कोकनदच्छदस्य किञ्चित् सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः। भ्रुवोः भङ्गेन भीमम् अनयोः इदं वक्यं च उद्भटलाञ्छनस्य चन्द्रस्य उद्भ्रातभृङ्गस्य कमलस्य च कान्ति धत्ते।।35।।

शब्दार्थ–क्रोधेन = क्रोध से, उद्धतधूतकुन्तलभरः = केशजाल को बहुत अधिक (जोर से) कम्पित करने वाला, वेपथुः = कम्पन सर्वाङ्गजः = सम्पूर्ण अङ्गों में व्याप्त, हो गया है। तथा कोकनदच्छदस्य = लाल कमल के पत्ते से किञ्चित् सदृशे = कुछ मिलते हुए से, नेत्रे = (इन दोनों के) नेत्र, स्वयं रज्यतः = स्वयं लाल हो गए हैं। च = और, भ्रुवोः = भौहों के, भङ्गेन = टेढ़ी होने से, भीमम् = भयंकर, अनयोः = इन दोनों के, इदं वक्त्रम् = ये मुख, उद्भटलाञ्छनस्य = स्पष्ट रूप से प्रकट कलंक (चिह्न) वाले, चन्द्रस्य = चन्द्रमा के समान तथा, उद्भ्रान्तभृङ्गस्य = ऊपर मँडराते हुए भौरों से व्याप्त, कमलस्य = कमल के समान, कान्ति = शोभा को, धत्ते = धारण कर रहे हैं।

अनुवाद–(सुमन्त्र दोनों कुमारों के कुपित रूप का वर्णन कर रहा है–) क्रोध से केशजाल को अत्यधिक वेग से कम्पित करने वाला कम्पन इनके सम्पूर्ण अङ्गों में व्याप्त हो गया है, तथा, रक्तकमल के पत्र से कुछ मिलते हुए-से इन दोनों के नेत्र स्वयं लाल हो गए हैं, और भौहों के टेढ़ी होने के कारण भयंकर हुए, इन दोनों के ये मुख स्पष्ट रूप से प्रकट कलंक (चिह्न) वाले चन्द्रमा के समान तथा ऊपर मँडराते हुए भ्रमरों से व्याप्त कमल के समान शोभा को धारण कर रहे हैं।

लवः–**कुमार! कुमार! एह्येहि। विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः।**

(इति निस्क्रान्ताः सर्वे।)

लव–कुमार! कुमार! आओ आओ। हम दोनों युद्धोपयोगी मैदान में उतर चलें।

(तदनन्तर सब चले जाते हैं)

इति महाकवि श्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कुमार विक्रमो नाम पञ्चमोऽङ्क।

महाकवि श्री भवभूतिविरचित उत्तररामचरित में कुमार विक्रम नामक पंचम अंक समाप्त।

षष्ठोऽकः

(ततः प्रविशति विमानेनोज्ज्वलं विद्याधरमिथुनम्)

(तदनन्तर विमानासीन तेजः स्वरूप विद्याधर तथा विद्याधरी का युग्म-जोड़ा-प्रवेश करता है)

विद्याधरः—अहो नु खल्वनयोर्विकर्त्तनकुलकुमारयोरकाण्डकलहप्रचण्डयोरुद्द्योतित क्षत्रलक्ष्मीकयोत्यद्भुतोद्भ्रान्त देवासुराणि विक्रान्तविलसितानि। तथाहि प्रिये, पश्य पश्च—

विद्याधर—ओह, सहसा प्रारम्भ हुए युद्ध से उद्दीप्त तथा क्षत्रियों के योग्य शोभा से समन्वित इन दोनों (लव व चन्द्रकेतु) सूर्यवंशी राजकुमारों के पराक्रम पूर्ण कार्यों ने देवों तथा दैत्यों को आश्चर्य से चकित कर दिया है। क्योंकि हे प्रिये! देखो—

झणज्झणितकङ्कणक्वणित किंकणीकं धनु-
र्ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकराल कोलाहलम्
वितत्य किरतोः शरानविरतं पुनः शूरयो-
र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम्।।1।।

अन्वय—झणज्झणित कङ्कणक्वणितकिङ्कणीकं ध्वनद् गुरुगुणाटनी कृतकरालकोलाहलं धनुः वितत्य अविरतं शरान् किरतोः शुरयोः पुनः विचित्रं भुवनभीमम् आयोधनम् अभिवर्तते।।1।।

शब्दार्थ—झणज्झणित = झनझनाते हुए, कङ्कण = कंगनों की भाँति, क्वणित = शब्दायमान, किङ्कणीकम् = किंकिणियों (छोटी-छोटी घण्टियों) वाले, तथा ध्वनद् = शब्द करती हुई, गुरु = सुदृढ़ अथवा विशाल, गुण = मौर्वी (डोरी) और, अटनी = धनुष की (दोनों) नोकों से, कृत = धनुष को, वितत्य = फलाकर, तानकर अविरतम् = लगातार, शरान् = बाणों को, किरतोः = बरसाते अथवा छोड़ते हुए अर्थात् बाण वर्षा करते हुए, शूरयोः = दोनों वीरों का, पुनः = फिर से, विचित्रम् = अद्भुत, (आश्चर्यजनक) और, भुवनभीमम् = संसार के लिए भयजनक, आयोधनम् = सङ्ग्राम, अभिवर्तते = सामने हो रहा है।

अनुवाद—विद्याधर दोनों राजकुमारों के तुमुल = युद्ध का वर्णन कर रहा है

झनझनाते हुए कंगनों की भाँति शब्दायमान किंकिणियों वाले तथा शब्द करती हुई सुदृढ़ (धनुष की-) डोरी और धनुष की नोकों से किए गए भीषण कोलाहल से युक्त धनुष को तानकर लगातार बाणों को बरसाते हुए दोनों वीरों का फिर से अद्‌भुत और संसार के लिए भयजनक सङ्ग्राम सामने हो रहा है।

जृम्भितं च विचित्राय मङ्गलाय द्वयोरपि।
स्तनयित्नोरिवामन्द दुन्दुभेर्दुन्दुभायितम्।।2।।

अन्वय–द्वयोः अपि विचित्राय मङ्गलाय स्तनयित्नोः इव अमन्ददुन्दुभेः दुन्दुभायितं जृम्भितम्।।2।।

शब्दार्थ–द्वयोः अपि–इन दोनों (लव तथा चन्द्रकेतु) के, विचित्राय-अद्‌भुत, मङ्गलाय = मङ्गल (अर्थात् जोश उत्पन्न करने रूपी) शुभ के लिए, स्तनयित्नोः = गर्जना करते हुए मेघ के, इव = समान, अमददुन्दुभेः = बहुत बड़े नगाड़े का, दुन्दुभायितम् = दुम्-दुम् शब्द, जृम्भितम् = उत्पन्न हो गया है।

अनुवाद–(विद्याधर विद्याधरी से युद्ध दुन्दुभि का वर्णन कर रहा है–) इन दोनों लव तथा चन्द्रकेतु के अद्‌भुत (जोश उत्पन्न करने रूपी) शुभ के लिए, गर्जना करते हुए मेघ के समान बहुत बड़े नगाड़े का दुम्-दुम् शब्द (अब) उत्पन्न हो गया है।

इसलिए इन दोनों श्रेष्ठ शूरों के ऊपर अन्तर रहित रूप से घने मिले हुए और खिले हुए स्वर्णकमलों की मनोहर पंक्ति से सुशोभित तथा (पारिजात आदि) देववृक्षों की तेजोमय रतनतुल्य कलिकासमूह के मकरन्द (मधु) से सुन्दर पुष्पवर्षा आरम्भ करो।

विद्याधरी–तत्किमिति पुर आकाशं दुर्दश्रतरलतडिच्छटा कडार-मपरमिव झटिति संवृत्तम् ?

ता किं ति पुरो आ आसं दुद्दंततरल तडिच्छडाकडारं अवरं विअझत्ति संवुत्तं ?

विद्याधरी–तो क्या कारण है कि सामने चकाचौंध उत्पन्न करने वाली चंचल विद्युत्प्रभा के कारण पिंगल वर्ण (लालिमा लिए भूरे रंग) वाला यह आकाश अचानक अनोखा-सा दीख पड़ने लगा है ?

विद्याधरः–तत्कि नु खल्वद्य ?

विद्याधर–तो क्या आज।

त्वष्ट्रयन्त्र भ्रमि भ्रान्त मार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः।
पुटभेदो ललाटस्थ नीललोहित चक्षुषः।।3।।

अन्वय–ललाटस्थ नीललोहित चक्षुषः त्वष्ट्र यन्त्रभ्रमिभ्रान्त मार्तण्ड-ज्योतिरुज्ज्वलः पुटभेदः (संवृत्तः)।

शब्दार्थ–ललाटस्थ = माथे पर विराजमान, नीललोहित = शङ्कर के, चक्षुषः

= नेत्र का, त्वष्ट्र = विश्वकर्मा के, यन्त्र = शाण रूपी यन्त्र (चक्र) पर, भ्रमि = चक्करों से, भ्रान्त = घूमे हुए (अर्थात् शाण यन्त्र पर चढ़ाकर खरादे हुए-से) मार्तण्डसूर्य की, ज्योतिः = ज्योति के तुल्य, उज्ज्वलः = अत्यन्त प्रदीप्त, पुटभेदः = दोनों आवरणों (पलकों) का उद्घाटन (खुलना) हुआ है।

(विद्याधर अचानक रक्त-पीत हुए आकाश के विषय में शङ्कर के तृतीय नेत्र के खुलने का सन्देह प्रकट कर रहा है–)

अनुवाद–मस्तक पर विराजमान शङ्कर के नेत्र के विश्वकर्मा के शाण-रूपी यन्त्र (चक्र) पर चक्करों से घूमे हुए सूर्य की ज्योति के तुल्य अत्यन्त प्रदीप्त-दोनों आवरणों (पलकों) का उद्घाटन हुआ है ? (अर्थात् क्या शिव के तृतीय नेत्र का तेज निकला है)।।3।।

(विचिन्त्य) आं ज्ञातम्। जातक्षीमेण चन्द्रकेतुना प्रयुक्तमप्रतिरूपमाग्नेयमास्त्रम्, यस्यायमग्निवच्छर सम्पातः। संप्रतिहि–

(सोचकर) अच्छा, समझ गया। कुपित चन्द्रकेतु ने अनुपम आग्नेय अस्त्र छोड़ा है, जिससे अग्नि के समान यह बाणों की धारा (निकल रही) है। क्योंकि इस समय–

अवदग्ध कर्बुरितकेतुचामरै–
रपयातमेव हि विमानमण्डलैः।
दहति ध्वजांशुकपटावलीमिमां
नव किंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी।।4।।

अन्वय–अवदग्ध कर्बुरित केतु चामरैः विमानमण्डलैः अपयातम् एव हि। नवकिंशुकद्युति सविभ्रमः शिखी इमां ध्वजांशुकपटावलीं दहति।।4।।

शब्दार्थ–अवदग्ध = कुछ-कुछ जले (हुए) होने के कारण, कर्बुरित = चितकबरे, केतु-पताकाओं, चामरैः = तथा चँवरों वाले, विमान = विमानों के, मण्डलैः = समूह, अपयातम् एव हि = निश्चित रूप से दूर चले गए हैं। नवकिंशुक = नवीन ढाक के फूल की, द्युति = कान्ति के, सविभ्रमः = समान कान्ति वाली, एवं शिखी = लपटों-(ज्वालाओं)–से युक्त अग्नि, इमाम् = इस, ध्वजांशुक = ध्वजों के सूक्ष्म एवं सुन्दर पटावलीम् = वस्त्रों की पंक्ति को, दहति = जला रही है।

(विद्याधर आग्नेशास्त्र द्वारा हो रहे अग्निदाह के दृश्य का वर्णन कर रहा है।)

अनुवाद–कुछ-कुछ जले होने के कारण चितकबरे पताकाओं तथा चँवरों वाले विमानों के समूह (तो) निश्चित रूप से दूर चले (भाग) गए हैं। नवीन ढाक के फूल की कान्ति के समान कान्ति वाली एवं लपटों से युक्त अग्नि इस, ध्वजों के सूक्ष्म एवं सुन्दर वस्त्रों की पंक्ति को जला रही है।

आश्चर्यम्, प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटुरटत्स्फुलिङ्गरूरुत्तालतुमुल-

लेलिहानोज्ज्वलज्ज्वालासंभारभैरवः भगवानुषर्बुधः। प्रचण्डश्चास्य सर्वतः संपातः। तत्प्रियामंशुकेनाच्छाद्य सुदूरमपरामि।

विद्याधरी—दिष्ट्या एतेन विमल मुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृणमांसलेन नाथ देहस्पर्शेनानन्द संदलित धूर्णमानवेद नाया अर्धोदित एवान्तरितो मे सन्तापः। (दिट्ठिआएदेण विमलमुतासेअसीअलसिणि-द्धमसिणमंसलेणणाहदेहप्पंसेण आणंदसंदलिदघुष्णमाणवेअणाए अद्धोदिदो एव्व अंदरिदो मे संदावो।)

विद्याधरः—अयि, किमत्र मया कृतम् ? अथवा—

आश्चर्य की बात है कि अलिभयङ्कर वज्रखण्डों (चट्टानों) के विदारण में समर्थ और धू-धू शब्दकारी धधकती हुई चिनगारियों के कारण विशाल तथा भीषण रूप से लप-लप कर निगलती हुई अति प्रदीप्त ज्वालाओं के समूह से भयावह भगवान् अग्नि देव प्रकट ही हो गए हैं। इनका चारों ओर अति वेग पूर्वक प्रसार हो रहा है। इसलिए अपनी प्रियतमा (विद्याधरी) को रेशमी वस्त्र से आच्छादित कर बहुत दूर ले चलता हूँ।

(ऐसा ही करता है)

विद्याधरी—भाग्यवश पतिदेव के इस विमल मुक्ता-गिरि के समान शीतल, चिकने, कोमल तथा सुपुष्ट (मांसल) शरीर के स्पर्श से उत्पन्न आनन्द द्वारा (मेरी बढ़ती हुई पीड़ा समाप्त हो जाने से मेरा सन्ताप अधूरा उत्पन्न होते ही शान्त हो गया है।

विद्याधरी—अरी, इसमें मैंने क्या किया ? अथवा—

विद्याधरी—कथम विरल विलोलघूर्णमानविद्युल्लता विलास मांसलैर्मत्तमयूरकण्ठ-श्यामलैरवस्तीर्यते नभोऽङ्गणं जलधरैः ?

(कहं अविरलविलोल घुष्णमाणविज्जुल्लदाविलास मंसलेहिं मत्तमोर कण्ठ सामनेहिं ओत्थरी अदि णभोगणं जल हरेहिं ?)

विद्याधरः—हन्त, कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभावः खल्वेषः। कथसविरल प्रवृवारिधारासंपातैः प्रशान्तमेव पावकास्त्रम् ?

विद्याधरी—प्रियं मे, प्रियं मे। (पिअं मे, पिअं मे।)

विद्याधरः—हन्त भोः! सर्वमतिमात्रं दोषाय यत्प्रलयबातोत्क्षो भगम्भीरगलुगुलायमान मेघमेदुरितान्धकारनीन्ध्र मद्धमिव एकबार विश्वग्रसन 'विकटविकरालकाल मुखकन्दर विवर्तमानमिव युगान्त योग निद्रानिरुद्ध सर्वद्धारं नारायणोदरनिविष्टमिवभूतं विपद्यते। साधू चन्द्रकेतो! साधु! स्थाने वायव्यमस्त्रमीरितम्! यतः—

विद्याधरी—अविराम चपल तथा (चारों ओर) घूमती हुई बिजली की कौंध से

पुष्ट और मस्त मोरों के कण्ठ के समान श्यामवर्ण मेघों द्वारा आकाशरूपी आँगन क्यों व्याप्त हो रहा है ?

विद्याधर–अहा, यह कुमार लव के द्वारा प्रयोग किए गये वारुणास्त्र का प्रभाव है ? क्या कारण है कि निरन्तर उत्पन्न होने वाली मूसलाधार जलधाराओं से आग्नेयास्त्र बिल्कुल ही शान्त हो गया है ?

विद्याधरी–(अहा! भीषण आग्नेयअस्त्र की शान्ति) मुझे प्रिय है, मुझे प्रिय है।

विद्याधर–हाय रे! 'अति' सभी वस्तुओं की अनिष्ट करने वाली होती है। क्योंकि प्रलयकालीन पवन से विक्षुब्ध होने से गम्भीर एवं गुलगुल (गड़-गड़) शब्द करने वाले बादलों के घोर अन्धकार से बँधे हुए की तरह, एक ही बार में समस्त संसार को निगल लेने के लिए विकराल रूप से फैलाए हुए अति भयजनक यमराज के गुफा-तुल्य मुख में तड़फड़ाता हुआ सा तथा प्रलयकालीन योगनिद्रा में अपने शरीर के सभी (अङ्गों के) द्वारों को बन्द कर लेने वाले भगवान विष्णु के उदर में पड़ा हुआ-सा प्राणिसमूह विपत्ति-ग्रस्त हो रहा है। शाबाश चन्द्रकेतु शाबाश! तुमने ठीक समय पर वायव्य-अस्त्र का प्रयोग किया है। क्योंकि–

विद्या कल्पेन मरुता, मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां, क्वापि प्रविलयः कृतः।।6।।

अन्वय–विद्याकल्पेन मरुता भूयसाम् अपि मेघानां विवर्तानां ब्रह्मणि इव क्वापि प्रविलयः कृतः।।6।।

शब्दार्थ–विद्या = तत्त्वज्ञान, कल्पेन = समान, मरुता = वायव्यास्त्र से उत्पन्न वायु के द्वारा, भूयसाम् = बहुत से, अगणित, मेघानाम् अपि = मेघों को भी, विवर्तानाम् = नाम रूप स्वरूप संसार के प्रपञ्चों का, ब्रह्मणि इव = जिस प्रकार ब्रह्म में, क्वापि = कहीं, प्रविलयः = विनाश (लोप) कृतः = कर दिया।

अनुवाद–(विद्याधर वायव्यअस्त्र द्वारा मेघों के विनाश का वर्णन कर रहा है) जैसे तत्त्वज्ञान से विवर्तों (घट, पट आदि कल्पित नाम रूपात्मक सांसारिक प्रपञ्चों) का ब्रह्म में लय हो जाता है, वैसे ही (वायव्यास्त्र से उत्पन्न) वायु द्वारा अगणित मेघों का कहीं लोप कर दिया गया है।

विद्याधरी–नाथ! क इदानीमेष ससंभ्रमोत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तरीयाञ्चलो दूरत एव मधुरस्निग्ध वचनप्रतिषिद्धयुद्ध व्यापार एतयोरन्तरे विमानवरमवतारयति ? (णाध! को दाणिं एसो ससंभमोक्खित्त करम्भमदुत्तरोअंचलो दूरदो एव्व महुरसिणिद्ध वअण पडिसिद्धजुद्ध व्वावारो एदाणं अंदरे विमाणवरं ओदरावेदि ?)

विद्याधरः–(दृष्ट्वा।) एष शम्बूकवधात्प्रतिनिवृत्तो रघुपतिः।

विद्याधरी–नाथ! इस समय यह कौन शीघ्रता पूर्वक उठाए हुए हाथ से दुपट्टे

के सिरे को हिलाकर दूर से ही मधुर एवं स्नेह भरे वचनों द्वारा युद्ध-कार्य को रोक कर इन दोनों (लव तथा चन्द्रकेतु) के बीच में अपने श्रेष्ठ पुष्पक विमान को उतार रहा है ?

विद्याधर–(देखकर) ये तो शम्बूक का वध करके लौटे हुए रामचन्द्र हैं।

शान्तं महापुरुष संगदितं निशम्य,
तद्गौरवात्समुसंहृतसंप्रहारः।
शान्तो जवः प्रणत एव च चन्द्रकेतुः,
कल्याणमस्तु सुतसंगमनेनराज्ञः।।7।।
तदितस्तावदेहि। (इतिनिष्क्रान्तौ।)

विष्कम्भकः।

अन्वय–शान्तं महापुरुष संगदितं निशम्य तद् गौरवात् समुपसंहृत संप्रहारः लवः शान्तः, चन्द्रकेतुः च प्रणत एव, सुतसंगमनेन राज्ञः कल्याणस् अस्तु।।7।।

शब्दार्थ–शान्तम् = शान्तियुक्त, महापुरुष = महामानव राम के, संगादितम् = वचन को, निशम्य = सुनकर, तद् = उनके, (प्रति) गौरवात् = आदर-भाव (रहने) के कारण, समुपसंहृत = रोक लिया है, संप्रहारः = आक्रमण या युद्ध जिसने, ऐसा, लवः = कुमार लव, शान्तः = शान्त हो गया है, चन्द्रकेतुः च = और चन्द्रकेतु (तो राम के प्रति), प्रणत एव = नतमस्तक ही हो गया है। (इस प्रकार), सुत संगमनेन = अपने पुत्रों (कुश और लव) के समागम से, राज्ञः = महाराज (राम) का, कल्याणम् अस्तु = मंगल हो।

(विद्याधर राम की आज्ञा से लव और चन्द्रकेतु के युद्ध विराम का वर्णन कर रहा है)

अनुवाद–महापुरुष (राम) के शान्तिपूर्ण वाक्यों को सुनकर उनके प्रति आदर-भाव के कारण युद्ध का परित्याग कर लव शान्त हो गया है, और चन्द्रकेतु तो राम के प्रति नतमस्तक ही हो गया है। इस प्रकार अपने पुत्रों के समागम से महाराज राम का कल्याण हो।

इसलिए इधर से आओ

(दोनों का बहिर्गमन)

(ततः प्रविशति रामो लवः प्रणतश्चन्द्रकेतुश्च)

(तदनन्तर राम, लव तथा नतमस्तक चन्द्रकेतु का प्रवेश)

रामः–(पुष्पकादवतरन्।)

राम–(पुष्पकविमान से उतरते हुए)

दिनकर कुलचन्द्र! चन्द्रकेतो! सरभसमेहि दृढं परिष्वजस्व।
तुहिन शकलशीतलैस्तवाङ्गैः राममुपयातुममापिचित्तदाहः।।8।।

अन्वय–दिनकरकुलचन्द्र चन्द्रकेतो, सरभसम् एहि, दृढं परिष्वजस्व। तुहिनशकल शीतलैः तव अङ्गैः मम चित्तदाहः अपि शमम् उपयातु।।8।।

शब्दार्थ–अवतरन् = उतरते हुए, दिनकर = सूर्य, कुल वंश के, चन्द्र = चन्द्रमा अर्थात् आह्लादक, चन्द्रकेतो = चन्द्रकेतु (तुम) सरभसम् = शीघ्र, एहि = आओ, (तथा) शकल = खण्ड के तुल्य, शीतलैः = शीतल, तव = तुम्हारे, अङ्गैः = अङ्गों (के स्पर्श) से, मम = मेरे, चित्तदाहः = उर का सन्ताप, अपि = भी, शमम् = शान्ति अर्थात् विनाश को, उपयातु = प्राप्त हो।

अनुवाद–(राम चन्द्रकेतु को आलिङ्गन हेतु बुला रहे हैं–) हे सूर्यवंश के चन्द्रमा (आह्लादक) चन्द्रकेतु तुम शीघ्र आओ तथा (मुझसे) गाढ़ा (आलिङ्गन करो) हिमखण्ड के समान शीतल तुम्हारे अङ्गों (के स्पर्श) से मेरे डर का सन्ताप भी विनष्ट हो जावे।

(उत्थाप्य सस्नेहास्त्रं परिष्वज्य) अप्यनामयं नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य तव ?

चन्द्रकेतुः–कुशलमत्यद्भुत प्रियवयस्यलाभाभ्युनयेन। तद्विज्ञापयामि मामिवाविशेषेण स्निग्धेन चक्षुषा पश्यत्वमु वीरमनरालसाहसं तातः।

रामः–(लवं निरूप्य।) दिष्ट्या अतिगम्भीर मधुर कल्याणा कृतिरयं वयस्यो वत्सस्य।

(उठाकर स्नेह तथा स्नेहोत्पन्न आँसुओं के साथ आलिङ्गन करके) दिव्य अस्त्रों द्वारा (सर्वथा) नूतन युद्ध करने वाले तुम स्वस्थ तो हो न ?

चन्द्रकेतु–अति आश्चर्यजनक प्रियसखा के लाभरूपी अभ्युदय (भाग्योदय) से (मेरी) कुशल है। अतः निवेदन करता हूँ, कि पिताजी आप कुटिलता से शून्य (उद्दाम) साहस से पूर्ण इस वीर को मेरे ही समान विशेष स्नेहभरी दृष्टि से देखें।

राम–(लव को विशिष्ट दृष्टि से देखकर) यह सौभाग्य है, कि तुम्हारे इस मित्र की आकृति अत्यन्त गम्भीर, सुन्दर तथा शुभ करने वाली है।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः,
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदयः, संचयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्य निर्माणराशिः।।9।।

अन्वय–लोकान त्रातुम् अस्त्रवेदः कायवान परिणतः इव, ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै क्षात्रः धर्मः तनुं श्रितः इव, सामर्थ्यानां समुदयः इव, गुणानां सञ्चयः वा जगत्पुण्य निर्माणराशिः आविर्भूय स्थितः इव।।9।।

शब्दार्थ–लोकान = लोकों की, त्रतुम् = रक्षा करने के लिए, अस्त्रवेद = (मानो) धनुर्वेद ही, कायवान् = शरीर धारी, परिणतः इव = (बनकर) प्रकट हुआ है। ब्रह्मकोशस्य = वेद रूपी कोश की, गुप्त्यै = रक्षा के लिए, क्षात्रः = क्षत्रिय जाति के, धर्मः = धर्म ने, तनुं श्रित = शरीर धारण किया है। सामर्थ्या-नाम् =

शक्तियों का (मानो) समुदयः = समुदाय अथवा विकास है, गुणानाम् = गुणों का (मानों), सञ्चयः = पुञ्ज है, वा = अथवा, जगत् संसार के-पुण्य-निर्माण = पुण्यों (सुकर्मों) के फलों का, राशि = समूह ही, आविर्भूय = शरीर को धारण करके। स्थितः इव = मानो विद्यमान है।

अनुवाद–श्री राम, लव के अद्‌भुत एवं प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन कर रहे हैं–) लोकों की रक्षा करने के लिए मानो धनुर्वेद ही (स्वयं) शरीरधारी बनकर प्रकट हुआ है। वेदरूपी (महा) कोश की रक्षा के लिए मानो (साक्षात्) क्षत्रिय धर्म ने ही शरीर ग्रहण कर लिया है। यह शक्तियों का मानो समुदाय अथवा विकास है, अथवा संसार के पुण्यों के फलों का समूह ही शरीर को धारण करके मानो विद्यमान है।

लवः–(स्वगतम्) अहो! पुण्यानुभाव दर्शनोऽयं महापुरुषः।
आश्वासस्नेह भक्तीनामेकमायतनं महत!।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः।।10।।

अन्वय–आश्वासस्नेह भक्तीनाम् एकं महत् आयतनम्। प्रकृष्टस्य धर्मस्य मूर्तिसुन्दरः प्रसादः इव।।10।।

शब्दार्थ–आश्वास = विश्वास (भरोसा), स्नेह = प्रेम, तथा भक्तीनाम् = भक्ति के, एकम् = एकमात्र (अद्वितीय, अनन्य) महत् = महान्, आयतनम् = आधार (आश्रय या घर) हैं। (तथा) प्रकृष्टस्य = उत्कृष्ट (उच्चकोटि के, आदर्श) धर्मस्य = धर्म के (मानो) मूर्तिसुन्दरः आकृति (मूर्ति, या शरीर) से सुन्दर, प्रसादः इव = प्रसन्न रूप अथवा विकसित स्वरूप ही हैं।

लव–(अपने मन ही मन) ओह! इस महापुरुष के दर्शन तथा प्रभाव दोनों ही पवित्र हैं।

अनुवाद–(लव मन ही मन राम के महाप्रभावशाली व्यक्तित्व की प्रशंसा कर रहा है–) विश्वास-(-प्रात्रता) प्रेम तथा भक्ति के एकमात्र महान आधार हैं। तथा उत्कृष्ट धर्म के मानो आकृति से सुन्दर (सुन्दर शरीर युक्त) प्रसन्न रूप (ही) हैं।

आश्चर्यम्!--विरोधी विश्रान्तः, प्रसरतिरसो निर्वृतिघन–
स्तदोद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः, प्रह्वयतिमाम्।
झटित्यस्मिन्दृष्टे किमिति परवानस्मि यदि वा,
महार्धस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।11।।

अन्वय–विरोधः विश्रान्तः, निर्वृतिघनः रसः प्रसरति, तत् औद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः मां प्रह्वयति, किमिति अस्मिन् दृष्टे परवान् अस्मि। यदि वा हि तीर्थानाम् इव महतां कः अपि महार्घः अतिशयः (भवति)।।11।।

शब्दार्थ–विरोधः = विरोध (वैर), विश्रान्तः = शान्त हो गया है, निर्वृति =

आनन्द के, घनः = अतिशय से युक्त, रसः = स्नेह रस (प्रेमरस), प्रसरति = व्याप्त हो रहा है। तत् = वह (युद्धकालिक) औद्धत्यम् = धृष्टता अथवा गर्व से उत्पन्न चंचलता, क्वापि = कहीं, व्रजति = जा रही है अर्थात् लुप्त हो गई। विनयः = नम्रता, माम् = मुझे (लव को), प्रह्वयति = विनम्र बना रही है, किमिति = न जाने क्यों (अथवा क्या कारण है, जिससे), अस्मिन् = इस महानुभाव को, दृष्टे = देखते ही मैं, परवान् = पराधीन, अस्मि = हो गया हूँ। यदि वा = अथवा, हि = क्योंकि, तीर्थानाम् = तीर्थस्थानों के, एव = समान, महताम् = महान् पुरुषों में, कः अपि = कोई अनोखा (अकथनीय), महार्घः = बहुमूल्य (मूल्याङ्कन से परे) अतिशयः = (वैयक्तिक) उत्कर्ष होता है, (जिसके प्रभाव से मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है)।

(लव सहसा बिल्कुल बदल गई हुई अपनी स्थिति का वर्णन कर रहा है—)

अनुवाद—आश्चर्य (की बात) है कि—वैर शान्त हो गया है, आनन्द की अधिकता से युक्त प्रेमरत (मेरे हृदय में) व्याप्त हो रहा है, वह युद्धकाल की धृष्टता कहीं लुप्त हो गई है। नम्रता मुझ (लव) को विनम्र बना रही है। और (न जाने) क्या कारण है कि इस महानुभाव को देखते ही मैं पराधीन (इनके अधीन) हो गया हूँ। अथवा क्योंकि तीर्थस्थानों के समान महापुरुषों में (भी) कोई अनोखा बहुमूल्य (वैयक्तिक) उत्कर्ष होता है, (जिसके प्रभाववश मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है।)

रामः—तत्किमयमेकपद एवमे दुःखविश्रामंददात्युपस्नेहयति च कृतोऽपि निमित्तादन्तरात्मानम् अथवा स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत्।

राम—क्यों यह बालक (लव) सहसा मेरे दुःख को समाप्त कर रहा है, तथा किसी (अज्ञात) कारण से मेरी अन्तरात्मा को अनुराग रस से सिक्त कर रहा है ? अथवा 'स्नेह कारण की अपेक्षा रखता है' यह (लोक) कथन असंगत है। (वस्तुतः स्नेह किसी हेतु की अपेक्षा किए बिना स्वयं ही हो जाती है)।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिंरूपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदितेपुण्डरीकं,
द्रवति च हिमरश्यावुद्गते चन्द्रकान्तः।।12।।

अन्वय—आन्तरः कोऽपि हेतुः पदार्थान् व्यतिषजति, प्रीतयः बहिरुपाधीन खलु न संश्रयन्ते। हि पतङ्गस्य उदये पुण्डरीकंविकसति, च हिमरश्मौ उद्गते चन्द्रकान्तः द्रवति।।12।।

शब्दार्थ—आन्तरः = आन्तरिक, कोऽपि = कोई अज्ञात कारण, पदार्थान् = पदार्थों को, व्यतिषजति = परस्पर मिलाता है, (किंतु) प्रीतयः—प्रीति, बहिरुपाधीन् = बाहरी साधनों का, खलु = निश्चय ही, न = नहीं, संश्रयन्ते = आश्रय लेते हैं, हिं = क्योंकि, पतङ्गस्य = सूर्य के, उदये = उदित होने पर, पुण्डरीकम् = कमल,

विकसित = खिलता है, च = और, हिमरश्मौ = चन्द्रमा के, उद्गते = उदय होने पर, चन्द्रकान्तः = चन्द्रकान्तमणि, द्रवति = पिघलती है।

अनुवाद–(राम, लव के प्रति अपने आकस्मिक स्नेह की स्वाभाविकता को प्रमाणित करते हुए कहते हैं–) कोई आन्तरिक अज्ञात कारण पदार्थों को परस्पर मिलाता है, किंतु प्रीति निश्चय ही बाहरी साधनों की आवश्यकता नहीं रखती है। क्योंकि सूर्य के उदय होने पर चन्द्रकान्तमणि पिघलती है।

लवः–चन्द्रकेतो! क एते ?

लव–चन्द्रकेतु ये कौन हैं ?

चन्द्रकेतुः–प्रियवयस्य, ननु तातपादाः।

चन्द्रकेतु–प्रिय मित्र! ये पूज्य पिता जी हैं।

लवः–ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव, यतः प्रियवयस्येति भवतोक्तम्। किंतु चत्वारः किल भवन्त्येवं व्यपदेशभागिनस्तत्रभवन्तो रामायणकथा पुरुषाः। तद्विशेषं ब्रूहि।

लव–तो मेरे भी ये धर्म से पिता हैं, क्योंकि (मुझे) आपने 'प्रियमित्र' कहा है। किंतु इसी प्रकार शब्द से व्यवहार (नामोच्चारण) के योग्य, रामायण कथा के मुख्य पात्र चार पूज्य व्यक्ति आपके पिता हैं, अतः आप विशेष रूप से इनका परिचय बताइए।

चन्द्रकेतुः–ज्येष्ठतात इत्यवेहि।

चन्द्रकेतु–इन्हें आप (मेरे) ज्येष्ठ पिता जी समझिए।

लवः–(सोल्लासम्) कथं रघुनाथ एव ? दिष्ट्या सुप्रभातमद्य यदयं देवो दृष्टः। (सविनयं निर्वर्ण्य) तात, प्राचेतसान्ते वासी लवोऽभिवादयते।

लव–(आनन्दित होकर) क्या ये (श्री) रघुनाथ ही हैं ? सौभाग्य से आज (मेरा) यह सुप्रभात (शुभ दिन) है, जो इन महापुरुष के दर्शन प्राप्त हुए हैं। (नम्रतापूर्वक ध्यान से देखकर) तात! महर्षि बाल्मीकि का शिष्य लव (आपको) प्रणाम करता है।

रामः–आयुष्मन्, एह्येहि। (इति सस्नेहमालिङ्ग्य) अयि वत्स, कृतमत्यन्तविनयेन। अङ्गेन मामपरिश्लयं परिरम्भस्व।

राम–आयुष्मन्, आओ-आओ। (यह कहते हुए सप्रेम आलिङ्गन करके) हे वत्स, बहुत अधिक नम्रता (प्रदर्शित करने) की आवश्यकता नहीं है। अपने शरीर से दृढ़ता पूर्वक मेरा आलिङ्गन करो।

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः।।13।।

अन्वय–परिणत कठोर पुष्कर गर्भच्छद पीतमसृण सुकुमारः। चन्द्रचन्दन निष्यन्द जडः तव स्पर्शः नन्दयति।।13।।

शब्दार्थ–परिणत = विकास को प्राप्त, कठोर = पूर्ण अङ्गों वाला, पुष्कर = कमल के, गर्भ = भीतर के, छद = पत्र के, इव = तुल्य, पीन = पुष्ट, मसृण = चिकने, तथा सुकुमार = कोमल, चन्द्र = चन्द्रमा, चन्दन = मलयज के, निष्यन्द = रस (द्रव) के समान, जडः = शीतल, तव = तुम्हारा (लव का), स्पर्शः = स्पर्श नन्दयति = प्रसनन अथवा आह्लादित करता है।

अनुवाद–(रामचन्द्रजी लव के शरीर-स्पर्श से प्राप्त होने वाले आनन्द का वर्णन कर रहे हैं) विकास को प्राप्त हुए तथा परिपूर्ण अंगों वाले (भरे पूरे) कमल के भीतरी पत्र के समान पुष्ट चिकने तथा कोमल, और चन्द्रमा तथा मलयज रस के समान शीतल तुम्हारा (लव का शारीरिक) स्पर्श (मुझे-राम को) आह्लादित कर रहा है।

लवः–(स्वगतम्) ईदृशो मां प्रत्यमीषामकारणस्नेहः। मया पुनरेभ्य एव द्रोग्धुमज्ञेनायुधपरिग्रहः कृतः। (प्रकाशम्) मृष्यन्तां त्विदानीं लवस्य बालिशतां तातपादाः।

लव–(मन में) इनका मेरे प्रति ऐसा अकारण स्नेह है, किंतु मुझ मूर्ख ने (तो) इनसे ही द्रोह करने के लिए हथियार उठाया था। (प्रकट) अब पूज्य पिता जी आप लव की मूर्खता को क्षमा करें।

रामः–किमपराद्धं वत्सेन ?

राम–बच्चे ने क्या अपराध कर दिया ?

चन्द्रकेतुः–अश्वानुयात्रिकेभ्यस्तातप्रतापाविष्करण-मुपश्रुत्य वीरायितमनेन।

चन्द्रकेतु–(यज्ञ संबंधी) अश्व के अनुगामी रक्षकों से आपके पराक्रम की घोषणा को सुनकर इसने वीर के समान आचरण किया है।

रामः–नन्वयमलङ्कारः क्षत्रियस्य।

राम–यह तो क्षत्रिय का आभूषण (ही) है।

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिकृतकत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति।।14।।

अन्वय–तेजस्वी अपरेषां प्रसृतं तेजः न विषहते, सः प्रकृति नियतत्त्वात् तस्य अकृतकः स्वः भावः। यदि देवः दिनकरः मयूखैः अधान्तं तपति, किम् आग्नेयः ग्रावा निकृतः इव तेजांसि वमति ?।।14।।

शब्दार्थ–तेजस्वी = तेजस्वी पुरुष, अपरेषाम् = दूसरों के, प्रसृतम् = फैले हुए, तेजः = तेज को, न = नहीं, विषहते = सहन करता है, (क्योंकि), सः = वह (असहिष्णुता) प्रकृति नियतत्वात् = प्रकृति-नियन्त्रित अथवा प्रकृति-प्राप्त होने से, तस्य = उसका, अकृतकः = स्वाभाविक, स्वः भावः = अपना जन्मसिद्ध स्वभाव

है। यदि देवः दिनकरः = यदि भगवान् सूर्य, मयूखैः = किरणों से, अश्रान्तम् = अविराम (बिना विश्राम किए) तपति = तपते हैं, तो किम् = किस कारण से, आग्नेयः अग्नि से सम्बन्धित, (अग्नि-उत्पादक) ग्रावा = पाषाण, अर्थात् सूर्य-कान्तमणि, निकृतः इव = अपमानित सी होकर, तेजांसि = अग्नि को, वमति = उगलती है ?।।14।।

अनुवाद–(रामचन्द्र जी लव के वीरोचित आचरण की पुष्टि करते हैं–) तेजस्वी पुरुष दूसरों के फैले हुए तेज को नहीं सहन करता है, क्योंकि वह (असहिष्णुता) प्रकृति प्राप्त होने से उसका अपना जन्मसिद्ध स्वभाव है। यदि भगवान् सूर्य किरणों से अविराम तपते हैं, तो (फिर किस कारणवश सूर्यकान्तमणि अपमानित सी होकर अग्नि को उगलती है ?।।14।।

चन्द्रकेतुः–अमर्षोऽप्यस्यैव शोभते महावीरस्य। पश्यन्तु हि तातपादाः। प्रियवयस्यनियुक्तेन जृम्भकास्त्रेण विक्रम्य स्तम्भितानि सर्वसैन्यानि।

चन्द्रकेतु–असहनशीलता भी इसी महान् वीर को शोभा प्रदान करती है। पिता जी, देखिए, प्रिय मित्र के छोड़े हुए जृम्भकास्त्र ने पराक्रम प्रदर्शित कर समस्त सेना को निश्चेष्ट (जड़) कर डाला है।

रामः–(सविस्मयखेदं निर्वर्ण्य, स्वगतम्) अहो, वत्सस्य ईदृशः प्रभावः। (प्रकाशम्) वत्स, संहृयतामस्त्रम्। त्वमपि चन्द्रकेतो, निर्व्यापारतया विलक्षाणि सान्त्वय बलानि।

(लवः प्रणिधानं नाटयति)

राम–(अचरज और खेद के साथ निहार कर मन में) ओह, वत्स का ऐसा प्रभाव है ? (प्रकट) वत्स! (अब) अस्त्र को लौटा लो। हे चन्द्रकेतु, (और) तुम भी निष्क्रियता (निकम्मापना) के कारण (अपनी दशा पर) आश्चर्यचकित सैनिकों को ढाढस बँधाओ।

(लव ध्यान लगाने का अभिनय करता है)

चन्द्रकेतुः–यथा निर्दिष्टम्।

(इतिनिष्क्रान्तः)

चन्द्रकेतु–(पूज्य पिता जी की) जैसी आज्ञा।

(यह कहकर प्रस्थान करता है)

लवः–तात, प्रशान्तमस्त्रम्।

लव–तात! (जृम्भक) अस्त्र (अब) शान्त हो गया है।

रामः–सरहस्यप्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि दिष्ट्या वत्सस्यापि संपद्यन्ते।

राम–सौभाग्य है कि वत्स को भी प्रयोग तथा संहार के गोपनीय मन्त्र सहित जृम्भक अस्त्र (यथाविधि) प्राप्त हैं।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा
परः सहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन्गुरवः पुराणाः
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।।15।।

अन्वय–ब्रह्मादयः पुराणाः गुरवः ब्रह्महिताय परः सहस्र शरदः तपांसि तप्त्वा स्वानि एव तपोमयानि तेजांसि एतानि अपश्यन्।।15।।

(इस श्लोक की शेष व्याख्या आदि के लिए देखें–प्रथम अंक 15 वाँ श्लोक)

अथैतामस्त्रमन्त्रोपनिषदं भगवान्कृशाश्वः परः सहस्राधिकसंवत्सर परिचर्यानिरतायान्ते वासिने कौशिकाय प्रोवाच। स भगवान्मह्यमिति गुरुपूर्वानुक्रमः। कुमारस्य कुतः सम्प्रदाय इति पृच्छामि।

इस जृम्भकास्त्र की मन्त्रमयी गोपनीय विद्या को भगवान् कृशाश्व ने सहस्रों वर्षों से भी अधिक काल तक सेवा में निरत रहने वाले अपने शिष्य महर्षि विश्वामित्र को बताया था। भगवान् विश्वामित्र ने मुझे उसका उपदेश किया था। इस प्रकार यह इन अस्त्रों की प्राप्ति का गुरु-परम्परा से प्राप्त क्रम है। कुमार (लव) को किस गुरु-परम्पराक्रम से ये अस्त्र प्राप्त हुए हैं ?–यह मैं पूछता हूँ।

लवः–स्वतः प्रकाशान्यावयोरस्त्राणि।

लव–हम दोनों को ये अस्त्र अपने आप प्रतिभा-प्राप्त हैं।

रामः–(विचिन्त्य) किं न सम्भाव्यते। प्रकृष्ट-पुण्योपादानकः–कोऽपि महिमा स्यात्। द्विवचनं तु कथम् ?

राम–(सोचकर) क्या नहीं हो सकता है ? उच्चकोटि के पुण्य से उत्पन्न यह कोई (अपूर्व) महिमा सम्भव है (जिसके प्रभाव से इन्हें ये अस्त्र स्वतः प्राप्त हैं। किंतु यह द्विवचन (आवयोः) का प्रयोग क्यों किया गया है ?

लवः–भ्रातरावावां यमौ।

लव–हम दो जुड़वाँ भाई हैं ?

रामः–स तर्हि द्वितीयः क्व ?

राम–तो वह (तुम्हारा) दूसरा (भ्राता) कहाँ है ?

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

दण्डायन,

हे दण्डायन!

आयुष्मतः किल लवस्य नरेन्द्र सैन्यै–
रायोधनं ननु किमात्थ सखे! तथेति।

अद्यास्तमेतु भुवनेषु च राजशब्दः
क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शम मद्य यान्तु।।16।।

अन्वय–ननु आयुष्मतः लवस्य नरेन्द्र सैन्यः आयोधनं किल ? (हे) सखे! किम् आत्य, तथा इति ? अद्य भुवनेषु राजशब्दः अस्तम् एतु। अद्य क्षत्रस्य शस्त्र शिखिनः शमं यान्तु।।16।।

शब्दार्थ–ननु = क्या, आयुष्मतः = चिरंजीव, लवस्य = लव का, नरेन्द्र = महाराज रामचन्द्र, के, सैन्यैः = सैनिकों के साथ, आयोधनं किल = युद्ध प्रारम्भ हो गया है ?, हे सखे = हे मित्र! किम् = क्या, आत्थ = कहा, तथा इति = कि युद्ध प्रारम्भ है ? (यदि यह सत्य है तो) अद्य = आज, भुवनेषु = संसार में, राजशब्दः = 'राजा' शब्द, अस्तम् = लोप को, एतु = प्राप्त हो जाए, अर्थात् लुप्त हो जाएगा। और अद्य = आज, क्षत्रस्य = क्षत्रिय (जाति) की, शस्त्रशिखिनः = शस्त्र रूपी अग्नि, शमं यान्तु = शान्त हो जाए, अर्थात् बुझ जाएगी।

अनुवाद–(नेपथ्य से कुश, राम के सैनिकों के प्रति, अपना वीरत्व-दर्प मौखिक रूप से प्रकट कर रहा है–) क्या चिरंजीव लव का महाराज रामचन्द्र के सैनिकों के साथ युद्ध प्रारम्भ हो गया है ? हे मित्र! क्या कहा कि 'युद्ध प्रारम्भ है' (यदि यह सत्य है तो) आज संसार में 'राजा' शब्द लुप्त हो जाएगा और क्षत्रिय जाति की शस्त्ररूपी अग्नि बुझ जाएगी।

रामः–अथ कोऽय मिन्द्रमणिमेचकच्छवि–
र्ध्वनि नैव बद्ध्‌ध पुलकं करोति माम्।
नवनील नीरधर धीर गर्जित–
क्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम्।।17।।

अन्वय–अथ इन्द्रमणिमेचकच्छविः अयं कः ध्वनिना एव मां नवनील-नीरधरधीरगर्जित क्षणबद्‌ध कुड्मलकदम्बडम्बरं बद्‌धपुलकं करोति।।17।।

शब्दार्थ–अथ इन्द्रनीलमणि = इन्द्रनीलमणि के समान, मेचकच्छविः = श्यामवर्ण वाला, अयम् = यह, कः = कौन, अपनी ध्वनिना = ध्वनि से, एव = ही, माम् = मुझको (राम को) नव-नवीन, नील = नीले, नीरधर = मेघ के, धीर = गम्भीर, गर्जित = गर्जन के, क्षण = समय, (या आनन्द से) बद्‌ध = विकसित, कुड्मल = कलियों से युक्त, कदम्ब = कदम्ब वृक्ष के, डम्बरम् = तुल्य, वद्‌धपुलकम् = रोमाञ्चित, करोति = कर रहा है।

अनुवाद–(रामचन्द्रजी लव के दर्शन से अपने रोमांचित होने का वर्णन कर रहे हैं) राम-इन्द्रनीलमणि के समान साँवले रंग वाला यह कौन (बालक अपनी) ध्वनि (मात्र) से ही मुझ (राम) को, नवीन एवं नीलवर्ण मेघ के गम्भीर गर्जन के समय

(अथवा आनन्द से) विकसित (कदम्ब) कलियों से युक्त कदम्ब वृक्ष के समान रोमांचित कर रहा है।

लवः–अयमसौममज्यायानार्यः कुशोनाम भरताश्रमात्प्रतिनिवृत्तः।

लव–ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता आर्य कुश हैं, (जो) भरतमुनि के आश्रम से लौटे हैं।

रामः–(सकौतुकम्) तर्हि वत्स, इत सवैतमाह्वयायुष्मन्तम्।

राम–(कौतूहलपूर्वक) तब तो हे वत्स, इस आयुष्मान् को इधर ही बुलाओ।

लवः–यदाज्ञापयति।

लव–आपकी जो आज्ञा।

(इति निष्क्रान्तः)

(यह कहकर निकल जाता है।)

(ततः प्रविशति कुशः)

(तदन्तर कुश प्रविष्ट होता है)

कुशः–(सक्रोधं कृतधैर्य धनु रास्फाल्य,)

(कोप सहित तथा धैर्य पूर्वक धनुष्टङ्कार करके)

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो–
र्दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृ पतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः।।18।।

(विकटं परिक्रामति)

अन्वय–भगवतः वैवस्वतात् मनोः आ दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः आदित्यैः नृपतिभिः यदि विग्रहः ततः दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं मम् एतद् धनुः धन्यम्।।18।।

शब्दार्थ–भगवतः = ऐश्वर्यवान्, वैवस्वतात् = वैवस्वत, मनोः = मनु से, आ = लेकर (आरम्भ कर) आज तक, दत्ता = दी गई है, इन्द्र = इन्द्र को, अभय = अभयदान रूपी, दक्षिणैः = दक्षिणा जिनके द्वारा, ऐसे तथा, दृप्तानाम् = घमण्डियों के, दमनाय = दमन करने के लिए, दीपिता = प्रदीप्त की गई है, निज = अपनी, क्षत्र = क्षत्रिय जातीय, प्रतापाग्निभिः = प्रताप रूपी अग्नि जिनके द्वारा ऐसे, आदित्यैः = सूर्यवंशी, नृपतिभिः = राजाओं के साथ, यदि = यदि, विग्रहः = युद्ध होता है, ततः = तो, दीप्त = तेजोमय, अस्त्र = आयुधों की, स्फुरत् = चमकती हुई एवं, उग्र = तीक्ष्ण, दीधिति = किरणों के, शिखा = अग्र भागों से, नीराजित = आरती उतारी गई, ज्यम् = प्रत्यञ्चा (डोरी) वाला, मम = मेरा (कुश का) एतत् = यह, धनुः = धनुष, धन्यम् = धन्य है।।18।।

अनुवाद–(कुश रामादि के साथ युद्ध की सम्भावना से प्रसन्न होकर अपने धनुष को धन्य बता रहा है–) भगवान् वैवस्वत मनु से आरम्भ कर आज तक इन्द्र को (भी) अभयदान देने वाले (देते रहने वाले) और अभिमानियों का दमन (अभिमान चूर्ण) करने के लिए अपने क्षत्रिय-(जातीय) प्रताप रूपी अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, सूर्यवंशी राजाओं से यदि सङ्ग्राम छिड़ता है, तो देदीप्यमान अस्त्रों की चमकती हुई एवं प्रखर किरणों की शिखाओं (ज्वालाओं अथवा अग्रभागों) की आरती उतारी गई डोरी वाला मेरा यह धनुष धन्य है।

रामः–कोऽप्यस्मिन्क्षत्रिपपोतके पौरुषातिरेकः। तथाहि–

राम–इस क्षत्रिय कुमार में अकथनीय सामर्थ्य का आधिक्य है। क्योंकि–

दृष्टिस्तृणीकृत जगत्त्रय सत्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गुरुवद् गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव।।19।।

अन्वय–दृष्टिः तृणीकृतजगत्त्रय सत्वसारा, धीरोद्धता गतिः धरित्रीं नमयति इव, कौमारके अपि गिरिवत् गुरुतां दधानः अयं किं वीरः रसः, उत दर्प एव एति।।19।।

शब्दार्थ–द्दष्टिः–(इस बालक की) दृष्टि, तृणीकृत = तृण (तिनके) के समान तुच्छ समझा है, जगत्त्रय = तीनों लोकों के, सत्व = सामर्थ्य के, सारा = उत्कर्ष को जिसने, ऐसी है, तथा धीर = धीरतायुक्त, उद्धता = गर्वयुक्त, गतिः = चाल, धरित्रीम् = धरती को, नमयति इव = मानो झुका रही है। कौमारके = बाल्यावस्था में, अपि = भी, गिरिवत् = पर्वत के समान, गुरुताम् = गौरव को, इधानः = धारण करता हुआ, अयम् = यह (बालक), किम् = क्या, वीरः रसः = वीर रस है ? उत = अथवा, (साक्षात्) दर्प एव = गर्व ही, एति = आ रहा है ?।।19।।

अनुवाद–(श्रीराम, कुमार कुश के शौर्ययुक्त स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं–) इस बालक की दृष्टि तीनों लोकों के (प्राणियों के) सामर्थ्य के उत्कर्ष को तिनके के समान तुच्छ कर रही है, और इसकी धीर तथा गर्वभरी चाल धरती को मानो झुका रही है, बाल्यावस्था में भी पर्वत के समान गुरुता (भारीपन) को धारण किए हुए यह (बालक) क्या वीर रस है ? अथवा साक्षात् गर्व ही आ रहा है ?।।19।।

लवः–(उपसृत्य) जयत्वार्यः।

लव–(समीप पहुँचकर) आर्य! आपकी जय हो।

कुशः–नन्वायुष्मन्, किमियं वार्ता युद्ध्धं युद्धतिमि ?

कुश–चिरंजीव! यह 'युद्ध युद्ध' इस प्रकार क्या बात चल रही थी ?

लवः–यत्किञ्चिदेतत्। आर्यस्तु दृप्तं भावमुत्सृज्य विनयेन वर्तताम्।

लव–यह कोई (विशेष ध्यान देने योग्य) बात नहीं है। किंतु आप (इस समय) गर्व पूर्ण भाव का परित्याग कर नम्रता का व्यवहार करें।

कुशः–किमर्थम् ?

कुश–(वह) किसलिए ?

लवः–यदत्र देवो रघुनन्दनः स्थितः। स रामायणकथानायको ब्रह्मकोशस्य गोप्ता।

लव–क्योंकि यहाँ पर भगवान् राम उपस्थित हैं। वह रामायण की कथा के नायक तथा वेद-कोष के रक्षक हैं।

कुशः–आशंसनीयपुण्यदर्शनः स महात्मा। किंतु स कथमस्मा-भिरुपगन्तव्य इति संप्रधारयामि।

कुश–उन महापुरुष के पावन दर्शन तो वस्तुतः वाञ्छनीय हैं, किंतु उनके पास हम कैसे जाएँ–यही विचार कर रहा हूँ।

लवः–यथैव गुरुस्तथोपसदनेन।

लव–जिस प्रकार गुरु के निकट उसी भाँति उनके पास उपस्थित होना चाहिए।

कुशः–कथं हि नामैतत् ?

कुश–इस प्रकार क्यों जाना चाहिए ?

लवः–अत्युदात्तः सुजनश्चन्द्रकेतुरौर्मिलेयः प्रियवयस्येति सख्येन मामुपतिष्ठते। तेन सम्बन्धेन धर्मस्तात एवायं राजर्षिः।

लव–अत्यन्त उच्च विचारों वाले एवं सज्जन उर्मिला-सुत चन्द्रकेतु मुझे प्रिय मित्र इस प्रकार कहते हुए सखा-भाव से (मुझसे) मिलते हैं। इस सम्बन्ध के कारण यह राजर्षि (रामचन्द्र) हमारे धर्म सम्बन्धी पिता ही हैं।

कुशः–सम्प्रत्यवचनीयो राजन्येऽपि प्रश्रयः।

कुश–इस समय (धर्म-पिता का सम्बन्ध स्वीकार कर लेने पर) क्षत्रिय के प्रति भी नम्रता का व्यवहार करना (कोई) निन्दा योग्य कार्य नहीं है।

(उभौ परिक्रामतः)

(दोनों घूमने लगते हैं)

लवः–पश्यत्वेनमार्यो महापुरुषमाकारानुभावगाम्भीर्य संभाव्य-मानविविधलोकोत्तर सुचरितातिशयम्।

लव–आकृति, प्रभाव तथा गम्भीरता द्वारा जिसके अनेक प्रकार के अलौकिक सुचरितों की उत्कृष्टता का अनुमान किया जा सकता है, ऐसे इन महापुरुष का आप दर्शन करें।

कुशः–(निर्वर्ण्य)

कुश–(ध्यानपूर्वक देखकर)

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः।
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचमवीवृधत्।।20।।

अन्वय–अहो प्रासादिकं रूपम्, पावनः अनुभावः च। रामायणकविः स्थाने देवीं वाचम् अवीवृधत्।।20।।

शब्दार्थ–अहो = अहो, इनका प्रासादिकम् = प्रसादगुण सम्पन्न, रूपम् = आकार है, च = और, पावनः = पवित्र कर देने वाला, अनुभावः = प्रभाव है रामायणकविः = रामायण के कवि वाल्मीकि ने, स्थाने = उचित ही, देवी वाचम् = संस्कृत = वाङ्मयी भारती की (इन महानुभाव के चरित वर्णन से) अवीवृधत् = अभिवृद्धि की है।

अनुवाद–(कुश, श्री रामचन्द्र जी को ऐतिहासिक महाकाव्य के लिए उपयुक्त चरितनायक के रूप में स्वीकार करता है–) अहो, इनका प्रसाद गुणसम्पन्न आकार है और (दर्शक को) पवित्र कर देने वाला प्रभाव है। रामायण के कवि (वाल्मीकि) ने उचित ही संस्कृतवाङ्मयी भारती की (इन महानुभाव के चरित वर्णन से) सर्वतोमुखी वृद्धि की है।

अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते।
परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः।।21।।

अन्वय–अयं जनः वात्सल्यात् अमृताध्मातजीमूतस्निग्ध संहननस्य ते परिष्वङ्गाय उत्कण्ठते।।21।।

शब्दार्थ–अयम् = यह, जनः = व्यक्ति (राम), वात्सल्यात् = स्नेह के कारण, अमृत = जल, से, आध्मात = परिपूर्ण, जीमूत = मेघ के समान, स्निग्ध = मनोहर, संहननस्य = शरीर वाले, ते = तुम्हारे (अर्थात् कुश के), परिष्वङ्गाय = आलिङ्गन के लिए, उत्कण्ठते = उत्कण्ठित हो रहा है।

अनुवाद–(रामचन्द्र जी कुश के मनोहर शरीर से आलिङ्गन करने की इच्छा प्रकट करते हैं) यह व्यक्ति (राम) स्नेह के कारण जल से भरपूर बादल के समान मनोहर शरीर वाले तुम्हारे आलिङ्गन के लिए उत्कण्ठित हो रहा है।

(परिष्वज्य, स्वगतम्) तत्किमपत्यमयं दारकः ?

राम–(आलिङ्गन करके, मन में) तो क्या यह बालक मेरा पुत्र है ?

अङ्गादङ्गात्सृत इव निजस्नेहजो देहसारः
प्रादुर्भूयस्थित इव बहिश्चेतना धातुरेकः।
सान्द्रानन्द क्षुभितहृदय प्रस्रवेणावसिक्तो
गाढाश्लेषः स हि मम हिमच्योतमाशंसतीव।।22।।

अन्वय–अङ्गात् अङ्गात् सृतः निजस्नेहजः देहसारः इव एकः चेतना-धातुः

प्रादुर्भूय बहिः स्थितः इव, सान्द्रानन्दक्षुभितहृदय प्रस्रवेण अवसिक्तः स हि गाढाश्लेषः मम हिमच्योतम् आशंसति इव।।22।।

शब्दार्थ–अङ्गात् = प्रत्येक अङ्ग से, सृतः = क्षरित होकर निकला हुआ, निज = अपने (मेरे), स्नेहजः = स्नेह से उत्पन्न, देहसारः इव = शरीर के सारांश के समान, एकः = एक, चेतनाधातुः = चैतन्य तत्त्व, प्रादुर्भूय = प्रकट होकर, बहिः = बाहर, स्थितः इव = विद्यमान हुआ सा, सान्द्र = घने (गाढ़े, आनन्द = आनन्द से, क्षुभित = क्षुब्ध (अतिस्पन्दनशील) हुए, हृदय = हृदय के, प्रस्रवेण = रस से, अवसिक्तः = सींचा हुआ, सः हि = वह (बालक) निश्चय ही, गाढ = घने (गाढ़े), आश्लेषः = आलिङ्गन वाला (होकर), मम = मेरे (राम के), हिमच्योतम् = हिमवृष्टि को, आशंसति इव = मानो सूचित-सा कर रहा है।

अनुवाद–(श्री राम, कुश के आलिङ्गन से प्राप्त आनन्द के अनुभव का वर्णन कर रहे हैं–) यह (बालक) मानो मेरे प्रत्येक अङ्ग से क्षरित होकर निकला हुआ एवं मेरे ही स्नेह से उत्पन्न शरीर का सारभूत (उत्कृष्ट) अंश है। यह मानो एक (देहधारी) चैतन्य तत्त्व है, (जो) प्रकट होकर (देह से) बाहर स्थित है। गाढ़े आनन्द से अत्यधिक स्पन्दशील हृदय के रस से सिञ्चित यह (कुमार) निश्चय ही प्रगाढ आलिङ्गन करने पर मानो तुषार वृष्टि से मुझे सिक्त किए जाने की सूचना दे रहा है। (अर्थात् मेरे सन्तप्त हृदय को हिम-सिक्त कर शीतल कर रहा है।

लवः–ललाटन्तपस्तपति घर्मांशुः। तदत्र सालवृक्षच्छायायां मुहूर्त्तमासनपरिग्रहं करोतु तातः।

लव–सूर्य मस्तक को तप्त कर रहा है। अतः हे पिता जी! आप थोड़ी देर के लिए इस साल वृक्ष की छाया में आसन पर विराजिए।

रामः–यदभिरुचितं वत्सस्य।

राम–वत्स की जैसी रुचि हो।

(सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति)

(सभी लोग चलकर यथोचित स्थान पर बैठते हैं)

रामः–(स्वगतम्)

अहो प्रश्रय योगेऽपि गतिस्थित्यासनादयः।
साम्राज्य शंसिनो भावाः कुशस्य च लवस्य च।।23।।

अन्वय–अहो प्रश्रययोगे अपि कुशस्य च लवस्य च गतिस्थित्यासनादयः भावाः साम्राज्यशंसिनः।।23।।

शब्दार्थ–अहो = आश्चर्य है कि, प्रश्रय = विनय का, योगे = सम्बन्ध होने पर, अपि = भी, कुशस्य = कुश का, लवस्य च = और लव (अर्थात् दोनों) का,

गति = चलना, स्थिति = रुकना, और आसनादयः = बैठना आदि, भावाः = क्रियाएँ: (इनके) साम्राज्य = सम्राट् होने की, शंसिनः = सूचना दे रही हैं।

राम–(मन में)

अनुवाद–(राम जी, कुश तथा लव दोनों की गतिविधियों से उनके सम्राट् होने का अनुमान कर रहे हैं–) आश्चर्य है कि विनम्रता (का समबन्ध होने) पर भी कुश तथा लव का चलना, रुकना तथा बैठना आदि क्रियाएँ (इनके) सम्राट् होने की सूचना दे रही हैं।

वपुरवियुतसिद्धा एव लक्ष्मीविलासाः
प्रतिकलकमनीयां कान्तिमुद्भेदयन्ति।
अमलिनमिव चन्द्रं रश्मयः स्वे यथा वा
विकसितमरविन्दं बिन्दवो माकरन्दाः।।24।।

अन्वय–यथा स्वे रश्मयः अमलिनं चन्द्रम् इव, माकरन्दाः बिन्दवः विकसितम् अरविन्दं वा, वपुरयुतसिद्धाः एव लक्ष्मीविलासाः प्रतिकलकमनीयां कान्तिम् उद्भेदयन्ति।।

शब्दार्थ–यथा = जिस प्रकार, स्वे = अपनी (निर्मल) रश्मयः = किरणें, अमलिनम् = निर्मल, चन्द्रम् इव = चन्द्रमा को, अथवा जिस प्रकार, माकरन्दाः = पुष्परस की बूँदें, विकसितम् = विकसित, अरविन्दम् = कमल को (सुशोभित करती हैं) उसी प्रकार, वपुरवियुतसिद्धाः = शरीर के साथ जन्मजात (नैसर्गिक) लक्ष्मी विलासाः = मनोहर सौन्दर्य-विलास, (आकर्षक-हाव-भाव), प्रतिकल = प्रतिक्षण, कमनीयाम् = मनोहर, कान्तिम् = शोभा को, उद्भेदयन्ति = विकसित कर रहे हैं।

अनुवाद–(राम, दोनों कुमारों की सहज शोभा का आलङ्कारिक वर्णन कर रहे हैं) जिस प्रकार अपनी (निर्मल) किरणें निर्मल चन्द्रमा को, अथवा जिस प्रकार पुष्प रस की बूँदें विकसित कमल को (सुशोभित करती हैं) उसी प्रकार शरीर के साथ जन्मजात (नैसर्गिक अथवा स्वाभाविक) मनोहर हाव-भाव (शोभाविलास) इनकी प्रतिक्षण मनोहारिणी शोभा को विकसित कर रहे हैं।

भूयिष्ठं च रघुकुलकौमारमनयोः पश्यामि।

राम–और मैं इन दोनों कुमारों से रघुकुल के बालकों की बहुत अधिक समानता देख रहा हूँ।

कठोरपारावत कण्ठमेचकं
वपुर्वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं
ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः।।25।।

अन्वय–वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः वपुः कठोरपारावतकण्ठमेचकम्, वीक्षितं च प्रसन्नसिंहस्तिमितम्, ध्वनिः च माङ्गल्यमृदङ्ग मांसलः।।25।।

शब्दार्थ–वृष = बैल के, स्कन्ध = कन्धों के समान, सुबन्धुर = सुन्दर, अंसयोः = कन्धों वाले, (इन दोनों बालकों का) वपुः = शरीर, कठोर = तरुण, पारावत = कबूतर के, कण्ठ = गले के समान, मेचकम् = श्याम वर्ण वाला, है। वीक्षितं च = और दृष्टि, प्रसन्न = निर्मल तथा, सिंहस्तिमितम् = सिंह के समान निश्चल है। ध्वनिः च = और ध्वनि, माङ्गल्य = मङ्गल सूचक, मृदङ्ग (पखावज = ढोलक) के समान, मांसलः = गम्भीर है।

अनुवाद–(राम, दोनों कुमारों के शरीर, कण्ठ तथा सिंहदृष्टि का वर्णन कर रहे हैं।) बैल के कन्धों के समान सुन्दर कन्धों वाले इन दोनों बालकों का शरीर तरुण कबूतर के गले के समान श्याम वर्ण है दृष्टिपात निर्मल तथा सिंह के समान निश्चल है तथा शब्द मङ्गलसूचक मृदङ्ग (पखावज-या ढोलक) के समान गम्भीर हैं।

(निपुणं निरूप्य) अये, न केवल मस्मद्वंशसंवादिन्याकृतिः।

राम–(ध्यानपूर्वक निहारकर) अरे, इनकी न केवल आकृति ही हमारे कुल से समानता रखती है, अपि तु–

अपि जनक सुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो–
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्य प्रियायाः।।26।।

अन्वय–इह शिशु युग्मे नैपुणोन्नेयं जनकसुतायाः तच्चतच्च अनुरूपम् अपि स्फुटम् अस्ति। ननु अभिनव शतपत्रश्रीमत् तत् प्रियायाः आस्यं पुनः मे अक्ष्णोः गोचरीभूतम् इव (वर्तते)।।26।।

शब्दार्थ–इह = इन, शिशुयुग्मे = दोनों बालकों में, नैपुणोन्नेयम् = निपुणता से ज्ञात करने योग्य, जनक सुतायाः = सीता के, तच्च = अङ्गों आदि की, तच्च = तथा गुणों आदि की, अनुरूपम् = समानता, अपि = भी स्फुटम् अस्ति = स्पष्ट रूप से प्रकट है। ननु = वास्तव में अथवा निश्चय ही, अभिनव = नवीन, शतपत्र = कमल के समान, श्रीमत् = शोभासम्पन्न, तत् = वह (पूर्वपरिचित सुन्दर), प्रियायाः = प्रियतमा (सीता) का, आस्यम् = मुख, पुनः = फिर से, मे = मेरे (राम की), अक्ष्णोः = नेत्रों के, गोचरीभूतम् इव = मानो समक्ष आ गया है।

अनुवाद–(राम, लव तथा कुश के सौंदर्य में सीता के अङ्गों तथा गुणों की समानता की संभावना का वर्णन कर रहे हैं–) इन दोनों बालकों में निपुणता से ज्ञात करने योग्य सीता के अङ्गों आदि तथा गुणों आदि की समानता भी प्रकट हो रही है। वास्तव में नवीन कमल के समान अभिराम प्रियतमा सीता का वह (पूर्वपरिचित) मुख मानो पुनः मेरे नेत्रों के समक्ष आ गया है।

शुक्लाच्छ दन्तच्छवि-सुन्दरेयं
सैवोष्ठमुद्रा स च कर्णपाशः।
नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले
तथापि सौभाग्यगुणः स एव।।27।।

अन्वय–शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरा इयम् ओष्ठमुद्रा सा एव, स च कर्ण-पाशः, यद्यपि नेत्रे पुनः रक्तनीले तथापि सौभाग्यगुणः स एव (अस्ति)।।27।।

शब्दार्थ–शुक्ल = श्वेत, अच्छ = निर्मल, दन्तच्छवि = दाँतों की कान्ति से, सुन्दरा = सुन्दर, इयम् = यह, ओष्ठमुद्रा = ओठों की मुद्रा (दोनों ओठों का रूप-गठन) सा एव = वह ही है, स च = और वही, कर्णपाशः = सुन्दर कान हैं, यद्यपि नेत्रे = यद्यपि दोनों नेत्र, पुनः रक्तनीले = लाल और नीले हैं, तथापि = फिर भी (तथापि), सौभाग्यगुणः = सौन्दर्य का गुण, स एव = वही है।

अनुवाद–(राम, लव और कुश के अङ्गों में सीता के ही पूर्वपरिचित सौन्दर्य का दर्शन कर रहे हैं–) श्वेत एवं निर्मल दाँतों की कान्ति से मनोहर यह ओठो की मुद्रा (दोनों ओठों का रूपगठन अथवा विन्यास) वही है, तथा प्रशस्त कान भी वैसे (सीता के कानों के समान) ही हैं, यद्यपि नयन लाल और काले हैं, तथापि (उनका) सौन्दर्य का गुण वही है।

(विचिन्त्य) तदेतत्प्राचेतसाध्युषितमरण्यं यत्र किल देवी परित्यक्ता। इयं चानयोराकृतिर्वयोऽनुभावश्च। यत्स्वतः प्रसाशान्यस्त्राणीति च। तत्रापि स्मरामि खलु तदपि चित्रदर्शन प्रासङ्गिकमस्त्राभ्यनुज्ञानं प्रबुद्धं स्यात्। न ह्यसांप्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामपि शुश्रुमः। अयं विस्मयसंप्लवमानसुखदुःखातिशयो हृदयस्य मे विप्रलम्भः। यमाविति च भूयिष्ठमात्मसंवादः। जीवद्वयापत्यचिह्नो हि देव्या गर्भिणीभाव आसीत्।

राम–(सोचकर) यह वही महर्षि वाल्मीकि से (अपने निवास के रूप में प्रयुक्त अरण्य है, जहाँ पर सीता देवी का परित्याग किया था। इन दोनों (कुमारों) की यह आकृति, अवस्था तथा प्रभाव (बिल्कुल) वैसे ही हैं। (अर्थात् आकृति और प्रभाव के अतिरिक्त इनकी आयु भी उतनी ही है, जितने वर्ष सीता का परित्याग किए हो चुके हैं, अर्थात् बारह वर्ष की आयु है)। इन दोनों कुमारों को जो जृम्भक अस्त्र स्वतः प्रकाशित हुए हैं, उनके सम्बन्ध में (भी) मुझे स्मरण हो रहा है, कि चित्रदर्शन के प्रसंगवश मैंने जृम्भक अस्त्रों को प्राप्त करने की जो स्वीकृति (गर्भगत शिशु के लिए) दी थी, उसी से इन्हें जृम्भकास्त्र की प्राप्ति हुई है, ऐसी सम्भावना है। क्योंकि हम लोगों ने ऐसा सुना है कि गुरु परंपरा के बिना ये अस्त्र प्राचीन लोगों को भी नहीं प्राप्त हुए थे। मेरे हृदय में जो वियोग श‍ृङ्गार है, उसके सुख अथवा दुःख की अधिकता विस्मय की धारा में तैर रही है। ये दोनों जुड़वाँ भाई हैं–इस (प्रतीति) में भी बहुत अधिक बुद्धिगत संगति (मेल-जोल, अथवा सामञ्जस्य) है,

क्योंकि सीता की गर्भावस्था (उस समय भी) दो सन्तानों के चिह्न से युक्त थी।

राम–(सास्त्रम्)

परां कोटिं स्नेहे परिचय विकासादधिगते
रहो विस्त्रब्धाया अपि सहजलज्जा जडदृशः।
मयैवादौ ज्ञातः करतलपरामर्शकलया
द्विधागर्भ ग्रन्थिस्तदनु दिवसैः कैरपि तया।।28।।

अन्वय–परिचयविकासात् स्नेहे परां कोटिम् अधिगते, रहो विस्त्रब्धाया अपि सहजलज्जाजडदृशः गर्भग्रन्थिः मया एव आदौ करतलपरामर्शकलया द्विधा ज्ञातः, तदनु कैः अपि दिवसैः तया (ज्ञातः)।।28।।

शब्दार्थ–परिचय = अत्यधिक संपर्क से उत्पन्न विश्वास, की, विकासात् = वृद्धि के कारण, स्नेहे = स्नेह की, पराम् = अन्तिम, कोटिम् = सीमा को, अधिगते = प्राप्त हो जाने पर, रहः = स्वाभाविक, लज्जा के कारण, जडदृशः = निश्चेष्ट दृष्टि वाली (सीता के), गर्भग्रन्थिः = गर्भपिण्ड को, मया = मैंने, एव = ही, आदौ = पहले, करतल = हथेली के द्वारा, परामर्श = उदर पर सहलाने की, कलया = क्रिया से, द्विधा = दो भागों में विभक्त है, इस प्रकार, ज्ञातः = ज्ञात किया था, तदनु = उसके पश्चात्, कैः अपि = कुछ (कुछ एक), दिवसैः = दिनों बाद, तया = सीता ने ज्ञात किया।

(राम, सीता के जुड़वाँ जन्म लेने वाले कुमारों–लव-कुश को सीता-पुत्र के ही रूप में युक्तियुक्त कर रहे हैं–)

राम–(नेत्रों में आँसू लाकर)

अनुवाद–अत्यधिक संपर्क से उत्पन्न विश्वास (परिचय) की वृद्धि के कारण स्नेह अंतिम सीमा को प्राप्त हो चुका था, एकांत में (नितांत) विश्वस्त हुई भी सहज लज्जा के कारण निश्चल दृष्टि वाली सीता के गर्भ (पिण्ड) को मैंने (राम ने) ही पहले हथेली के द्वारा उदर पर सहलाने की क्रिया से दो भागों में विभक्त रूप में ज्ञात किया था, उसके पश्चात् कुछ (ही) दिनों बाद सीता ने (भी) ज्ञात किया।

(रुदित्वा) तत्किमेतौ पृच्छामि केनचिदुपायेन।

(रोकर) तो क्या इन दोनों से किसी तरह यह बात पूछूँ!

लवः–तात, किमेतत् ?

लव–तात, यह क्या ?

वाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मङ्गलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्।।29।।

अन्वय–जगन्मङ्गलं वः आननं वाष्पवर्षेण अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुतां नीतम्।।29।।

शब्दार्थ–जगत् = संसार के लिए, मङ्गलम् = कल्याणकारी, वः = आपका यह, आननम् = मुख, वाष्प = आँसुओं की, वर्षेण = वर्षा से, आवश्याय = ओस के कणों से, अवसिक्तस्य = सींचे हुए, पुण्डरीकस्य = कमल की, चारुताम् = सुन्दरता (रुचिरता) को, नीतमू = प्राप्त कर रहा है।

अनुवाद–(लव, श्री राम के सीता-स्मरण से उत्पन्न अश्रुओं के कारण आर्द्र हुए मुख का वर्णन कर रहे हैं–) विश्व के लिए हितकारी आपका यह मुख, आश्रुओं की वृष्टि से (आर्द्र होकर) ओस-बिन्दुओं से भीगे कमल की सुन्दरता प्राप्त कर रहा है।।29।।

कुशः–अयि वत्स,

कुश–हे वत्स!

बिना सीता देव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः
किमेवं त्वं पृच्छस्यनधिगत रामायण इव।।30।।

अन्वय–सीता देव्या बिना रघुपतेः किम् इव हि दुःखं न ? हि प्रियानाशे कृत्स्नं जगत् किल अरण्यं भवति। स च तावान् स्नेहः, अयम् अपि निरवधिः वियोगः, त्वम् अनधिगतरामायणः इव एवं किम् पृच्छसि ?।।30।।

शब्दार्थ–सीतादेव्या = सीतादेवी के, बिना = न होने पर, रघुपतेः = राम के लिए, किमिव = कौन सी (सांसारिक) वस्तु, हि = निश्चित रूप से, निःसन्देह, दुःखं-दुःखदायी, न = नहीं हैं अर्थात् निःसन्देह, सभी वस्तुएँ दुःखद हैं। हि = क्योंकि, प्रियानाशे = पत्नी के मर जाने पर, कृत्स्नम् = सम्पूर्ण, जगत् = संसार ही, किल = निःसन्देह, वास्तव में, अरण्यम् = वन, भवति = हो जाता है, अर्थात् जंगल-सा-बन जाता है। सच = कहाँ (उनका) वह (पूर्वानुभूत), तावान् = उतना अधिक, स्नेहः = प्रेम, अयम् अपि = और कहाँ यह (इस समय अनुभव किया जाता हुआ), निरवधिः = सीमारहित, अपार, वियोगः = विरह-दुःख, ? त्वम् = तुम, अनधिगत = न पढ़े हुए, रामायणः इव = रामायण वाले पुरुष के समान, एवम् = इस प्रकार, किम् = क्यों, पृच्छसि = पूछ रहे हो ?

अनुवाद–(कुश, लव से कहता है कि रामायण का अध्ययन किए होने पर तुम्हें पूज्य राम जी से इस (वाष्पवर्षेण. इत्यादि) प्रकार से नहीं पूछना चाहिए–) सीतादेवी के न होने पर राम के लिए कौन-सी (सांसारिक) वस्तु निःसंदेह दुःखदायी नहीं है ? क्योंकि पत्नी का मरण हो जाने पर (पुरुष के लिए) संपूर्ण संसार ही वस्तुतः वन हो जाता है (अर्थात् वन-सा प्रतीत होने लगता है) कहाँ (उनका) वह (पूर्वानुभूत) उतना अधिक स्नेह, और कहाँ यह अपार विरह-दुःख ? (रामायण से

राम के जीव की इस दारुण विषमता को समझते हुए भी) तुम रामायण न पढ़े हुए व्यक्ति की भाँति इस प्रकार क्यों पूछ रहे हो ? (अर्थात् तुम्हें स्वयं उनके हृदय की मार्मिक व्यथा का अनुमान कर लेना चाहिए, प्रश्न करने की क्या आवश्यकता ?)

रामः–(स्वगतम्) अये, तटस्थ आलापः। कृतं प्रश्नेन। मुग्ध-हृदय, कोऽयमाकस्मिकस्ते संप्लवाधिकारः ? एवं च निर्भिन्नहृदया-वेगः शिशुजनेनांप्यनुकम्पितोऽस्मि। भवतु तावदन्तरयामि। (प्रकाशम्) वत्सौ, रामायण रामायणमिति श्रूयते भगवतो वाल्मीकेः सरस्वती निस्यन्दः प्रशस्तिरादित्यवंशस्य तत्कौतूहलेन यत्किञ्चिच्छोतुमिच्छामि।

कुशः–स कृत्स्न एव संदर्भोऽस्माभिरावृत्तः स्मृतिप्रत्युपस्थितौ तावदिमौ बालचरितस्यासाते द्वौ श्लोकौ।

रामः–उदीरयतं वत्सौ।

राम–(मन में) अरे, इन (दोनों) का वार्तालाप उदासीन-(तटस्थ लोगों) जैसा है (अर्थात् इनके सम्भाषण से यह ज्ञात नहीं होता कि सीता इनकी जननी है) अतः इनसे (सीताविषयक) प्रश्न पूछना व्यर्थ है। हे मूढ हृदय! तुझे अकस्मात् बह जाने का यह कौन-सा (क्या) अधिकार है ? (अर्थात् तू प्रसंग से बहकर क्यों गया)। और इस प्रकार (अर्थात् रुदन द्वारा) मानसिक क्षोभ प्रकट हो जाने से मैं (इन) बालकों के द्वारा भी दया का पात्र बन गया हूँ। अच्छा, मैं (हृदय वेग को) छिपाता हूँ। (प्रकट) दोनों वत्स! रामायण, रामायण-यह भगवान् वाल्मीकि की वाणी का प्रवाह, सूर्यवंश की प्रशस्ति (कीर्तिग्रन्थ) है, ऐसा सुना जाता है। इसलिए मैं कुतूहलवश उसका कुछ अंश सुनना चाहता हूँ।

कुश–हम लोगों ने उस संपूर्ण ग्रंथ का (आद्योपान्त) अभ्यास किया है। इस समय बालचरित के ये दो श्लोक तो स्मृति-पटल पर ही उपस्थित हैं (अर्थात् याद हैं)।

राम–तुम दोनों बालक (उन्हें) कहो।

कुशः–प्रिया तु सीतारामस्य दाराः पितृकृता इति।
गुणै रूपगुणैश्चापि प्रीतिर्भूयोऽप्यवर्धत्।।31।।
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।।32।।

अन्वय–पितृकृताः दाराः इति सीता रामस्य तु प्रिया। गुणैः रूपगुणैः च अपि प्रीतिः भूयः अपि अवर्धत।।31।।

तथा एव रामः सीताया प्राणेभ्यः अपि प्रियः अभवत्। तु हृदयम् एव परस्परं प्रीतियोगं जानाति।।32।।

शब्दार्थ–पितृकृताः = पिता के द्वारा विधिपूर्वक प्रदान की गई, दाराः = 'पत्नी'

इस रूप में, सीता = सीता, रामस्य = राम को, तु = अत्यन्त, प्रिया = प्रिय थीं। गुणैः = (सुशीलता आदि) गुणों से, रूपगुणैः च = तथा सुंदरता आदि गुणों से, अपि = भी (पत्नी के प्रति उनका) प्रीतिः = प्रेम, भूयः = अपि = और भी अधिक (अत्यधिक), अवर्धत = बढ़ गया था।।31।। तथा एव = उसी प्रकार, रामः = राम, सीतायाः = सीता को, प्राणेभ्यः अपि = प्राणों से भी अधिक, प्रियः = प्रिय अभवत् = थे, तु = क्योंकि (सीता और राम का), हृदयम् एव = हृदय ही, परस्परम् = एक दूसरे के, प्रीतियोगम् = प्रेम-संबंध को, जानाति = जानता है–अर्थात् समझता है।।32।।

अनुवाद–(प्रस्तुत दो श्लोकों में कुश वाल्मीकि रामायणगत बालचरित के दो श्लोकों के उद्धरण द्वारा सीता तथा राम के पारस्परिक प्रेम का वर्णन कर रहा है) पिता (राजर्षि जनक) के द्वारा (यथाविधि) भार्या के रूप में प्रदान की गई सीता राम को अत्यंत प्रिय थीं। विनम्रता, सरलता सुशीलता आदि गुणों से तथा सुंदरता आदि गुणों से भी पत्नी के प्रति उनका प्रेम अत्यधिक बढ़ गया था।।31।।

उसी प्रकार राम सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे, क्योंकि (सीता और राम का) हृदय ही एक दूसरे के प्रेम संबंध को समझता है।32।।

रामः–कष्टमतिदारुणो हृदयमर्मोद्घातः। हा देवि, एवं किलैतदासीत्। अहो निरन्वयविपर्यासविप्रलम्भस्मृति पर्यवसायिनस्तावकाः संसार वृत्तान्ताः।

राम–ओह! हृदय के मर्मस्थल पर होने वाला यह प्रहार अत्यंत दारुण है। हा देवी, वह (वर्णन) ऐसा ही था। ओह! तुम्हारे (संघर्षमय) जीवन की घटनाएँ, अचानक परिस्थितिपरिवर्तन के कारण अब (केवल) वियोग और स्मरण में ही समाप्त हो जाती हैं। (अर्थात् तुम्हारे जीवन का दारुण घटनाचक्र तो तुम्हें समाप्त कर स्वयं भी शांत हो गया, किंतु तुम्हारी स्मृति अविस्मरणीय है।)

क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः
क्व वाऽन्योऽन्य प्रेम क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः।
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो–
स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति न तु पापो विरमति।।33।।

अन्वय–निरतिशय विस्रम्भबहुलः तावान् आनन्दः क्व ? वा अन्योन्य-प्रेमक्य ? गहनाः कौतुकरसाः च क्व नु ? सुखे वा दुःखे वा हृदययोः तत् ऐक्यं क्व नु खलु ? तथापि एषः पापः प्राणः स्फुरति, न तु विरमति।।33।।

शब्दार्थ–निरतिशय = अत्यधिक, विस्रम्भ = विश्वास से, बहुलः = परिपुष्ट, तावान् = उस परिमाण वाला अर्थात् असीम, आनन्दः क्व = आनंद अब कहाँ ? वा = अथवा, अन्योन्य प्रेम = दोनों का पारस्परिक प्रेम, अब, क्व = कहाँ ? गहनाः = घने, अगाध, कौतुकरसाः = भौतिक विषयों का रसास्वादन, च = भी अब, क्व

= कहाँ ? सुखे वा = सुख में, दुःखे वा = और दुःख में, हृदययोः = हम दोनों के हृदयों की, तत् = वह, ऐक्यम् = एकता, क्व नु खलु = अब कहाँ ? अर्थात् वह तो निःसंदेह ही अब शेष नहीं है, तथापि = फिर भी, एषः = यह, पापः = पापी, प्राणः = प्राण (जीवन), स्फुरति = अभी तक गतिमान् है, न तु विरमति = किंतु रुक नहीं रहा है।

अनुवाद–(राम, सीता के विरह युक्त अपने नीरस जीवन का करुण वर्णन करते हैं–) अत्यधिक विश्वास के कारण प्रगाढ़ एवं असीम वह आनंद अब कहाँ ? अथवा हम दोनों का पारस्परिक प्रेम अब कहाँ ? भौतिक विषयों का घना रसास्वादन भी अब कहाँ ? सुख और दुःख में हम दोनों के हृदयों की वह एकता (समरसता) अब कहाँ (चली गई, अर्थात् ये तो निःसंदेह ही अब शेष नहीं हैं)। फिर भी यह पापी प्राण अभी तक गतिमान् है, यह रुक (क्यों नहीं रहा है ?

भोः कष्टम्–

राम–हा! दुःख है–

प्रिया गुण सहस्राणां क्रमोन्मीलनतत्परः।
य एव दुःसहः कालस्तमेव स्मारिता वयम्।।34।।

अन्वय–प्रिया गुण सहस्राणां क्रमोन्मीलन तत्परः यः एव दुःसहः कालः तम् एव वयं स्मारिताः।।34।।

शब्दार्थ–प्रिया = भार्या सीता के, गुण सहस्राणाम् = सहस्रों गुणों को, क्रम = क्रमशः, उन्मीलन = प्रकाशित करने में, तत्परः = तत्पर रहने वाला, यः एव = जो ही, दुःसहः = कष्ट से सहने योग्य (असहनीय), कालः = समय है, तम् एव = उसी की, वयम् = हमें, स्मारिताः = स्मृति कराई गई है।

अनुवाद–(राम, वर्तमान समय में सीता के स्मरण से उत्पन्न वेदना से व्यथित राम का कथन है–) प्रियतमा (पत्नी) सीता के हजारों गुणों को क्रमशः प्रकाशित करने में तत्पर रहने वाला (वस्तुतः) जो (ही) अत्यंत कष्ट से सहने योग्य (असहनीय) समय है, उसी की हमें स्मृति कराई गई है।

(क) वयं तं कालं स्मृतवन्तः (कर्तृवाच्य)
(ख) अस्माभिः सः कालः स्मृतः (कर्मवा., अण्यन्त)
(ग) तेन वयं तं कालं स्मारिताः (कर्मवा., ण्यन्त)

इन तीन वाक्यों के क्रमिक परिवर्तन में ऊपर का विवरण स्पष्ट हो जाता है। इसी अर्थ 'स्मारिताः' में कर्मवाच्य में प्रत्यय-विधान अपने कर्म (वयम्) को प्रधान (उक्त) बनाकर उसमें प्रथमा करके तदनुसार स्वयं भी प्रथमा में रहता है। इस प्रकार 'वयं स्मारिताः' की संगति हो जाती है।

तदा किंचित्किंचित्कृतपदमहोभिः कतिपयं–
स्तदीषद्विस्तारि स्तन मुकुलमासीन्मृगदृशः।
वयः स्नेहाकूत व्यतिकरधनो यत्र मदनः
प्रगल्भव्यापारः स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि।।35।।

अन्वय–यत्र वयःस्नेहाकूतव्यतिकर घनः मदनः हृदि प्रगल्भव्यापारः, वपुषि च मुग्धः स्फुरति, तदा किंचित्-किंचित् कृतपदं मृगदृशः तत् स्तनमुकुलं कतिपयैः अहोभिः ईषद्विस्तारि आसीत्।।3।।

शब्दार्थ–यत्र = जिस समय (सीता की तरुणाई में एक ओर), वयः = युवावस्था, स्नेह = प्रेम तथा, आकूत = परस्पर की अभिलाषा के, व्यतिकरधनः = संसर्ग से घनीभूत, मदनः = कामदेव, हृदि = हृदय में, प्रगल्भव्यापारः = प्रौढ़ चेष्टाओं से युक्त, था, और (दूसरी ओर वही), वपुषि = शरीर में, (नारी-सुलभ लज्जावश), मुग्धः = भोली-भाली चेष्टाओं से युक्त (= सरल, अर्थात् प्रगल्भता-शून्य) होकर स्फुरति = प्रकाशित होता था, तदा = उस समय, किञ्चित्किञ्चित् = (वक्ष पर) थोड़ा-थोड़ा (अथवा शनैः-शनैः), कृतपदम् = अपना स्थान बनाने (अर्थात् उभरने) वाले, मृगदृशः = मृगनयनी सीता के, तत् = वे, स्तनमुकुलम् = कली के समान मनोहर स्तन, कतिपयैः = कुछ ही, अहोभिः = दिनों में, ईषद् = थोड़े, विस्तारि = विस्तारयुक्त, आसीत् = हो गए थे।

अनुवाद–(राम, वर्णन करते हैं कि वह समय कैसा था, जिसका इस समय अचानक स्मरण करा दिया गया है) जिस समय (सीता की तरुणाई में एक ओर) युवावस्था, प्रेम तथा परस्पर (मिलन, आलिङ्गन) की अभिलाषा से घनीभूत (विवृद्ध, प्रबुद्ध) हुआ कामदेव हृदय में प्रौढ़ चेष्टाओं से युक्त (प्रबल) था, तथा (दूसरी ओर वही) वपुषि = शरीर में, (नारी सुलभ-लज्जावश) भोली-भाली (सरल) चेष्टाओं से युक्त (प्रगल्भताशून्य) होकर प्रकाशित होता था, उस समय, (वक्ष पर) थोड़ा-थोड़ा (शनैः-शनैः) अपना स्थान बनाने (उभरने) वाले, मृगनयनी सीता के वे कली के समान मनोहर स्तन, कुछ ही दिनों में थोड़े विस्तारयुक्त हो गए थे।।35।।

लवः–अयं तु चित्रकूटवर्त्मनि मन्दाकिनी-विहारे सीतादेवीमुद्दिश्य रघुपतेः श्लोकः–

लव–यह (श्लोक) तो चित्रकूट पर्वत पथ में गंगा के जल में विहार के समय देवी सीता को लक्ष्य करके (कहा गया) राम का श्लोक है–

त्वदर्थमिव विन्यस्तः शिलापट्टोऽयमायतः।
यस्यायमभितः पुष्पैः प्रवृष्ट इव केसरः।।36।।

अन्वय–अयम् आयतः शिलापट्टः त्वदर्थां विन्यस्तः इव, यस्य अभितः अयं केसरः पुष्पैः प्रवृष्टः इव (वर्तते)।।36।।

शब्दार्थ–अयम् = यह, आयतः = विशाल (लम्बा) शिलापट्टः = पत्थर का खण्ड, त्वदर्थम् = तुम्हारे (सीता के) बैठने के लिए, विन्यस्तः इव = मानो बिछाया गया है, यस्य = जिसके, अभितः = चारों ओर, अयम् यह (सामने वाला), केसरः = मौलसिरी का वृक्ष, पुष्पै = पुष्पों की (पुष्पों द्वारा), प्रवृष्टः इव = वर्षा-सी कर रहा है (बरस-सा रहा है)।।36।।

अनुवाद–(लव भी चित्रकट के मार्ग पर राम की उक्ति का यथावत् पाठ कर रहा है–) यह विशाल (लम्बा-सा) प्रस्तर-खण्ड मानो तुम्हारे (सीता के बैठने के) लिए बिछाया गया है, जिसके चारों ओर यह (सामने वाला) मौलसिरी का पेड़ (मानो) पुष्पों की वर्षा कर रहा है।

रामः–(सलज्जास्मितस्नेहकरुणम्) अति हि नाम मुग्धः शिशुजनः विशेषतस्त्वरण्यचरः। हा देवि, स्मरसि वा तस्य तत्समय विस्रम्भातिप्रसङ्गस्य ?

राम–(लज्जा, मन्दमुस्कान, अनुराग एवं करुणापूर्वक) बालकजन वस्तुतः बहुत ही सौम्य स्वभाव वाले (= भोलेभाले) होते हैं, (उनमें भी) विशेष रूप से वनवासी बालक। हा देवी सीता, क्या तुम्हें उस काल के अत्यन्त विश्वास से समृद्ध भोग-विलासों (अथवा स्वच्छंद विहारों) की याद आती है ?

श्रमाम्बुशिशिरीभवत्प्रसृत मन्द मन्दाकिनी–
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति।
अकुङ्कुम कलङ्कितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम्।।37।।

अन्वय–श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृतमन्दमन्दाकिनीमरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलं निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम् उत्प्रेक्ष्यते।।37।।

शब्दार्थ–श्रम = थकावट से उत्पन्न, श्रमाम्बु = पसीने से, शिशिरीभवत् = शीतल होता हुआ, प्रसृत = चलती हुई, मन्द = धीमी (शिथिल) मन्दाकिनी-मरुत् = गंगा के जलकणों से युक्त वायु द्वारा, तरलित = चंचल किए गए, अलक = केशपाश से, आकुल = आच्छादित है, ललाटचन्द्र = मस्तक रूपी चन्द्रमा की, द्युति = कान्ति जिसकी, अकुङ्कुम = कुङ्कुम के बिना, कलङ्कित = अरुणिमा से शून्य होने पर भी, उज्ज्वल = तेजयुक्त, कपोलम् = कपोलों से युक्त, निराभरण = आभूषणों के बिना भी, सुंदर = सुंदरतायुक्त, श्रवणपाश = प्रशस्त कानों से, मुग्धम् = मनोहर, मुखम् = तुम्हारा (सीता का) मुख, उत्प्रेक्ष्यते = (मुझे) दृष्टि-गोचर-सा हो रहा है।

अनुवाद–(राम, सीता को संबोधित करके कहते हैं–देवी, तुम पूर्व वृत्तांत का स्मरण करती हो, अथवा नहीं करती हो, किंतु मैं इस समय तुम्हारे मुख को निम्नलिखित रूप में अपने समक्ष ही विद्यमान हुआ सा देख रहा हूँ–) थकावट से उत्पन्न पसीने

से शीतल होता हुआ, एवं धीमी गति से चलती हुई गंगा के जलकणों से युक्त वायु द्वारा चंचल किए गए अलकजाल (केशों) से जिसके चन्द्र के तुल्य मस्तक की कान्ति आवृत्त है, कुङ्कुम–(लेप) के बिना अरुणिमा से रहित होने पर भी तेजोमय कपोलों से मण्डित तथा अलङ्कारों के बिना भी सुंदरता युक्त उत्तम कानों (कर्ण पाश) से मनोहर (तुम्हारा) मुख मुझे (साक्षात्) दृष्टिगोचर-सा हो रहा है।

(स्तम्भित इव स्थित्वा, सकरुणम्) अहोनुखलुभोः–

राम–(स्तब्ध-जड़-के सदृश स्थित होकर शोकसहित) ओह! अरे,

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव।।38।।

अन्वय–प्रवासे च चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निर्माय पुरतः निहितः इव प्रियजनः आश्वासं न खलु करोति (इति) न। हि कलत्रे उपरते जगत् जीर्णा रण्यं भवति। तदनु च हृदयं कुकूलानां राशौ पच्यते इव।।38।।

शब्दार्थ–प्रवासे च = प्रवासकाल में भी, चिरम् = बहुत समय तक, ध्यात्वा ध्यात्वा = बार-बार ध्यान करके (बार-बार स्मरण करके), निर्माय = मन से काल्पनिक मूर्ति बनाकर, पुरतः = सामनेः, निहितः इव = स्थापित किया हुआ सा, प्रियजनः = प्रेमीजन, आश्वासम् = (स्मरण कर्ताजन को) सान्त्वना, न = नहीं, खलु करोति = देता है (आश्वस्त करता है) इति न = ऐसा नहीं है (अर्थात् सान्त्वना अवश्य देता है), हि = क्योंकि, कलत्रे = भार्या के, उपरते = स्वर्गवास हो जाने पर, जगत् = (यह) संसार (भी) जीर्णारण्यं = शोभारहित प्राचीन वन, भवति = हो जाता है। (अर्थात् वन के समान बन जाता है), तदनु च = और उसके बाद, हृदयम् = उस (विधुर) का हृदय, कुकूलानां = भूसी की अग्नि के, राशौ = ढेर में, पच्यते इव = मानो पकता (सुलगता या जलता) रहता है।

अनुवाद–(राम, निश्चेष्ट-से स्थित होकर पुनः बड़ी ग्लानिपूर्वक कहते हैं–) प्रवासकाल में भी बहुत समय तक बार-बार स्मरण करके, मन-ही-मन (प्रियजन की) काल्पनिक मूर्ति बनाकर सामने स्थापित किया हुआ सा प्रेमीजन (= स्मरण कर्ता) प्रियजन को सान्त्वना नहीं देता है (अथवा आश्वस्त नहीं करता है) ऐसा नहीं है (अर्थात् सान्त्वना अवश्य प्रदान करता है), क्योंकि पत्नी के स्वर्गवास हो जाने पर यह संसार (भी उस विधुर के लिए) शोभाहीन प्राचीन वन के समान बन जाता है, और उसके बाद उससे (विधुर) का हृदय भूसी की अग्नि के ढेर में मानो पकता (सुलगता अथवा जलता) रहता है।

(नेपथ्ये)

वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथमहिष्योऽथ जनकः
सहैवारुन्धत्या शिशुकलहमाकर्ण्य सभयाः।
जराग्रस्तैर्गात्रैरथ खलु सुदूराश्रमतया
चिरेणागच्छन्ति त्वरितमनसोविश्लथजटाः।।39।।

अन्वय–अरुन्धत्या सह एव वसिष्ठः वाल्मीकिः दशरथमहिष्यः अथ जनकः शिशुकलहम् आकर्ण्य सभयाः (अतः) त्वरितमनसः विश्लथजटाः (सन्तः) अथ सुदूराश्रमतया जराग्रस्तैः गात्रैः चिरेण आगच्छन्ति खलु।।39।।

शब्दार्थ–अरुन्धत्या = अरुधन्ती (वसिष्ठ की भार्या) के, सह = साथ, एव = ही, वसिष्ठः = महर्षि वसिष्ठ, वाल्मीकिः = आदिकवि महर्षि वाल्मीकि, दशरथमहिष्यः = महाराज दशरथ की महारानियाँ, अथ = और, जनकः = राजर्षि जनक-ये-सब लोग, शिशुकलहम् = बालकों के युद्ध को, आकर्ण्य = सुनकर, (किसी अनर्थ की आशङ्का से), सभयाः = भयभीत (अतएव) त्वरितमनसः = मानसिक शीघ्रता वाले, तथा, विश्लथजटाः = (तेजी से चलने के कारण) शिथिल (होकर बिखरी) जटाओं वाले, होकर ये लोग, अथ = उसके पश्चात् (तदनन्तर) सुदूराश्रमतया = आश्रम के दूरवर्ती होने के कारण, जराग्रस्तैः = वृद्धावस्था से पीड़ित, गात्रैः = अङ्गों से, चिरेण = विलम्ब से, आगच्छन्ति खलु = आ रहे हैं।

(नेपथ्य में)

अनुवाद–(नेपथ्य से वसिष्ठ आदि गुरुजनों के आगमन की सूचना दी जा रही है–) अरुन्धती के साथ ही महर्षि वसिष्ठ, आदिकवि वाल्मीकि, महाराज दशरथ की महारानियाँ, और राजर्षि जनक, ये सब लोग बालकों के युद्ध (संबंधी समाचार) को सुनकर (किसी अनर्थ की आशंका से) भयभीत अतएव मानसिक शीघ्रता वाले तथा (तेज गति से चलने के कारण) शिथिल (होकर बिखरी) जटाओं वाले ये आश्रम के दूरवर्ती होने के कारण, वृद्धावस्था से पीड़ित अंगों से देर से आ रहे हैं।

रामः–**कथं भगवत्यरुन्धती वसिष्ठोऽम्बाश्च जनकश्चात्रैव ? कथं खलु ते द्रष्टव्याः ? (सकरुणंविलोक्य) तातं जनकोऽप्यत्रैवायात इति वज्रेणेवताडितोऽस्मि मन्दभाग्यः।**

राम–क्या भगवती अरुन्धती, भगवान् वसिष्ठ, माताएँ तथा जनक यहीं उपस्थित हैं ? मैं (राम) उनसे कैसे मिलूँ ? (शोक सहित देखकर) पिता जनक जी भी यहीं आए हुए हैं–इस सूचना से मैं हतूभाग्य (अभागा) मानो वज्र के द्वारा आहत हो गया हूँ।

सम्बन्धस्पृहणीयता प्रमुदितैर्जुष्टे वसिष्ठादिभि–
र्दृष्ट्वापत्यविवाह मङ्गलविधौ तत्तातयोः संगमम्।

पश्यन्नीदृशमीदृशः पितृसखं वृत्ते महावैशसे
दीर्येकिं न सहस्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम्।।40।।

अन्वय–संबंधस्पृहणीयता प्रमुदितैः, वसिष्ठादिभिः जुष्टे अपत्यविवाह मङ्गलविधौ तत्तातयोः संगमं दृष्ट्वा महावैशसे वृत्ते ईदृशं पितृसखं पश्यन् ईदृशः अहं किं सहस्रधा न दीर्ये ? अथवा रामेण किं दुष्करम् ?।।40।।

शब्दार्थ–(रघु और जनक, इन दोनों वंशों के मध्य)–संबंध = विवाह संबंध की, स्पृहणीयतया = प्रशंसनीयता अथवा अभिलषणीयता के कारण, प्रमुदितैः = प्रसन्न मन वाले, वसिष्ठादिभिः = महर्षि वसिष्ठ आदि पूज्य जनों से, जुष्टे = सेवित (अधिष्ठित), अपत्य = (सीता एवं राम आदि अपनी) सन्तानों के, विवाह = विवाह संबंधी, मङ्गलविधौ = मांगलिक उत्सव पर, तत्तातयोः = उन (वर-वधुओं) के पिता-जनों (दशरथ और जनक) के, संगमम् = मिलन को, दृष्ट्वा = देखकर, महावैशसे = (इस समय सीता को निकाल देने रूपी) घोर हत्याकाण्ड के, वृत्ते = घटित हो जाने पर ईदृशम् = ऐसे (दुःखित), पितृसखम् = पिता (दशरथ) जी के मित्र (जनक) को, पश्चन् = देखता हुआ, इदृशः = ऐसा (घोर अपराधी), अहम् = मैं (राम), किम् = क्यों, सहस्रधा = हजारों टुकड़ों (के रूप) में, न दीर्ये = विदीर्ण नहीं हो जाता हूँ ? अथवा = अथवा, रामेण = राम के लिए, किम् = क्या (करना) दुष्करम् = दुष्कर (अति कठिन) है ?

अनुवाद–राजर्षि जनक का दर्शन करना मेरे लिए कैसे असम्भव है ? राम इसका वर्णन करते हैं–) (रघु और जनक = इन दोनों वंशों के मध्य) विवाह-संबंध की प्रशंसनीयता (अथवा अभिलषणीयता) के कारण प्रसन्न मन वाले महर्षि वसिष्ठ आदि पूज्य जनों से सेवित (अधिष्ठित) अपनी सीता एवं राम आदि) सन्तानों के विवाह संबंधी मांगलिक उत्सव पर उन (वर-वधुओं) के पिताजनों (दशरथ और जनक) के मिलन को देखकर (तथा इस समय सीता-निष्कासन रूपी) घोर हत्याकाण्ड के (घटित) हो जाने पर, ऐसे (पुत्री वियोग-दुःखित) पिता (दशरथ) जी के मित्र (जनक) को देख रहा हूं ऐसा (घोर अपराधी) मैं (राम) क्यों हजारों टुकड़ों (के रूप) में विदीर्ण नहीं हो जाता हूँ ? अथवा राम के लिए क्या (करना) दुष्कर (अति कठिन) है ?।

(अर्थात् सीता का भी परित्याग कर देने वाला नृशंस मैं अन्य कोई भी क्रूर कार्य कर सकता हूँ)

(नेपथ्ये)

भो भोः कष्टम्–

हा, दुःख की बात है–

अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं
सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्।

प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिता
विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः।।41।।

अन्वय–अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियम् ईदृशं रघुनाथं सहसा वीक्ष्य एव प्रथम प्रबुद्ध जनक प्रबोधितः मातरः विधुराः प्रमोहम् उपयान्ति।।41।।

शब्दार्थ–अनुभावमात्र = केवल तेजोमयी छाया से युक्त होकर, समवस्थितम् = विद्यमान, श्रियम् = शोभा से सम्पन्न, ईदृशम् = ऐसे (अस्थि पञ्जराव-शेष), रघुनाथम् = राम को, सहसा = अचानक, वीक्ष्य = देखकर, एव = ही, प्रथम = पहले, प्रबुद्ध = होश में आए हुए, जनक = विदेहराज जनक के द्वारा, प्रबोधिताः = होश में लायी गईं, मातरः = (कौशल्या आदि) माताएँ, विधुराः = (शोक से) व्याकुल, होकर, प्रमोहम् = (पुनः) मूर्च्छा को, उपयान्ति = प्राप्त हो रही है।

अनुवाद–(नेपथ्य से कहा जाता है कि राम की माताएँ मूर्च्छा को प्राप्त हो गईं हैं–) केवल तेजोमयी छाया से होकर विद्यमान शोभा से सम्पन्न, ऐसे (अस्थिपञ्जरावशेष) राम को अचानक देखकर ही, पहले होश में आए हुए विदेहराज जनक के द्वारा होश में लायी गईं (कौशल्या आदि) माताएँ, शोक से विह्वल होकर (पुनः) मूर्च्छा को प्राप्त हो रही हैं।

रामः–जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्।
तत्राप्यकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि।।42।।

यावत्सम्भावयामि।

(इत्युत्तिष्ठति)

अन्वय–जनकानां रघूणां च यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्, तत्र अपि अकरुणे पापे मयि वः करुणा वृथा।।42।।

शब्दार्थ–जनकानाम् = जनककुल के, रघूणां च = और रघुकुल के राजाओं के लिए, यत् = जो (जानकी) कृत्स्नम् = संपूर्ण रूप से, गोत्रङ्गलम् = वंश कल्याण विधायिनी थीं, तत्र अपि = उस (जानकी) के विषय (प्रति) में भी, अकरुणे = दयारहित (हुए) तथा, पापे = पापी (बन गए हुए) मयि = मुझ (राम) पर, वः = आप सब लोगों की, करुणा = अनुकम्पा, वृथा = अर्थहीन है।

अनुवाद–(राम संपूर्ण शोकाकुल गुरुजनों को लक्ष्य करके कहते हैं–) राम–जनककुल के और रघुकुल के नृपतियों के लिए जो (जानकी) संपूर्ण रूप से वंश-कल्याण-विधायिनी थीं, उस (जानकी) के प्रति भी दया-शून्य एवं पापी मुझ (राम) पर (सहानुभूतिवश अथवा स्नेहवश अनुकम्पा प्रदर्शित करते हुए) आप सब लोगों की अनुकम्पा-वृत्ति अर्थहीन एवं (व्यर्थ) है।

अच्छा, मैं इन सब लोगों का (अगवानी द्वारा) अभी स्वागत-सत्कार करता हूँ।

कुशलवौ–इत इतस्तातः।

(सकरुणाकुलं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकवि श्री भवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कुमार प्रत्यभिज्ञानं नाम षष्ठोऽङ्कः।

कुश और लव–तात, इधर से आइए, इधर से।

(शोक-व्याकुलता के सहित चारों ओर घूमकर सभी का प्रस्थान)

महाकवि श्री भवभूतिविरचित उत्तररामचरित में 'कुमार-प्रत्यभिज्ञान' नामक षष्ठ अङ्क समाप्त।

सप्तमोंऽकः

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः–भोः, अद्य खलु भगवता वाल्मीकिना सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः प्रजाः सहास्माभिराहूय कृत्स्न एव सदेवासुरतिर्यङ्निकायः सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण संनिधापितः। आदिष्टश्चाहमार्येण-'वत्स-लक्ष्मण, भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्मः। गङ्गातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियतां समाजसन्निवेशः' इति। कृतश्च मर्त्यामर्त्यस्य भूतग्रामस्य समुचितस्थान-सन्निवेशो मया। अयं तु–

(तदन्तर लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

लक्ष्मण–हे लोगो! आज भगवान् वाल्मीकि ने हम सबके समेत ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, नगरवासी तथा ग्रामवासी लोगों सहित (समस्त) प्रजा को बुलाकर देव, राक्षस एवं पशुओं और पक्षियों के समूह के साथ संपूर्ण स्थावर और जंगम प्राणियों के समुदाय को अपने (तप के) प्रभाव से अपने निकट एकत्र कर लिया है। आर्य (राम) ने मुझे आदेश दिया है कि–'प्रिय लक्ष्मण! भगवान् वाल्मीकि ने अप्सराओं द्वारा अभिनीत की जाने वाली अपनी रचना (रामायण) को देखने हेतु हम सबको निमन्त्रित किया है। अतः गंगा जी के तट पर रंगभूमि में पहुँचकर दर्शक समाज को यथायोग्य बैठाने का प्रबंध करो।' मैंने (उनकी आज्ञानुसार) मानवों तथा देवों आदि (समस्त) प्राणि-समुदाय के यथास्थान बैठने–(बैठाने) का यथोचित् प्रबंध कर दिया है। यह तो–

राज्याश्रमनिवासोऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः।
वाल्मीकिगौरवादार्य इत एवाभिवर्तते।।1।।

अन्वय–राज्याश्रमनिवासः अपि प्राप्तकष्ट मुनिव्रतः आर्यः वाल्मीकि गौरवात्, इत एव अभिवर्तते।।1।।

शब्दार्थ–राज्याश्रम = राज्य रूपी आश्रम में, निवासः अपि = निवास करते हुए भी, प्राप्त = प्राप्त (स्वीकार) किया है, कष्ट = कष्टप्रद, मुनिव्रतः = मुनियों का व्रत जिस (राम) ने, वह, आर्यः = आर्य (राम), वाल्मीकि = महर्षि वाल्मीकि

के प्रति, गौरवात् = आदर-भाव होने के कारण, इत एव = इधर (की ओर) ही, अभिवर्तते = आ रहे हैं।

अनुवाद–लक्ष्मण रंगशाला की ओर आते हुए आर्य राम का वर्णन करते हुए कहते हैं–

राज्य रूपी आश्रम में निवास करते हुए भी (निवासशील होने पर भी) कष्टजनक, मुनियों के व्रत (त्यागी तपस्वी जीवन) का पालन करने वाले आर्य (राम) महर्षि वाल्मीकि के प्रति (अपना) आदर-भाव होने के कारण इधर (रंगशाला की ओर) ही आ रहे हैं।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः–वत्स लक्ष्मण, अपि स्थिता रङ्गप्राश्निकाः ?

राम–प्रिय लक्ष्मण, क्या नाट्यशाला के विशेष ज्ञाता विद्वान् लोग (उचित-स्थान पर) बैठ गए हैं ?

लक्ष्मणः–अथ किम् ?

लक्ष्मण–और क्या ? (अर्थात् जी हाँ, बैठ गए हैं)

रामः–इमौ पुनर्वत्सौ कुश-लवौ कुमार चन्द्रकेतुसमां प्रतिपत्तिं लम्भयितव्यौ।

राम–इन दोनों प्रिय बालकों कुश तथा लव को कुमार चन्द्रकेतु के तुल्य ही आदर योग्य स्थान पर बैठाना।

लक्ष्मणः–प्रभुस्नेहप्रत्ययात्तथैव कृतम्। इदं चास्तीर्णं राजासनम् तदुपविशत्वार्यः।

लक्ष्मण–(इन दोनों वत्सों के विषय में) आपके प्रेम का (पूर्व-) ज्ञान होने से मैंने (पहले ही से) वैसा ही किया है। यह राजा के योग्य आसन भी बिछा हुआ है, आर्य, (आप) इस पर विराजें।

रामः–(उपविश्य) प्रस्तूयतां भोः।

राम–(बैठकर) अच्छा, अब (अभिनय) प्रारम्भ करो।

सूत्राधारः–(प्रविश्य) भगवान्भूतार्थवादी प्राचेतसः स्थावरजङ्गमं जगदाज्ञापयति–यदिदमस्भाभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धम्, तत्र काव्यगौरवाद-वधातव्यमिति।

सूत्राधर–(प्रवेश करके) घटित घटनाओं के सत्य (यथार्थ) वादी भगवान् वाल्मीकि चर और अचर संसार को आज्ञा देते हैं कि–हमने ऋषि-जनेचित दिव्य दृष्टि द्वारा भलीभाँति देखकर करुण तथा अद्भुत रस से समन्वित, पावन एवं सुधामय वचनों से युक्त कुछ काव्य-निर्माण किया है। (अतएव) काव्य के प्रति समादर भाव से आप सब उस (काव्य) पर ध्यान दें।

रामः–एतदुक्तं भवति, साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः। तेषामृतंभराणि भगवतां परोरजांसि प्रज्ञानानि न क्वचिद् व्याहन्यन्त इति नहि शङ्कनीयानि।

राम–यह कहा जाता है कि–महर्षिजन धर्म (ब्रह्म) का साक्षात्कार किए होते हैं। (अतएव) उन ऐश्वर्यशाली महर्षिजनों के, वास्तविकता-(यथार्थ अथवा-सत्य) से परिपूर्ण तथा रजोगुण से शून्य, प्रकृष्ट ज्ञान कहीं पर (भी) बाधित (असिद्ध अथवा विरुद्ध) नहीं होते हैं, इस विषय में किसी प्रकार की आशङ्का (कभी) नहीं करनी चाहिए।

(नेपथ्ये)

हा आर्य पुत्र, हा कुमार लक्ष्मण, एकाकिनीमशरणामासन्नप्रसववेदनामरण्ये हताशां श्वापदा मामभिलषन्ति। हा, इदानीं मन्दभाग्या भागीरथ्यामात्मानं निक्षिपामि।

(हा अज्जउत्त, हा कुमार लक्खण, एआइणिं असरणं आसण्णप्पसववेअणं अरण्णे हदासं सावदा मं अहिलसंदि। हा, दाणिं मंद भाइणी भाई रहीए अत्ताणं णिक्खिविस्सं।)

(नेपथ्य में)

हा आर्य पुत्र! हा कुमार लक्ष्मण! अकेली, सहायहीन, निकटवर्ती प्रसव वेदना से युक्त और (इस) जंगल में (प्राणों के प्रति) आशाहीन मुझे हिंसक प्राणी खा जाना चाहते हैं। हाय, मैं भाग्यहीना अब स्वयं को गंगा में बहाए देती हूँ।

लक्ष्मणः–कष्टं बतान्यदेव किमपि।

लक्ष्मण–बड़े दुःख का विषय है कि यह कुछ अन्य ही है। (अर्थात् यहाँ कोई अन्य ही प्रसंग उपस्थित है)

सूत्रधारः–

विश्वम्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुञ्चति।।1।।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रस्तावना।

अन्वय–विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा महावने त्यक्ता प्राप्तप्रसवम् आत्मानं गङ्गादेव्यां विमुञ्चति।।1।।

शब्दार्थ–विश्वम्भरा = पृथ्वी की, आत्मजा = पुत्री, देवी = महारानी (सीता), राज्ञा = महाराज रामचन्द्र के द्वारा, महावने = घोर जंगल में, त्यक्ता = छोड़ दी गई है, (अतः), प्राप्त प्रसवम् = उत्पन्न गंगा नदी में, विमुञ्चति = छोड़ रही है, अर्थात् गंगा में कूद कर प्राण त्याग कर कर रही है।

सूत्रधार–

अनुवाद–गर्भाङ्क का सूत्रधार गङ्गा नदी में सीता के कूदने की सूचना देते हुए कहता है–पृथ्वी की पुत्री महारानी सीता महाराज रामचन्द्र के द्वारा भयङ्कर वन

में त्याग दी जाने पर प्रसव-पीड़ा से पीड़ित होकर अपने को गङ्गा जी में छोड़ रही है।

(यह कहकर चला जाता है)

रामः–(सावेगम्) देवि देवि, लक्ष्मणमवेक्षस्व।

राम–(भय से उत्पन्न उद्विग्नता के साथ) हे देवी, हे देवी, लक्ष्मण को देखो। (अर्थात् निरपराधी लक्ष्मण की प्रतिष्ठा और प्राणों की रक्षा के विचार से गंगा में कूदकर प्राण न दो)

लक्ष्मणः–आर्य, नाटकमिदम्।

लक्ष्मण–आर्य यह (तो) नाटक है।

रामः–हा देवि दण्डकारण्यवास प्रियसखि, एष ते रामाद् विपाकः।

राम–हा देवी, दण्डक वन में प्रवास-काल की प्रियसंगिनि! तुम्हारी यह दुर्दशा राम के (ही) कारण हुई है।

लक्ष्मणः–आर्य, आश्वस्य दृश्यताम्। प्रबन्धस्त्वार्षः।

लक्ष्मण–आर्य, धीरज रख कर देखें। यह (तो) ऋषि-रचित दृश्य-काव्य है।

रामः–एष सज्जोऽस्मि वज्रमयः।

राम–(लो) यह मैं वज्र-सा (कठोर राम अब नाटक देखने को) तैयार हूँ।

(ततः प्रविशति उत्सङ्गितैकैकदारकाभ्यां पृथ्वी गंगाभ्यामवलम्बिता प्रमुग्धा सीता)

तत्पश्यात् एक-एक बालक को गोद में धारण किए हुए देवी पृथ्वी तथा गंगा देवी द्वारा सहारा दी गई मूर्च्छित दशा में सीता का प्रवेश होता है)

रामः–वत्स, असंविज्ञातपदनिबन्धने तमसीवाहमद्य प्रविशामि, धारय माम्।

राम–प्रिय लक्ष्मण! आज मैं (ऐसे) अंधकार में प्रविष्ट हो रहा हूँ, जिसमें पैर टिकाने के आधार पर भी मुझे पता नहीं है। (अतः) मुझे सहारा दो।

देव्यौ–

समाश्वसिहि कल्याणि! दिष्ट्या वैदेहि! वर्धसे।
अन्तर्जले प्रसूतासि रघुवंशधरौ सुतौ।।3।।

अन्वय–हे कल्याणि! वैदेहि! समाश्वसिहि। दिष्ट्या वर्धसे। अन्तर्जले रघुवंशधरौ सुतौ प्रसूता असि।

शब्दार्थ–हे कल्याणि = हे मंगलमयी, वैदेहि = जानकी, समाश्वसिहि = धीरज रखो, तुम दिष्ट्या = सौभाग्य से, वर्धसे = बढ़ रही हो (अर्थात् तुम्हें बधाई है) अन्तर्जले = जल के भीतर (तुमने), रघुवंशधरौ = रघुकुल को धारण करने वाले, सुतौ = दो पुत्रों को, प्रसूताअसि = उत्पन्न किया (= जन्म दिया) है।

अनुवाद–दोनों देवियाँ-गंगा और पृथ्वी पुत्र युगल को उत्पन्न करने वाली सीता

के सौभाग्य की प्रशंसा में कहती हैं–हे मङ्गलमयी जानकी, तुम धीरज धारण करो। तुम (अपने) सौभाग्य से बढ़ रही हो (अर्थात) तुम बधाई की पात्र हो, क्यों कि तुमने) जल के भीतर रघुकुल (की प्रतिष्ठा) को धारण करने (= बढ़ाने) वाले दो पुत्रों को उत्पन्न किया है।

सीता–(आश्वस्य) दिष्ट्या दारकौ प्रसूतास्मि। हा आर्य पुत्र! (दिट्ठिआ दारए प्पसूदम्हि। हा अज्जउत्त!)

सीता–(होश में आकर) मैंने भाग्य से दो शिशुओं को (ही) उत्पन्न किया है। हा आर्य पुत्र!

लक्ष्मणः–(पादयोर्निपत्य) आर्य, दिष्ट्या वर्धामहे। कल्याणप्ररोहो रघुवंशः। (विलोक्य) हा, कथं क्षुभितवाष्पोत्पीडनिर्भरः प्रमुग्ध एवार्यः।

(बीजयति)

लक्ष्मण–(चरणों पर गिरकर) आर्य, हम सब सुभाग्य से बढ़ रहे हैं। रघुवंश शुभाङ्कर-संपन्न हो गया है। (देखकर) हा, बहते आंसुओं से व्याकुल आर्य (राम) क्या मूर्छित ही हो गए ?

(पंखे से हवा करता है)

देव्यौ–वत्से, समाश्वसिहि।

दोनों देवियाँ–हे पुत्री, धीरज धरो।

सीता–(समाश्वस्य) भगवत्यौ, के युवाम् ? मञ्चतम्। (भअव-दीओ, कां तुम्हें ? मुञ्चह।)

सीता–(भलीभाँति होश में आकर) हे देवियो आप दोनों कौन हैं ? (मुझे) छोड़ दीजिए।

पृथिवी–इयं ते श्वसुरकुलदेवता भागीरथी।

पृथिवी–यह तुम्हारे श्वसुर (दशरथ) के वंश की कुलदेवता पूज्य भागीरथी (गंगा) हैं।

सीता–नमस्ते भगवति! (णमो दे भअवदि।)

सीता–हे भगवती, आपको नमस्कार है।

भागीरथी–चारित्रोचितां कल्याण संपदमधिगच्छ।

भागीरथी–(अपने) चरित्र (पातिव्रत्य) के अनुकूल शुभ-सम्पत्ति प्राप्त करो।

लक्ष्मणः–अनुगृहीताः स्मः।

लक्ष्मण–हम (आपके) अनुगृहीत हैं।

भागीरथी–इयं ते जनगी विश्वंभरा।

भागीरथी–यह तुम्हारी माता पृथ्वी हैं।

सीता–हा अम्ब, ईदृश्यहं त्वया दृष्टा। (हा अंब, ईरिसि अहं तुए दिट्ठा!)

सीता–हा जननि! मुझे आपने ऐसी दशा में देखा।

पृथिवी–एहि पुत्रि, वत्से सीते!

पृथिवी–प्रिय पुत्री सीता आओ (आलिङ्गन करो)

(उभौ आलिङ्ग्य मूर्च्छतः)

(दोनों आलिङ्गन करके बेहोश हो जाती हैं)

लक्ष्मणः–(सहर्षम्) कथमार्यागंगापृथिवीभ्यामभ्युपन्ना ?

लक्ष्मण–(हर्ष सहित) क्या बात है कि आर्या (सीता) गंगा और पृथ्वी के द्वारा अनुगृहीत (अनुकम्पित) हुई हैं ?

रामः–दिष्ट्या खल्वेतत्। करुणान्तरं तु वर्तते।

राम–ऐसा (तो) सौभाग्य से (सम्भव) हुआ है। किंतु यह अन्य करुणाजनक दृश्य है।

भागीरथी–अत्रभवती विश्वंभरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन। यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः। सखि, भूतधात्रि, वत्से वैदेहि, समाश्वसिहि।

भागीरथी–विश्व को धारण करने वाली पूज्या भगवती पृथिवी भी व्यथा का अनुभव कर रही है, अतः (निःसंदेह) सन्तान-स्नेह (सर्वथा) विजयी हुआ है। अथवा यह (अपत्य प्रेम) सब प्राणियों में समान-रूप से रहने वाला, मन का मोह रूपी बन्धन है, जीवमात्र की मानसिक चंचलता का हेतु है, तथा संसार-धारा को जोड़े रखने वाला धागा (तन्तु) है, (संसार में प्राणियों को परस्पर बाँधे रखने का सूत्र है।) हे सखी, हे जीव-मात्र को धारण करने वाली पृथ्वी, हे पुत्री जानकी! धीरज रखो।

पृथिवी–(आश्वस्य) देवि, सीतां प्रसूय कथमाश्वसिमि ?

पृथिवी–(मूर्च्छा से जागकर) हे देवि! सीता को जन्म देकर मैं धैर्य कैसे धारण करूँ ? (अर्थात् सीता की जननी को तो आजीवन ही अधीर रहना लिखा है।

(अ) सोढश्चिरं राक्षसमध्यवास–
स्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः।

भागीरथी–

(आ) को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तु–
द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे।।4।।

अन्वय–(अ) अस्याः राक्षसमध्यवासः चिरं सोढः तु द्वितीयः त्यागः सुदृसहः। (आ) कः नाम जन्तुः पाकाभिमुखस्य देवस्य द्वाराणि पिधातुम् ईष्टे।।4।।

शब्दार्थ–अस्याः = इस (सीता) का, राक्षसमध्यवासः = **राक्षसों के बीच रहना** (मैं ने), चिरम् = बहुत काल तक, सोढ़ः = सहन किया, तु = किंतु द्वितीया =

दूसरा अर्थात् राम के द्वारा किया गया, त्यागः = (इसका) परित्याग, सुदुःसहः = सर्वथा असहनीय है।

भागीरथी = गङ्गा जी कहती हैं कि-कः = कौन नाम = ऐसा जन्तुः = जन्तु है, जो, पाकाभिमुखस्य = फलोन्मुख, अथवा परिणाम की ओर अग्रसर, दैवस्य = भाग्य के, द्वाराणि = द्वार को, पिधातुम् ईष्टे = बन्द कर देने का साहस करता है, (अर्थात् भवितव्यता को टालना असम्भव है।)

अनुवाद–पृथ्वी देवी अपनी पुत्री के राम-कृत परित्याग रूपी दुःख को असह्य बताती हैं–

(अ) राक्षसों के मध्य इसके निवास को मैंने बहुत दिनों तक सहन कर लिया, किंतु इसका (राम के द्वारा किया गया) दूसरा परित्याग रूपी दुःख तो सर्वथा असहनीय है।

(आ) भागीरथी-वस्तुतः कौन ऐसा प्राणी है, जो कि परिणाम (–कर्म फल की परिपक्वावस्था) की ओर अग्रसर (फलोन्मुख) भाग्य के द्वार को बन्द कर सकता है ? (अर्थात् भवितव्यता को टालना सबके लिए असंभव है।)

पृथिवी–भगवति भागीरथि, युक्तमेतत्सर्वं वो रामभद्रस्य।

पृथिवी–हे भगवति! गंगे! आपके रामभद्र का यह सब आचरण (व्यवहार) क्या उचित है ?

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
नाहं न जनको नाग्निर्न तु वृत्तिर्न संततिः।।5।।

अन्वय–बाल्ये बालेन पीडितः पाणिः न प्रमाणीकृतः। न अहम्, न जनकः, न अग्निः, न वृत्तिः, न तु संततिः।।5।।

शब्दार्थ–बाल्ये = बाल्यावस्था में, बालेन = बालक (राम) ने, पीडितः ग्रहण = किए गए, पाणिः = (सीता के) हाथ को, (भी, अर्थात् सीता पाणि-ग्रहणसंस्कार को भी) न = नहीं, प्रमाणीकृतः = प्रमाणरूप से स्वीकार किया) न अहम् = न मुझको, न जनकः = न जनक को, न अग्निः = न अग्नि को, न वृत्तिः = न (सीता के शुद्ध) चरित्र को, न तु संततिः = और न ही अपनी सन्तान को (प्रमाण रूप में स्वीकार किया)।

अनुवाद–पृथ्वी राम के आचरण के संबंध में भागीरथी को उलाहना देती हुई कहती हैं–बालक (राम) ने बाल्यावस्था में किए गए (जानकी के) पाणिग्रहण-संस्कार को भी प्रमाण के रूप में नहीं स्वीकार किया, और उसने न मुझे, न जनक को, न अग्नि को, न (जानकी के शुद्ध) चरित्र को तथा न (अपनी) सन्तति को ही माणरूप में स्वीकार किया।

(आशय यह है कि राम ने उपर्युक्त में से किसी का भी ध्यान नहीं रखा)।।5।।

सीता–हा आर्यपुत्र, स्मरसि ? (हा अज्ज उत्त, सुमरेसि ?)

सीता–हा आर्यपुत्र! क्या आपको मेरा स्मरण है ?

पृथिवी--आः, कस्तवार्य पुत्रः ?

पृथिवी--ओह, आर्यपुत्र (राम) तुम्हारा कौन (होता) है ? (अर्थात राम से अब तुम्हें क्या प्रयोजन है ?)

सीता–(सलज्जास्रम्) यथाऽम्बा भणति (जह अंबा भणादि।)

सीता–(लज्जा तथा आँसुओं समेत) माता जी जैसा कहती हैं, वैसा ही ठीक है। (अर्थात् वस्तुतः राम से अब मेरा कोई संबंध नहीं रहा)।

रामः--अम्ब पृथिवी! ईदृशोऽस्मि।

राम–माता पृथिवी, (वस्तुतः) मैं ऐसा ही हूँ।

(अर्थात् सीता द्वारा आर्यपुत्र कहलाने योग्य नहीं हूँ)

भागीरथी--भगवति वसुन्धरे, शरीरमसि संसारस्य। तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि ?

भागीरथी–हे भगवति पृथिवी! आप संसार के शरीररूप में हो। अतः क्यों अनजान के समान अपने जामाता (दामाद-राम) पर कोप कर रही हो। कारण मैं वस्तुतः ऐसा ही हो गया हूँ कि सीता से मेरा अब कोई संबंध नहीं रहा। **सलज्जास्रम्**-का भाव है–पृथ्वी की दृष्टि में अपराधीपति (राम) का स्मरण किए जाने से लज्जा का अनुभव हुआ, और 'न प्रमाणी-कृतः.' इत्यादि सुनकर बीते दिनों की सुखद-स्मृति का आज की दुःखद-परिस्थिति में स्मरण हो आना ही आँसुओं के निकलने का कारण बना।

घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि-
लङ्काद्वीपे कथमिव जनस्तामिह श्रद्दधातु।
इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः
कृत्स्नो लोकस्तदिह विषमे किं स वत्सः करोतु।।6।।

अन्वय--लोके घोरम् अयशः विततम्, या च लङ्काद्वीपे वह्नौ विशुद्धिः ताम् इह जनः कथमिव श्रद्धातु। इक्ष्वाकूणाम् इदं कुलधनं यत् कृत्स्नः लोकः समाराधनीयः तत् इह विषमे सः वत्सः किं करोतु।।6।।

शब्दार्थ--लोके = संसार में, घोरम् = भीषण, अयशः = अयश (अकीर्ति), विततम् = फैल चुका था। या च = और जो, लङ्काद्वीपे = लङ्काद्वीप में, वह्नौ = अग्नि (परीक्षा) में, विशुद्धिः = (सीता की) निर्दोषता (सिद्ध हुई थी), ताम् = उस पर, इह = यहाँ, जनः = साधारण लोग, कथमिव = किस प्रकार, श्रद्धातु = विश्वास करें। इक्ष्वाकूणाम् = इक्ष्वाकु कुल के राजाओं का, इदम् = यह, कुलधनम् = वंशपरम्परा से प्राप्त धन (संपत्ति) है, यत् = कि, कृत्स्नः = संपूर्ण, लोकः =

लोगों को, (प्रजा को), समाराधनीयः = प्रसन्न रखा जाए। तत् = इसलिए, इह = ऐसी, विषमे = विषम परिस्थिति में, सः = वह, वत्सः = बालक (निरुपाय राम), किं करोतु = (सीता-परित्याग के अतिरिक्त और) क्या करता ?।।

अनुवाद–भगवती भागीरथी राम की उस विवशता का वर्णन कर रही है, जिससे बाध्य होकर उन्हें सीता परित्याग करना पड़ा–संसार में (प्रायः सर्वत्र) भीषण अपयश (अकीर्ति-निन्दा) फैल चुकी थी, और जो लङ्काद्वीप में अग्नि-परीक्षा में सीता की निर्दोषता प्रमाणित हुई थी, उस पर यहाँ (अयोध्या में रहने वाले) साधारण लोग किस प्रकार विश्वास करें ? (इसके अतिरिक्त) इक्ष्वाकु कुल के राजाओं का यह वंश-परंपरा से प्राप्त (चला आया हुआ) धन (नैतिक कर्त्तव्यरूपी संपत्ति) है कि संपूर्ण लोगों (प्रजा) को प्रसन्न (ही)। रखा जाए। इसलिए ऐसी विषम परिस्थिति में वह (निरुपाय) बालक (राम, सीता-परित्याग के अतिरिक्त और) क्या करता ?।।6।।

लक्ष्मणः–अव्याहतान्तः प्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु।

लक्ष्मण–देवता लोग निश्चय ही प्राणियों के विषय में अवाधित रूप से (उनके) आन्तरिक भावों का ज्ञान प्राप्त किए रहते हैं।

भागीरथी–तथाऽप्येष तेऽञ्जलिः।

भागीरथी–फिर भी मैं आपको हाथ जोड़ती हूँ।

(अर्थात् निर्दोष होने पर भी राम पर अनुग्रह करने हेतु मैं आपको प्रणाम करती हूँ)

पृथिवी–देवि, नित्यं प्रसन्नास्मि तव। किं त्वसावापात दुःसहः स्नेहूसंवेगः। न पुनर्न जानामि सीतास्नेहं रामभद्रस्य।

पृथिवी–हे देवी भागीरथी! मैं आपसे सर्वदा प्रसन्न हूँ, किंतु यह स्नेहजन्य क्षोभ आरंभ के क्षणों में अत्यधिक असहनीय होता है। सीता के विषय में राम के प्रेम को मैं नहीं जानती हूँ, ऐसा नहीं है। (अर्थात् मैं उनके परस्पर प्रेम को जानती हूँ)।

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय सः।
लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति।।7।।

अन्वय–स दह्यमानेन मनसा दैवात् वत्सां विहाय लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैः च जीवति।।7।।

शब्दार्थ–सः = वह (राम), दह्यमानेन = अत्यंत संतप्त, मनसा = हृदय से, दैवात् = दुर्भाग्यवश, वत्साम् = पुत्री (सीता) को, विहाय = छोड़कर, लोकोत्तरेण = अलौकिक, सत्त्वेन = धैर्य से, प्रजापुण्यैः च = और प्रजाओं के पुण्यों से, जीवति = जीवित है।

अनुवाद–पृथिवी देवी राम और सीता के प्रेम का प्रमाण उपस्थित करती हुई

कहती हैं–वह (राम) अत्यंत संतप्त हृदय से दुर्भाग्यवश पुत्री (सीता) को छोड़कर अलौकिक धैर्य से तथा प्रजाओं के पुण्य से (ही) जीवित है। (अर्थात् यदि धैर्य तथा प्रजापुण्य का सहारा न प्राप्त होता तो सीतावियोग से राम का मरण ही हो जाता)।

रामः–सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु।

राम–गुरुजन (अपनी) सन्तान के समान (हम सब) पर दयालु हैं।

सीता–(रुदती कृताञ्जलिः) नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा (णेदु मं अत्तणो अंगेषु विल अं अंबा।)

सीता–(रुदन करती हुई हाथ जोड़कर) हे जननि! मुझे अपने अङ्गों में विलीन कर लीजिए।

भागीरथी–किं ब्रवीषि ? अविलीना वत्से, संवत्सरसहस्राणिभूयाः।

भागीरथी–पुत्री, क्या कह रही हो ? तुम सहस्रों वर्षों तक विलीन हुए बिना जीवित रहो।

पृथिवी–वत्से! अवेक्षणीयौ ते पुत्रौ।

पृथिवी–पुत्री! तुम्हें इन दोनों पुत्रों की देखभाल (पालन-पोषण) करना है। (अतः तुम्हारी यह प्रार्थना अभी अनुचित है)

सीता–किमेताभ्यामनाथाभ्याम् ? (किं एहि अणाहेहि)।

सीता–इन अनाथ बालकों से मुझे क्या प्रयोजन ?

रामः–हृदय, वज्रमसि।

राम–हृदय! तू (निःसन्देह) वज्र (ही) है।

भागीरथी–कथं वत्सौ सनाथावप्यनाथौ ?

भागीरथी–सनाथ होते हुए भी ये दोनों पुत्र अनाथ कैसे हुए ? (अर्थात् तुमने इन्हें अनाथ कैसे कहा ?)

सीता–कीदृशं मे अभाग्यायाः सनाथत्वम् ? (कीरिसं मे अभग्गाए सणाहत्तणं ?)

सीता–मुझ अभागिनी का (भी सनाथत्व कैसे ?
(अर्थात् मैं अभागिनी भी तो सनाथ नहीं हूँ)

देव्यौ–जगन्मङ्गलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे।
आवयोरपि यत्सङ्गात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते।।8।।

अन्वय–त्वं जगन्मङ्गलम् आत्मानं कथम् अवमन्यसे। यत्सङ्गात् आवयोः अपि पवित्रत्वं प्रकृष्यते।।8।।

शब्दार्थ–त्वम् = तुम, जगन्मङ्गलम् = संसार के लिए मङ्गलकारी, आत्मानम् = अपने आपको, कथम् = क्यों अवमन्यसे = अपमानित कर रही हो। यत्सङ्गात्

= जिस तुम्हारे संसर्ग के कारण, आवयोः अपि = हम दोनों (पृथ्वी और भागीरथी) की भी, पवित्रत्वम् = पवित्रता, प्रकृष्यते = उत्कृष्ट हो रही है।

अनुवाद–सीता को स्वयं का तिरस्कार करने से मना करती हुई गंगा और पृथ्वी कहती हैं–दोनों देवियाँ–तुम संसार के लिए कल्याणकारी अपने आपको क्यों अपमानित कर रही हो ? (क्योंकि) जिस तुम्हारे (शरीर के) संसर्ग से हम दोनों (पवित्र देवियों) की भी पवित्रता उत्कृष्ट हो रही है।।8।।

लक्ष्मणः–आर्य, श्रूयताम्।

लक्ष्मण–आर्य! सुनिए।

रामः–लोकः श्रृणोतु।

राम–लोग सुनें।

(नेपथ्ये कलकलः)

(नेपथ्य में कोलाहल)

रामः–अद्भुततरं किमपि।

राम–यह कोई विशेष आश्चर्यजनक बात है।

सीता–किमित्याबद्धकलकलं प्रज्वलितमन्तरिक्षम् ? (किं त्ति आबद्ध कलकलं पज्जलिअं अंतरिक्खं ?)

सीता–क्या कारण है कि आकाश कोलाहलपूर्ण तथा प्रकाशयुक्त हो रहा है ?

देव्यौ–ज्ञातम्।

दोनों देवियाँ–(अच्छा) समझ गईं।

कृशाश्वः कौशिको राम इति येषां गुरुक्रमः।
प्रादुर्भवन्ति तान्येव शस्त्राणि सह जृम्भकैः।।9।।

अन्वय–कृशाश्वः कौशिकः रामः इति येषां गुरुक्रमः, तानि एव शस्त्राणि जृम्भकैः सह प्रादुर्भवन्ति।।9।।

शब्दार्थ–कृशाश्व = जृम्भक नामक अस्त्रों का आविष्कार करने वाले कृशाश्व मुनि, कौशिकः = विश्वामित्र, रामः = रामचन्द्र, इति = इस प्रकार, येषाम् = जिन शस्त्रों एवं अस्त्रों की, गुरुक्रमः = गुरुपरंपरा है, तानि एव शस्त्राणि = वे ही शस्त्र, जृम्भकैः सह = जृम्भक नामक अस्त्रों के साथ, प्रादुर्भवन्ति = प्रकट हो रहे हैं।

अनुवाद–दोनों देवियाँ प्रकट हो रहे अस्त्रों तथा शस्त्रों की गुरु-परंपरा का उल्लेख कर रही हैं :–

कृशाश्व, विश्वामित्र तथा रामचन्द्र–इस प्रकार जिन (शस्त्रास्त्रों) की परंपरा है, वे ही शस्त्र जृम्भक नाम वाले अस्त्रों के साथ प्रकट हो रहे हैं।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

देवि सीते! नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हि ते।
आलेख्यदर्शनादेव ययोर्दाता रघूद्वहः।।10।।

अन्वय–हे देवि! सीते ते नमः अस्तु, हि ते पुत्रकौ नः गतिः, आलेख्य-दर्शनात् एव रघूद्वहः ययोः दाता।।10।।

शब्दार्थ–हे देवि सीते = हे देवी सीता, ते = तुम्हारे लिए, नमः अस्तु = नमस्कार हो, हि = क्योंकि, ते = तुम्हारे, पुत्रकौ = दोनों पुत्र (कुश और लव) नः = हमारे, गतिः = आश्रय हैं। आलेख्य = चित्रों के, दर्शनात् एव = देखने के समय से ही, रघूद्वहः = रामचन्द्र, ययोः = जिन दोनों तुम्हारे पुत्र कुश व लव के लिए, दाता = (हमें) प्रदान करने वाले हैं।

अनुवाद–नेपथ्य से जृम्भकास्त्र बोल रहे हैं–

हे देवी सीता, आपको प्रणाम है, क्योंकि आपके दोनों छोटे-छोटे पुत्र ही हमारे आश्रय हैं। चित्र के देखने के समय से ही महाराज रामचन्द्र ने हमें जिन दोनों (कुश तथा लव) को सौंप दिया है। (अर्थात् राम ने चित्र-दर्शन के समय ही हमें इन दोनों गर्भस्थ बालकों के लिए समर्पित कर दिया था)।।10।।

रघूद्वहः.–रघुकुल के नेता अर्थात् रामचन्द्र। रघु+उत्+वह+अच्+ कर्त्ता अर्थ में।

सीता–दिष्ट्या अस्त्रदेवता एताः। हा आर्यपुत्र! अद्यपि ते प्रसादाः परिस्फुरन्ति। (दिट्ठिआ अत्थदेवदाओ एदाओ। हा अज्ज उत्त, अज्जावि द पसादा पडिप्फुरंदि।)

सीता–यह सौभाग्य है कि ये अस्त्रदेवता (पधारे) हैं। हा आर्यपुत्र! आज भी आपके अनुग्रह प्रकट हो रहे हैं।

लक्ष्मणः–उक्तमासीदार्येण सर्वथैतानि त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्तीति।

लक्ष्मण–आर्य ने कहा था कि–ये अस्त्र संपूर्ण रूप से तुम्हारी संतान को प्राप्त होंगे।

देव्यौ–नमो वः परमास्त्रेभ्यो धन्याः स्मो वः परिग्रहात्।
काले ध्यातैरुपस्थेयं वत्सयोर्भद्रमस्तु वः।।11।।

अन्वय–परमास्त्रेभ्यः वः नमः, वः परिग्रहात् धन्याः स्मः। काले ध्यातैः वत्सयोः उपस्थेयम्, वः भद्रम् अस्तु।।11।।

शब्दार्थ–परमास्त्रेभ्यः = उत्तम अस्त्ररूपधारी, वः = आप लोगों (जृम्भक आदि आयुध-विशेषों के अधिष्ठातृ देवों) को, नमः = नमस्कार (प्रणाम) है। वः = आप सबके, परिग्रहात् = ग्रहण करने से, धन्याः स्मः = (हम सब) धन्य हो गए हैं।

काले = यथोचित समय पर, ध्यातैः = ध्यान किए जाने पर (आप लोग), वत्सयोः = (इन दोनों) बालकों (लव-कुश) के, उपस्थेयम् = पास आ जाया करें। वः = आप लोगों का, भद्रम् = कल्याण, (मङ्गल) अस्तु = हो।।

अनुवाद–गंगा और पृथ्वी जृम्भकास्त्रों को प्रणाम करती हुई उनसे लव तथा कुश के अनुकूल रहने की प्रार्थना करती हैं–

दोनों देवियाँ–उत्तम अस्त्ररूपधारी आप लोगों (जृम्भक-आदि आयुध-विशेषों के अधिष्ठातृदेवों) को नमस्कार है। आप सबके ग्रहण करने से हम सब धन्य हो गए हैं। यथोचित समय पर ध्यान किए जाने पर (आप लोग इन) दोनों बालकों (लव-कुश) के पास आ जाया करें। आप लोगों का कल्याण (मङ्गल) हो।।11।।

रामः–**क्षुभिताः कामपि दशां कुर्वन्ति मम सम्प्रति।**
विस्मयानन्दसंदर्भजर्जराः करुणोर्मयः।।12।।

अन्वय–सम्प्रति, क्षुभिताः विस्मयानन्दसंदर्भ जर्जराः करुणोर्मयः मम काम् अपि दशां कुर्वन्ति।

शब्दार्थ–सम्प्रति = इस समय, क्षुभिताः = क्षोभ को प्राप्त हुई, विस्मय = आश्चर्य, आनन्द = (तथा) हर्ष के, सन्दर्भ = सम्मिश्रण से, जर्जराः = जीर्ण हुए, करुणोर्मयः = शोक (रूपी सागर) की लहरें, मम = मेरी (= राम की) काम् अपि = अकथनीय अथवा अवर्णनीय, दशाम् = अवस्था, कुर्वन्ति = कर रही हैं।

अनुवाद–राम अपनी करुण दशा का वर्णन कर रहे हैं–

राम–इस समय क्षोभ को प्राप्त हुई और आश्चर्य तथा हर्ष के सम्मिश्रण से जर्जर शोक (रूपी सागर) की लहरें मेरी अवर्णनीय दशा (उत्पन्न) कर रही हैं।

देव्यौ–मोदस्व वत्से, मोदस्व। रामभद्रतुल्यौ ते पुत्रकावीदानीं संवृत्तौ।

दोनों देवियां–पुत्री, आनन्दित हो, आनन्दित हो। अब तुम्हारे दोनों पुत्र रामभद्र के समान हो गए हैं।

सीता–भगवत्यौ, क एतयोः क्षत्रियोचित विधिं कारयिष्यति ? (भअवदीओ, को एदाणं खत्ति ओइ दविहिं कारइस्सीदं ?)

सीता–हे दोनों भगवती देवियो! इन दोनों (क्षत्रिय पुत्रों) का क्षत्रियों के योग्य संस्कार कौन कराएगा ?

रामः–एषा वशिष्ठशिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी।
कष्टं सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति।।13।।

अन्वय–वसिष्ठशिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी एषा सीता अपि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति, कष्टम्।।13।।

शब्दार्थ–वसिष्ठ = महर्षि वसिष्ठ के, शिष्याणाम् = शिष्यगण, रघुणाम् = रघुवंशी नृपतियों के, वंश = वंश के, नन्दिनी = आनन्दित करने वाली, एषा =

समक्ष विद्यमान, सीता अपि = जानकी भी, सुतयोः = अपने दोनों पुत्रों (कुश-लव) के, संस्कर्तारम् = (जातकर्म-उपनयन आदि) संस्कार करने वाले आचार्य को, न विन्दति = नहीं प्राप्त कर पा रही है यह, कष्टम् = कष्ट की बात है।

अनुवाद–राम पुत्रवती सीता की दयनीय दशा के एक मार्मिक पक्ष का उद्घाटन कर रहे हैं–राम–महर्षि वसिष्ठ के शिष्यगण रघुकुल-नृपतियों को आनन्दित करने वाली यह (समक्ष) विद्यमान) जानकी भी अपने दोनों पुत्रों–कुश-लव–के (जातकर्म-उपनयन-आदि) संस्कार करने वाले आचार्य (= पुरोहित) को नहीं (प्राप्त कर) पा रही है, यह कष्ट (दुःख) की बात है।

भागीरथी–भद्रे, किं तवानया चिन्तया ? एतो-हि वत्सौ स्तन्य त्यागात्परेण भगवतो वाल्मीकेरर्पयिष्यामि।

भागीरथी–हे सुशील पुत्री! तुम्हें यह चिंता करने की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि (तुम्हारा दूध पीना) छोड़ देने के पश्चात् मैं इन दोनों बालकों को भगवान् वाल्मीकि को सौंप दूँगी।

वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य संप्रति।
स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति।।14।।

अन्वय–सम्प्रति हि वसिष्ठः एव रघुवंशस्य आचार्यः, स एव च अनयोः ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति।।14।।

शब्दार्थ–सम्प्रति = इस समय, ही = तो, वसिष्ठः एव = वसिष्ठ ही, रघुवंशस्य = रघुकुल के, आचार्यः = आचार्य हैं, स एव च = और वह ही, अनयोः = इन दोनों (बालकों) के, ब्रह्म = ब्राह्मणोचित (वेदाध्यापनादि) तथा, क्षत्र = क्षत्रियोचित (धनुर्वेद का अभ्यास आदि) कृत्यम् = कार्य को, करिष्यति = सम्पन्न करेंगे।

अनुवाद–भगवती भागीरथी सीता की पूर्वोक्त चिन्ता का समाधान प्रस्तुत करती हुई कहती हैं–इस समय तो महर्षि वसिष्ठ ही रघुवंश के आचार्य (पुरोहित) हैं, और वही इन दोनों (बालकों) के ब्राह्मणोचित (वेदों का अध्यापन आदि) तथा क्षत्रियोचित (धनुर्वेद का अभ्यास आदि) कार्य सम्पन्न करेंगे।

यथा वसिष्ठाङ्गिरसौ ऋषिः प्राचेतसस्तथा।
जनकानां रघूणां च वंशयोरुभयोर्गुरुः।।15।।

अन्वय–यथा रघूणां जनकानां च उभयोः वंशयोः वसिष्ठाङ्गिरसौ (गुरुस्तः) तथा प्राचेतसः ऋषिः (अपि) गुरुः (अस्ति)।।15।।

शब्दार्थ–यथा जिस प्रकार, रघूणाम् = रघुवंशी, जनकानां च = और जनकवंशी, उभयोः = दोनों, वंशयोः = कुलों के राजाओं के (क्रमशः), वसिष्ठा-ङ्गिरसौ = वसिष्ठ और शतानन्द जी, गुरू = गुरु हैं, तथा = उसी प्रकार, प्राचेतसः = महर्षि वाल्मीकि, ऋषिः = मुनि (भी इन दोनों वंशों के) गुरुः = गुरु हैं।

अनुवाद–भगवती भागीरथी महर्षि वाल्मीकि को रघु और जनक–दोनों के कुलों का सम्मान्य गुरु बताती हैं–

जिस प्रकार रघुवंशी तथा जनकवंशी (इन) दोनों कुलों के नृपतियों के (क्रमानुसार) महर्षि वसिष्ठ तथा शतानन्द जी गुरु हैं, उसी प्रकार (महर्षि) वाल्मीकि मुनि (भी इन दोनों कुलों के कुल–) गुरु हैं।

रामः–सुविचिन्तितं भगवत्या।

राम–भगवती भागीरथी ने ठीक (ही) सोचा है।

लक्ष्मणः–आर्य! सत्यं विज्ञापयामि। तैस्तैरुपायैरिमौ वत्सौ कुशलवावुत्प्रेक्षे।

लक्ष्मण–आर्य! मैं (आपसे) सत्य (ही) कहता हूँ कि विभिन्न हेतुओं से इन दोनों बालकों को कुश तथा लव होने की मैं संभावना करता हूँ।

एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ प्राप्तप्राचेतसावुभौ।
आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ।।16।।

अन्वय–हि एतौ उभौ वीरौ जन्मसिद्धास्त्रौ, प्राप्तप्राचेतसौ, आर्यतुल्याकृती वयसा द्वादशाब्दकौ (च स्तः)।।16।।

शब्दार्थ–हि = क्योंकि, एतौ उभौ = ये सामने विद्यमान दोनों कुश और लव, वीरौ = जन्मसिद्ध वीर हैं, जन्मसिद्धास्त्रो = जन्म से ही प्राप्त (सिद्ध) अस्त्रों वाले, प्राप्त प्राचेतसौ = महर्षि वाल्मीकि के समीप पहुँचे हुए, आर्यतुल्याकृती = आर्य (राम) के समान आकृति वाले तथा, वयसा = आयु से, द्वादशाब्दकौ = बारह वर्ष वाले हैं।

अनुवाद–लक्ष्मण, राम से वे पाँच कारण बता रहे हैं, जो उन दोनों बालकों को कुश और लव ही सिद्ध करते हैं–

क्योंकि (क) ये दोनों बालक (जन्म से ही) वीर (ख) जन्म से ही अभ्यस्त (जृम्भक) अस्त्र विद्यावाले (ग) महर्षि वाल्मीकि के समीप (स्वतः) पहुँचे हुए, (घ) आप (राम) के समान ही (मनोहर) आकृति वाले तथा (ङ) बारह वर्ष की आयु वाले हैं।

रामः–वत्सावित्येवाहं परिप्लवमानहृदयः प्रमुग्धोऽस्मि।

राम–(कुश तथा लव) दोनों मेरे (ही) पुत्र हैं, यही समझते हुए मैं चंचल मन और अत्यधिक मुग्ध हो गया हूँ।

पृथ्वी–एहि वत्से, पवित्रीकुरु रसातलम्।

पृथ्वी–आओ पुत्री, पाताल को पवित्र करो।

रामः–हा प्रिये, लोकान्तरं गतासि।

राम–हा प्रिय सीता, तुम दूसरे लोक (अर्थात् पाताल) में चली गई हो ?

सीता–नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा। न सहिष्ये ईदृशं जीवलोकस्य

परिभवमनुभवितुम् (णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अंबा। ण सहिस्सं ईरिसं जीअलोअस्स परिभवं अणुभविदुं।)

सीता–हे जननि! तुम मुझे अपने अंगों में विलीन कर लो (क्योंकि) मैं इस लोक के ऐसे तिरस्कार का (कटु) अनुभव न सहन कर सकूँगी।

रामः–किमुत्तरं स्यात् ?

राम–(सुनना है, पृथ्वी का) क्या उत्तर होगा ? (अर्थात् सीता के उक्त कथन का पृथ्वी देवी क्या उत्तर देंगी, उसे सुनने हेतु मैं अधीर हो रहा हूँ)

पृथ्वी–मन्नियोगतः स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व। परेण तु यथा रोचिष्यते तथा करिष्यामि।

पृथिवी–मेरी आज्ञानुसार तुम (अपने) दूध छोड़ने (के समय) तक इन दोनों पुत्रों की देखभाल (साज-सँभाल अथवा पालन-पोषण) कर लो। उसके बाद तो जैसा मुझे रुचेगा, मैं वैसा (ही) करूँगी। (अर्थात् आज की भाँति उस समय भी तुम्हारी अभिभावक होने के नाते जैसा मैं अपने गम्भीर अनुभव के आधार पर ठीक समझूँगी, वैसा प्रबंध करूँगी)

भागीरथी--एवं तावत्।

(इति निष्क्रान्ते देव्यौ सीता च)

भागीरथी–ऐसा ही उचित है (और होगा भी)।

(उसके बाद दोनों देवियाँ तथा सीता निकल जाती हैं)

रामः–कथं प्रतिपन्न एव तावत् ? हा चारित्र देवते! लोकान्तरे पर्यवसितासि ?

राम–ऐं क्या (जानकी ने पाताल-गमन) स्वीकार ही कर लिया ? हा सुचरित्र की देवी, क्या तुम दूसरे लोक (पाताल) में (ही) सर्वथा समाप्त होगी ? (भाव यह है कि इस लोक में तुम्हारी चारित्रिक हत्या तो कर ही दी गई थी, अब केवल शरीर शेष है जो कि पाताल में जाकर सर्वथा समाप्त होगा)

(इति मूर्च्छति)

(ऐसा कहते ही मूर्च्छित हो जाते हैं)

लक्ष्मणः--भगवन्वाल्मीके, परित्रायस्व परित्रायस्व। एष ते काव्यार्थः ?

लक्ष्मण–हे भगवन् वाल्मीकि, (आर्य रामचन्द्र को) बचाइए, बचाइए। क्या आपके काव्य का यही (राम का विनाश ही) उद्देश्य है ?

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

अपनीयतामातोद्यम्। भो जङ्गमस्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्याः पश्यतेदानीं वाल्मीकिनाभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्।

(मृदङ्ग आदि) चारों प्रकार के वाद्यों का (बजाना) बन्द कर दीजिए। हे चराचर

प्राणियों! हे मनुष्यों तथा देवगण! अब आप सब महर्षि वाल्मीकि द्वारा अनुमोदित पवित्र एवम् आश्चर्यजनक (दृश्य) को देखें।

लक्ष्मणः–(विलोक्य)

लक्ष्मण–(देखकर)

मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो,
व्याप्तं च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां
गङ्गामहीभ्यां सलिलादुपैति।।17।।

अन्वय–गाङम् अम्भः मन्थात् इव क्षुभ्यति, अन्तरिक्षं च देवर्षिभिः व्याप्तम्। आश्चर्यम्, आर्या गङ्गामहीभ्यां देवताभ्यां सह सलिलात उपैति।।17।।

शब्दार्थ–गाङ्गम् = गङ्गा का, अम्भः = जल, मन्थात् इव = मन्थन किए जाने के समान, क्षुभ्यति = क्षुब्ध हो (= हिल) रहा है, अन्तरिक्षं च = और आकाश, देवर्षिभिः = देवों तथा ऋषियों से, व्याप्तम् = व्याप्त हो (भर) गया है, आश्चर्यम् = आश्चर्य का दृश्य है कि, आर्या = पूजनीया सीता, गंगामहीभ्याम् = गङ्गा और पृथ्वी नामक, देवताभ्यां सह = दो देवियों के साथ, सलिलात् = जल के भीतर से, उपैति = ऊपर आ रही हैं।

अनुवाद–लक्ष्मण पूर्वोक्त आश्चर्य का वर्णन कर रहे हैं–गंगाजल मथनी (मथानी) से मथे गए के समान क्षुब्ध हो रहा (= हिल रहा) है, और आकाश देवों तथा ऋषियों से व्याप्त हो गया है। आश्चर्य का दृश्य है कि पूजनीया सीता देवी गंगा और पृथिवी नामक दो देवियों के साथ जल के भीतर से ऊपर (बाहर) आ रही हैं।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

अरुन्धति जगद्वन्द्ये! गंगा पृथ्व्यौ जुषस्व नौ।
अर्पितेयं तवावाभ्यां सीता पुण्यव्रता वधूः।।18।।

अन्वय–(हे) जगद्वन्द्ये अरुन्धति, नौ गङ्गापृथ्व्यौ जुषस्व। आवाभ्याम् इयं पुण्यव्रता वधूः सीता तव अर्पिता।।18।।

शब्दार्थ–हे जगद्वन्द्ये = हे विश्व वन्दनीया, अरुन्धति = भगवती अरुन्धती, नौ = हम दोनों, गङ्गापृथ्व्यौ = गङ्गा और पृथिवी को, जुषस्व = सन्तुष्ट कीजिए। आवाभ्याम् = हम दोनों के द्वारा, इयम् = यह आपके समीप विद्यमान, पुण्यव्रता = पवित्र आचरण वाली, वधूः = वधू (वहू) सीता, तव = आप (अरुन्धती) को, अर्पिता = (प्रतिपालनीया के रूप में) समर्पित की (सौंपी) गई है।

अनुवाद–नेपथ्य से गङ्गा और पृथ्वी देवी भगवती अरुन्धती के हाथों सीता को सौंप रही हैं–

हे विश्ववन्दनीय पूज्य अरुन्धती, हम गङ्गा और पृथ्वी दोनों को (हमारी प्रार्थना की स्वीकृति द्वारा) सन्तुष्ट करने की कृपा कीजिए। हम दोनों पवित्रव्रत वाली इस वधू सीता को आपको समर्पित करती हैं।

लक्ष्मणः–अहो आश्चर्यमाश्चर्यम्। आर्ये, पश्य, पश्य। कष्टमद्यापि नोच्छ्वसित्यार्यः।

लक्ष्मण–ओह, आश्चर्य है, आश्चर्य है। आर्या (अरुन्धती) देखिए, देखिए। (अत्यन्त) क्लेश का विषय है कि आर्य (रामचन्द्र) अब तक भी होश में नहीं आए हैं (अर्थात् अभी तक राम की बेहोशी नहीं दूर हुई, इससे मुझे अत्यन्त क्लेश का अनुभव हो रहा है)

(ततः प्रविशत्यरुन्धती सीता च)

(तदनन्तर अरुन्धती तथा सीता प्रवेश करती हैं)

अरुन्धती–त्वरस्व वत्से वैदेहि! मुञ्चशालीनशीलताम्।
एहि जीवय मे वत्सं सौम्यस्पर्शेन पाणिना।।19।।

अन्वय–(हे) वत्से वैदेहि! त्वरस्व, शालीनशीलताम् मुञ्च, एहि, सौम्यस्पर्शेन पाणिना मे वत्सं जीवय।

शब्दार्थ–हे वत्से = हे प्रिय पुत्री, वैदेहि = सीता, त्वरस्व = शीघ्रता करो, शालीन शीलताम् = (स्वाभाविक) लज्जाशीलता को, मुञ्च = (इस समय) छोड़ दो, एहि = आ ओ, सौम्यस्पर्शेन = मृदुस्पर्श वाले, पाणिना = पाणितल से, (स्पर्श करके) मे = मेरे, वत्सम् = प्रिय पुत्र रामभद्र को, जीवय = जीवित कर दो।

अनुवाद–अरुन्धती सीता को, राम को होश में लाने हेतु प्रेरित कर रही हैं–

हे प्रिय पुत्री जानकी, शीघ्रता करो तथा अपनी (स्वाभाविक) लज्जाशीलता को (इस समय) छोड़ दो। आओ, और अपने मृदुल स्पर्श युक्त पाणितल से मेरे प्रिय पुत्र (रामभद्र) को जीवित कर दो।

सीता–(ससम्भ्रमं स्पृशन्ती) समाश्वसितु समाश्वसित्वार्य पुत्रः। (समस्ससदु समस्ससदु अज्ज उत्तो।)

सीता–(घबराहट युक्त शीघ्रता से स्पर्श करती हुई) आर्यपुत्र! धीरज रखिए, धीरज रखिए।

रामः–(समाश्वस्य सानन्दम्) भोः किमेतत्। (दृष्ट्वा सहर्षाद्भुतम्) कथं देवी जानकी? (सलज्जम्) अये, कथमम्बारुन्धती। कथं सर्वे प्रहृष्यन्ते ऋष्यशृङ्गादयोऽस्मद्गुरवः।

राम–(चेतना में आकर आनंद सहित) ऐं यह क्या? (देखकर आनंद तथा आश्चर्य सहित) देवी जानकी (यहाँ) कैसे? (लज्जासहित) अरे, माता अरुन्धती (भी

यहाँ) कैसे ? (तथा) ऋष्यशृङ्ग आदि हमारे सभी गुरुजन (भी यहाँ) किस हेतु से प्रसन्न हो रह हैं ?

अरुन्धती–वत्स, एषा भागीरथी रघुकुलदेवता देवी गङ्गा सुप्रसन्ना।

अरुन्धती–हे पुत्र! भूपति भगीरथ द्वारा (भगवान् शिव के जटाजूट से पृथ्वी पर) लायी गई (तथा) रघुवंश की (कुल-) देवता (स्वरूपा) भगवती गंगा (तुमपर) अत्यंत प्रसन्न हैं।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

जगत्पते रामभद्र, स्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मवचनम्। सा स्वमस्व, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवेति। तदनृणास्मि।

हे विश्वेश रामभद्र! चित्र दर्शन-काल में मेरे प्रति कहे गए अपने कथन का स्मरण कीजिए–हे जननि! आप माता अरुन्धती के समान ही अपनी (इस) पुत्रवधू सीता पर (सीता के विषय में भी) कल्याण-चिन्तन-शील रहना।'

(अस्तु, उसी प्रार्थना के अनुसार कार्य कर चुकने के कारण) इस समय मैं ऋण मुक्त हो गई हूँ।

अरुन्धती–इयं ते श्वश्रूर्भगवती वसुन्धरा।

अरुन्धती–यह तुम्हारी सास जी भगवती पृथ्वी हैं।

(नेपथ्ये)

उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे 'भगवति वसुन्धरे, सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्' इति। तदधुना कृतवचनास्मि।

(नेपथ्य में)

पुत्री जानकी के परित्याग-काल में आयुष्मान् आपने कहा था कि–'हे भगवती पृथ्वी, (अपनी) प्रशंसा के योग्य पुत्री जानकी की देखभाल करना।' तो इसलिए इस समय मैं (भी) तुम्हारा कथन पूर्ण कर चुकने वाली (अतएव ऋण मुक्त) हो गई हूँ।

रामः–कृतापराधोऽपि भगवति, त्वयाऽनुकम्पयितव्यो रामः प्रणमति।

राम–हे भगवती (पृथ्वी, आपकी पुत्री सीता के प्रति) अपराधी होता हुआ भी आपकी अनुकम्पा का पात्र (यह) राम (आपको) प्रणाम कर रहा है।

अरुन्धती–भो भोः पौरजानपदाः इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेव प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या समर्पिता पूर्व भगवती वैश्वानरेण निर्णीतपुण्यचारित्रा सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता सावित्रकुलवधूर्देवयजनसंभवा जानकी परिगृह्यताम् कथमिह भवन्तो मन्यन्ते ?

अरुन्धती–हे नगरवासियो तथा ग्रामवासी लोगो! इस समय देवी पृथ्वी तथा

भागीरथी द्वारा इस (जगन्मङ्गल 7/8) प्रकार प्रशंसा की जाती हुई, मुझ अरुन्धती के द्वारा समर्पित की गई, और भगवान् अग्नि के द्वारा पहले (ही) से निर्णय किए गए पवित्र चरित्र (आचरण) वाली, तथा ब्रह्मा सहित (सभी) देवों द्वारा वन्दित, सूर्यवंश की वधू (एवम्) यज्ञभूमि से उत्पन्न, यह जानकी (राम के द्वारा) स्वीकार की जाए।' इस विषय में आप लोगों की क्या सम्मति है ?

लक्ष्मणः–आर्य, एवमम्बयारुन्धत्या च निर्भर्त्सिताः पौरजानपदाः कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्या नमस्कुर्वन्ति। लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते।

लक्ष्मण–हे आर्य (राम), माता अरुन्धती इस (पूर्वोक्त) प्रकार से डाँटे (फटकारे) गए, नगरवासी और ग्रामवासी तथा समस्त प्राणिसमूह माननीया (जानकी) को प्रणाम कर रहे हैं। (इतना ही नहीं अपितु) लोकपाल तथा सप्तर्षिसमुदाय पुष्प-वृष्टि द्वारा (उनकी) पूजा कर रहे हैं।

अरुन्धती–जगत्पते रामभद्र!

अरुन्धती–हे लोकेश रामभद्र!

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे।।20।।

अन्वय–त्वं हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिं धर्मचारिणीं प्रियाम् अध्वरे यथाधर्मं नियोजय।।20।।

शब्दार्थ–त्वम् = आप, हिरण्मय्याः = सुवर्णनिर्मित, प्रतिकृतेः = प्रतिमा की, पुण्याम् = पावन, प्रकृतिम् = मूल-आधार स्वरूप, धर्मचारिणीम् = (साक्षात्) सहधर्मिणी, प्रियाम् = प्रिय पत्नी सीता को, अध्वरे = (अश्वमेघ) यज्ञ में, यथाधर्मम् = धर्म के अनुसार (अर्थात् धार्मिक मर्यादा के अनुकूल), नियोजय = नियुक्त कीजिए।

अनुवाद–अरुन्धती राम को, सीता के पुनः ग्रहण-हेतु प्रेरित करती हैं–आप सुवर्णऽनिर्मित (सीता की) प्रतिमा की पावन मूल-आधार भूत (साक्षात्) सहधर्मिणी (अपनी) प्रिय पत्नी सीता को (अश्वमेघ-) यज्ञ में धार्मिक मर्यादा के अनुकूल नियुक्त कीजिए।।20।।

सीता–(स्वगतम्) अपि जानात्यार्यपुत्रः सीतायाः दुःखं परिमार्ष्टुम्। (अवि जाणादि उज्जउत्तो सीदाए दुक्खं पडिमज्जिदुं)

सीता–(मन में) क्या आर्यपुत्र (राम) सीता के दुःख को सर्वथा मिटा देना (भी) जानते हैं ?

रामः–यथा भगवत्यादिशति।

राम–भगवती (आप) की जैसी आज्ञा। (अर्थात् आपकी आज्ञा मुझे सर्वथा स्वीकार है)

लक्ष्मणः–कृतार्थोऽस्मि।

लक्ष्मण–मैं (आर्य के उक्त स्वीकार से) धन्य हो गया।

सीता–प्रत्युज्जीविताऽस्मि। (पच्चुज्जीविदम्हि।)

सीता–मैं (एक बार मृत होकर भी अब आर्य की उक्त-स्वीकृति-वचनं-संजीवनी द्वारा) पुनः जीवित हो गई हूँ।

लक्ष्मणः–आर्ये, अयं लक्ष्मणः प्रणमति।

लक्ष्मण–हे आर्या, यह लक्ष्मण (आपको) प्रणाम करता है।

सीता–वत्स, ईदृशस्त्वं चिरंजीव। (वच्छ, ईरिसो तुमं चिरं जीअ।)

सीता–हे वत्स (लक्ष्मण) इस अवस्थावाले (अर्थात् चिरवियुक्त भाई-भाभी के ऐसे सम्मिलन से सर्वदा प्रमुदित रहते हुए) तुम दीर्घकाल तक जीवित रहो।

अरुन्धती–भगवन्वाल्मीके, उपनयेदानीं सीतागर्भसंभवौ रामभद्रसय कुशलवौ।

(इति निष्क्रान्ता)

अरुन्धती–हे भगवन् वाल्मीकि, सीता के गर्भ से जन्म लेने वाले (इन दोनों पुत्रों कुश और लव को (आप) राम के समीम ले जाएँ।

(यह कह कर प्रस्थान करती हैं)

रामलक्ष्मणौ–दिष्ट्या तथैवैतत्।

राम और लक्ष्मण–सौभाग्य से यह वैसा ही हुआ। (अर्थात् वाल्मीकि वस्तुतः कुश और लव को लेकर हमारी ओर चल पड़े।)।

सीता–(स बाष्पाकुला) क्व तौ पुत्रकौ ? (कहिं ते पुत्तआ ?)

सीता–अश्रुपूरित नयनों से) वे दोनों प्रिय पुत्र कहाँ हैं ?

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः कुशलवौ च)

वाल्मीकिः–वत्सौ, एष वां रघुपतिः पिता। एष लक्ष्मणः कनिष्ठतातः। एषा सीता जननी। एष राजर्षिजनको मामामहः।

(तत्पश्चात् वाल्मीकि, कुश और लव प्रवेश करते हैं)

वाल्मीकि–हे प्रिय पुत्रो, यह तुम दोनों के पिता रघुनाथ (रामचन्द्र) हैं। यह (तुम्हारे) छोटे पिता (= चाचा) लक्ष्मण हैं। यह (तुम्हारी) माता सीता हैं। (तथा) यह (तुम्हारे) नाना राजर्षि जनक जी हैं।

सीता–(सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य) कथं तातः, कथं जातौ। (कहं तादो, कहं जादा।)

सीता–(प्रमोद, करुणा तथा विस्मय सहित देखकर) (यहाँ) पिताजी कैसे ? और ये दोनों पुत्र कैसे (एकत्र उपस्थित हो गए) ?

कुशलवौ–हा तात, हा अम्ब, हा मातामह!

कुश और लव–हा पिता जी! हा माता जी! हा नाना जी!

रामलक्ष्मणौ–(सहर्षमालिङ्ग्य) ननु वत्सौ, पुण्यैः युवां प्राप्तौ स्थः।

राम और लक्ष्मण–(सानन्द आलिङ्गन करके) हे सुत युगल! तुम दोनों (हमें, हमारे) पुण्यों से (ही) प्राप्त हुए हो।

सीता–एहिजात कुश, एहिजात लव, चिरस्य मां परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम्। (एहि जाद कुस, एहि जाद लव, चिरस्स मं परिस्सजह लो अंद रादो आअदं जणणिम्।)

सीता–हे पुत्र कुश! आओ, हे पुत्र, लव! आओ। दूसरे लोक से (वापस) आई हुई मुझ (अपनी) माता को तुम दोनों (एक साथ), बहुत देर तक (भर पूर) आलिङ्गन करो।

कुशलवौ–(तथा कृत्वा) धन्यौ स्वः।

कुश और लव–(वैसा करके) हम दोनों (अब) धन्य हैं।

सीता–भगवन्, एषाहं प्रणमामि। (भअवं, एसा हं पणमामि।)

सीता–हे भगवन् (वाल्मीकि) यह मैं (आपको) प्रणाम करती हूँ।

वाल्मीकिः–वत्से, एवमेव चिरं भूयाः।

वाल्मीकि–हे प्रिय पुत्री (सीता) तुम इसी प्रकार (पति तथा पुत्रों सहित) चिरकाल तक (आनन्दित) रहो।

(नेपथ्ये)

उत्खातलवणो मधुरेश्वरः प्राप्तः।

(नेपथ्य में)

लवणासुर का वध कर मधुरेश्वर (अर्थात् मथुरा के अधिपति शत्रुघ्न भी) आ गए हैं।

लक्ष्मणः–सानुषङ्गणि कल्याणानि।

लक्ष्मण–शुभ समाचार (भी) क्रमशः उपस्थित होते जा रहे हैं।

रामः–सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येमि। यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम्।

राम–इन सब बातों (तथ्यों) का (साक्षात्) अनुभव करते हुए भी मुझे (इन पर) विश्वास नहीं हो (-पा-) रहा हे अथवा कल्याणों का स्वभाव (क्रम) ही ऐसा होता है।

वाल्मीकिः–रामभद्र, उच्यतां किं ते भूयः प्रियमुपहरामि?

वाल्मीकि–हे रामभद्र, बोलो (अब) मैं तुम्हारे लिए और क्या (अधिक) प्रिय (कार्य) संपादित करूँ?

रामः–अतः परमपि प्रियमस्ति? किं त्विदं भरतवाक्यमस्तु–

राम–(मेरे लिए) क्या इस (पत्नी तथा-पुत्रों की प्राप्ति) से भी अधिक कुछ और प्रिय (हो सकता) है (अर्थात् दीर्घकाल तक दारुण संघर्ष को झेलते रहने के पश्चात् भार्या एवं पुत्रों की प्राप्ति से अधिक इस समय मुझे कुछ भी अभीष्ट नहीं

है) फिर भी यह भरतवाक्य (समग्र नाटकीय-पात्रों की समवेत शुभ-कामना, अवश्य चरितार्थ हो–

पाप्मभ्यश्चपुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयंकथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्त रूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्।।21।।

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकवि श्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते
सम्मेलनं नाम सप्तमोऽङ्कः।

अन्वय–माता इव गङ्गा इव च जगतः मङ्गल्या च मनोहरा च सा इयं कथा पाप्मभ्यः च पुनाति श्रेयांसि वर्धयति च। अभिनयैः विन्यस्तरूपां शब्दब्रह्मविदः प्राज्ञस्य कवेः परिणताम् इमां ताम् एतां वाणीं बुधाः परिभावयन्तु।।21।।

शब्दार्थ–माता इव = माता के समान, गङ्गा इव च = और गङ्गा जी के समान, जगतः = विश्व का, मङ्गल्या = कल्याण करने वाली, च = और, मनोहरा = मनोहर, सा = सुप्रसिद्ध (वाल्मीकि रामायण की), इयम् = यह, कथा = कथा, पाप्मभ्यः = पापों से, पुनाति = पवित्र करती है, च = तथा, श्रेयांसि = कल्याण की, वर्धयति = वृद्धि करती है। अभिनयैः = अभिनयों के द्वारा, विन्यस्तरूपाम् = सुगठित नाट्योपयोगी स्वरूप को प्राप्त कराई गई, तथा, शब्द ब्रह्मविदः = शब्दब्रह्म के ज्ञाता, प्राज्ञस्य = विद्वात्, कवेः = कवि (भवभूति) के द्वारा, परिणताम् = (प्रकृतनाटक के रूप में) रूपान्तरित, इमाम् = इस, तामेताम् = तथोक्त (उत्तररामचरितम् के) स्वरूप वाली, वाणीम् = वाणी का, बुधाः = विद्वान् लोग, परिभावयन्तु = परिशीलन (मनन, आलोचन अथवा रसास्वादन) करें।

अनुवाद–राम, सर्व-जन-कल्याण के लिए भरतवाक्य प्रस्तुत करते हैं–

माता के समान और गंगा जी के समान विश्व का कल्याण करने वाली तथा मनोहर यह सुप्रसिद्ध (वाल्मीकि रामायण की) कथा पापों से पवित्र करती है, तथा मङ्गल की वृद्धि करती है। अभिनयों के द्वारा सुगठित (नाट्योपयोगी) स्वरूप को प्राप्त कराई गई तथा शब्द ब्रह्म के ज्ञाता विद्वान् कवि (भवभूति) के द्वारा (प्रकृत नाटक के रूप में) रूपान्तरित इस तथोक्त (उत्तररामचरितम्, के) स्वरूप वाली वाणी का विद्वान् लोग परिशीलन (विचार-विमर्श अथवा रसास्वादन) करें।।21।।

(इस प्रकार कहकर सब चले जाते हैं)

महाकवि भवभूति-विरचित उत्तररामचरितनाटक में
सम्मेलन नामक सप्तम अंक समाप्त हुआ।

अष्टमोऽङ्कः

भवभूति

सौभाग्य का विषय है कि भवभूति ने अपने ग्रंथों में, विशेषतः महावीर-चरित की प्रस्तावना में, अपना यत्किंचित परिचय प्रदान किया है। उससे जान पड़ता है कि भवभूति विदर्भदेश (आजकल बरार) के पद्मपुर के रहने वाले थे। ये काश्यपगोत्री तथा कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के मानने वाले थे। भवभूति के पिता का नाम **नीलकंठ**, माता का **जतुकर्णी** और पितामह का **भट्ट गोपाल** था। भवभूति के पूर्वज अपने सदाचार तथा वेदाध्ययन के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे। वे पवित्रपावन थे तथा पाँच अग्नियों की स्थापना करने वाले थे। उन्होंने सोमयज्ञ भी किए थे, वे श्रौत के भारी वेत्ता थे। इनके कुल में काव्यकला की भी पूजा कुछ कम न थी, क्योंकि इनके पाँचवें पूर्वज कोई 'महाकवि' थे। इनके गुरु का नाम **'ज्ञाननिधि'** था। डाक्टर भंडारकर का कहना है कि भवभूति के जन्मस्थान के आसपास इस समय भी कुछ कृष्ण्यजुवदी तैत्तरीय शाखा-व्यापी महाराष्ट्र ब्राह्मणों के कुल विद्यमान हैं। कवि ने अपने को 'भट्ट श्रीकंठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम' लिखा है। अतः कुछ टीकाकारों का अनुमान है कि इनका असली नाम 'श्रीकंठ' था, परंतु–

'सांबा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः'

अथवा

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविब।
गिरिजायाः स्तनौ वंदे भवभूतिसिताननौ।।

पद्य के, जिनमें 'भवभूति' शब्द प्रयुक्त हैं, लिखने के कारण इनका प्रसिद्ध नाम 'भवभूति' पड़ा–यह पंडितों में परंपरागत प्रसिद्धि है।

दार्शनिकों की गोष्ठी में भवभूति **'उम्बेक'** नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने अपने गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' उल्लिखित किया है। उधर 'मालतीमाधव' के एक प्राचीन हस्तलेख में वे कुमाररिलभट्ट के शिष्य बतलाए गए हैं। अतः यह निश्चित है कि वे कुमारिल भट्ट के शिष्य थे तथा उनका नाम उम्बेक था; इस तथ्य के प्रकाशन में प्राचीन दार्शनिक विद्वान् एकमत हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति पर 'बालक्रीड़ा' व्याख्या

के लेखक 'विश्वरूप' से भी भवभूति की एकता स्थापित की जाती है। यह ऐक्यस्थापना एकांततः निःसंदिग्ध नहीं है। परंतु इतना तो निःसंशय प्रतीत होता है कि भवभूति केवल नाटककार नहीं थे, प्रत्युत अपने युग के एक मान्य तत्त्ववेत्ता भी थे। उनके नाटकों में उनकी दार्शनिकता के प्रभत उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[1]

भवभूति के जीवन की घटनाएँ अज्ञानांधकार में छिपी हैं। उनके ग्रंथों की आलोचना से जान पड़ता है कि तत्कालीन विद्वान् इन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे। पहले किसी राजा का भी आश्रय इन्हें मिला था, क्योंकि प्रायः इनके नाटकों का अभिनय राज-सभा में न होकर उज्जयिनी में महाकाल की यात्रा के समय एकत्रित जनता के सामने ही हुआ था। परंतु हम लोग भवभूति को जीवन के अंतिम काल में कान्यकुब्ज के विद्वान् राजा **यशोवर्मा** के आश्रय में पाते हैं। संभवतः भवभूति को अपनी अलौकिक नाट्यकला के कारण विद्वत्प्रेमी यशोवर्मा का आश्रय मिल सका। जीवन के आरंभ में तत्कालीन साहित्य-सेवियों के द्वारा निरादृत होने की संभावना इनके कतिपय गर्वोक्तियों से अनुमित होती है। मालतीमाधव की प्रस्तावना में भूवभूति ने इन्हीं दुरालोचकों को लक्ष्य करके यह हृदयोद्गार निकाला है–

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानंति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उपत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।

भावार्थ है कि जो कोई मेरी अवज्ञा किया करते हैं, उन मूर्खों के लिए यह मेरा यत्न नहीं है। समय का अंत नहीं और पृथ्वी भी बड़ी लंबी-चौड़ी है। इसमें जो कोई मेरा स्पर्धी इस समय है या आगे पैदा होगा उसके लिए मेरा नाटक-रचना-रूप यत्न समझना चाहिए।

भवभूति का पांडित्य

भवभूति वेद तथा दर्शनों के अगाध पंडित थे।[2] भगवती श्रुति के रहस्यों का उन्होंने खूब पता लगाया था। उनके नाटकों में उनके वैदिक-ज्ञान-गरिमा की सूचना अनेक स्थलों पर पाई जाती है। उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक में 'नामांसो मधुपर्को भवति' की सूचना मिलती है। महावीर चरित में सूर्यवंश के कुल-पुरोहित वसिष्ठ का वर्णन करते समय भवभूति ने ऐतरेय-ब्राह्मण के अंतिम (40वाँ) अध्याय में उल्लिखित पुरोहित-प्रशंसा 'राष्ट्रगोपाः पुरोहितः' वाले कई पद्यों को ज्यों-का-त्यों अपने नाटक

---

[1] विशेष द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय : संस्कृत–सुकवि–समीक्षा, पृष्ठ 319-323 (चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, 1963)।

[2] यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।।

में रखा है। उपनिषत्-तत्त्व के वे परम वेत्ता थे। उत्तररामचरित में उन्होंने जनक के मुख से 'असूर्या नाम ते लोकाः' आदि प्रसिद्ध ईशावास्य श्रुति की व्याख्या कराई है। 'विद्याकल्पेन मरुताम्' (उत्तर. 6।6) श्लोक के द्वारा भवभूति ने अपने औपनिषद अद्वैतवाद का संक्षेप में सुंदर तात्त्विक वर्णन किया है। इनके योगशास्त्र के प्रकृष्ट ज्ञान का पता हमें मालती-माधव के पंचम अंक में मिलता है। 'समधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थितात्मा' में भवभूति ने अपने योग तथा तंत्र के ज्ञान का अनुपम मेल दिखलाया है। स्थान-स्थान पर भवभूति की भाषा में दर्शन-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द इस सरलता से अनायास आते हैं कि जान पड़ता है कि नाटककार सदा इन दर्शनों के चिंतन में संलग्न रहा है। सचमुच महाकवि भवभूति संस्कृत-साहित्य के एक द्वितीय कवि हैं—इन्हें छोड़कर 'पांडित्य' और 'वैदग्ध्य' का अनुपम तथा श्लाघनीय सम्मिलन अन्य कहाँ प्राप्त हो सकता है?

समय

यह हमारे सौभाग्य की बात है कि भवभूति जैसे महाकवि का समय निश्चित रूप से निर्णित हो चुका है; कालिदास के समान वह कई शताब्दियों के झमेले में नहीं पड़ा हुआ है। राजतरंगिणी में ललितादित्य नामक विजयी काश्मीर-नरेश का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। क्षात्र तेज से प्रभावित होकर ललितादित्य ने अपनी विजय-वैजयंती समग्र उत्तरीय भारत में फहराई। उसने न केवल आसपास के राजाओं को ही अधीन किया, बल्कि सुदूर गौड़ देश (बंगाल) को भी अपना विजित प्रदेश बनाया। इसी प्रभावशाली नरेश ने कान्यकुब्ज के महाराज **यशोवर्मा** को समरभूमि में परास्त किया। यशोवर्मा ने इसका लोहा मान लिया।[1] यह यशोवर्मा न केवल विद्वानों का ही आश्रयदाता था, बल्कि स्वयं सरस्वती देवी का भी पुजारी था। उसने पूर्वनिर्दिष्ट 'रामाभ्युदय' नामक नाटक की रचना की थी। दशरूपक आदि ग्रंथों में इस नाटक का उल्लेख है, परंतु अभी तक यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ। इसी की सभा **भवभूमि, वाक्पतिराज** आदि कवि-सम्राटों से अलंकृत थी। श्रीयुत शंकर पांडुरंग पंडित ललितादित्य के राज्याभिषेक का समय 695 ई. मानते हैं और दिग्विजय का समय उनकी राय में इस (ललितादित्य) के शासन के आरंभिक वर्ष थे। अतः भवभूति का समय 700 ई. के आसपास पड़ेगा, परंतु चीन देशीय इतिहास से ललितादित्य का समय 32 वर्ष उतर कर होना सिद्ध होता है, क्योंकि उसका राज्याभिषेक 725 ई. के आसपास हुआ। चीन के इस इतिहास की प्रमाणिकता वाक्पतिराज-रचित गउडवहो (829 गाथा) में उल्लिखित एक सूर्य-ग्रहण के समय

---

[1] कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितौ ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवंदिताम्।।

से सिद्ध होता है। डॉक्टर याकोबी ने दिखलाया है कि यह सूर्यग्रहण 14 अगस्त सन् 733 ई. में कन्नौज में दिखाई पड़ा था। अतः यशोवर्मा का समय 733 ई. के आसपास सिद्ध होता है, क्योंकि गउडवहो में यशोवर्मा द्वारा मारे गए किसी गौड़ देश के राजा का वृत्तांत वर्णित है, परंतु ललितादित्यं के द्वारा उसके पराजित किए जाने की चर्चा तक नहीं है। यशोवर्मा ने 733 ई. के लगभग काश्मीरनरेश की अधीनता स्वीकार की। अतः महाकवि भवभूति का समय भी आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

यदि कल्हण पंडित ने भूवभूति के आश्रयदाता के नमोल्लेख की कृपा न की होती, तो भी हम परवर्ती कवियों के उद्धरणों से भवभूति का समय निश्चित कर सकते थे। सबसे पहले आलङ्कारिक-प्रवर वामन ने अपनी 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में भवभूति के कई पद्यों[1] को उद्‌धृत किया है। अतएव वामन से भवभूति की प्राचीनता सिद्ध होती है। वामन का समय आठवीं सदी का उत्तरार्द्ध तथा नवीं का आरंभ है। अतः भवभूति के आठवीं सदी के पूर्वार्द्ध में होने के विषय में कोई संदेह नहीं रह जाता।

ग्रंथ

भवभूति की तीनों रचनाएँ नाटक ही हैं–

(1) **मालती-माधव**–यह दश अंकों का एक विशाल प्रकरण है। वस्तु कविकल्पनाप्रसूत है। मालती तथा माधव का प्रेम-प्रसंग बड़े सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें यौवन के उन्मादक प्रेम का बड़ा ही रसीला चित्रण है। पूरे प्रकरण में प्रेम की बड़ी ही सजीव और उदात्त कल्पना दर्शकों के सामने रखी गई है। धर्म से विरोध करने वाले प्रेम को भवभूति ने समाज के लिए हानिकारक समझ उसकी एकदम उपेक्षा कर दी है।

(2) **महावरी-चरित**–इसमें रामकथा का वर्णन किया गया हैं। इसमें छः अङ्क हैं। इस नाटक में कथानक का ऐक्य प्रदर्शन करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया गया है राम के विरुद्ध जितने कार्य किए गए हैं वे सब रावण की प्रेरणा से ही। राम का चरित्र नितांत उदात्त तथा वीरभावापन्न है। इस नाटक में वीररस की प्रधानता है राम को आदर्श पुरुष के रूप में दिखलाने के उद्देश्य से भवभूति ने राम के कितने ही दोषों को भिन्न रूप से प्रदर्शित किया है। जैसे बाली रावण का सहायक बनकर राम से लड़ने आया था, इसलिए राम ने उसका वध किया।

(3) **उत्तर-रामचरित**–इसमें नारायण का उत्तरार्ध प्रदर्शित है। इस सप्ताङ्क रूपक में राम के वन-प्रत्यागमन के बाद राजगद्दी पाने से लेकर सीता-मिलन तक की

---

[1] वामन ने 'इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिर्नयनयोः' (उत्तररामचरित 1।38) को रूपकालंकार के उदाहरण में उद्‌धृत किया है।

संपूर्ण कथाएँ कुछ कल्पना-प्रसूत घटनाओं के साथ दिखाई गई हैं। भवभूति की कवि-प्रतिभा का यह सर्वोच्च निदर्शन है। इसमें सात अंक हैं। नाटक का आरंभ 'चित्रदर्शन' से होता है और रामचरित की समस्त प्राचीन घटनाएँ एक-एक कर सामने आती हैं और उन पर राम अपनी प्रतिक्रिया का निर्देश करते हैं। अयोध्या के लोगों में रामाभिषेक से उत्पन्न प्रतिक्रिया का निरीक्षण कर दुर्मुख आता है और राम से सीता के लंकाप्रवास के विषय में उत्पन्न लोकनिंदा की चर्चा करता है। गर्भिणी सीता वन को देखने की इच्छा प्रकट करती है और लक्ष्मण उसे वाल्मीकि के आश्रम पर छोड़ आते हैं। द्वितीय अंक में वासंती तथा आत्रेयी के संवाद से सीता के दो पुत्रों की उत्पत्ति, वाल्मीकि के द्वारा पोषण तथा शिक्षण आदि बातों का परिचय मिलता है। राम शंबूक नामक तापस को मारने के लिए दंडकारण्य में आते हैं और प्राचीन दृश्यों को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। तृतीय अंक में राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं जहाँ वासंती नामक वनदेवता से सीता के परित्याग से उत्पन्न अपनी तीव्र मनोव्यथा का वर्णन करते हैं; कभी-कभी वे मूर्च्छित हो उठते हैं। तब सीता देवी जिसे देवता के प्रसाद से कोई देख नहीं सकता अपने करस्पर्श से उन्हें पुनरुज्जीवित कर देती है। राम के हृदय में विद्यमान गाढानुराग की बात तथा प्रजा की उत्कट भर्त्सना देखकर तथा सुनकर सीता का विषण्ण हृदय कुछ आश्वस्त होता है। सीता के प्रकट न होने के कारण यह 'छायांक' नाम से प्रसिद्ध है। चतुर्थ अंक में हम वाल्मीकि के आश्रम पर पहुँचते हैं जहाँ विष्कम्भक के द्वारा जनक तथा कौशल्या आदि रानियों के आगमन की सूचना हमें मिलती है। जनक, अरुंधती तथा कौशल्या के बीच सीता परित्याग से उत्पन्न स्थिति का मर्मभेदी विवेचन है। अंक के अंत में रामचंद्र के अश्वमेधीय घोड़े को लव के द्वारा पकड़ने की घटना का उल्लेख है। पंचम अंक में चंद्रकेतु तथा लव के बीच भीषण संग्राम का दृश्य है। वीररस के प्रकर्ष के लिए यह सबसे सुंदर अंक है। षष्ठ अंक में विद्याधर तथा विद्याधरी के द्वारा युद्ध की विविध लीलाओं का विवरण हमें मिलता है। रामचंद्र के आने से यह युद्ध शांत होता है और कुश के आगमन पर राम इन दोनों में सीता की आकृति की समता पाकर हर्ष तथा विषाद का क्रमशः अनुभव करते हैं। सप्तम अंक में 'गर्भाङ्क' की कल्पना है। प्रजा के सामने नाटक खेला जाता है जिसमें गंगा तथा पृथ्वी देवी सीता को निर्दोष सिद्ध कर रामचंद्र को अर्पण करती हैं। जृम्भकास्त्र की सिद्धि से लव-कुश राम के पुत्र रूप में पहचाने जाते हैं और सार्वजनिक सौख्य के साथ नाटक का अवसान होता है।

इसके तीसरे (छायांक) अंक में कवि ने चमत्कार दिखलाया है। एक ओर राम अपने वनवास के प्रिय मित्र पंचवटी के परिचित स्थानों को देखकर सीता के लिए विलाप करते-करते मूर्च्छित हो जाते हैं, दूसरी ओर छाया सीता राम के इस

प्रेममय स्मरण के कारण अपने वनवास के कठिन दुःखों को भी लात मारकर अपने जीवन को धन्य समझती हैं। राम इस छाया-सीता के स्पर्श का अनुभव तो अवश्य करते हैं, परंतु आँखों से देख नहीं पाते। यहाँ कवि ने खूब ही 'काव्य-न्याय' दिखलाया है। सीता को वनवास देने वाले राम के रुदन को दिखाकर कवि ने सीता के अपमानित तथा दुःख-भरे हृदय को बहुत शांत किया है। करुण रस का प्रवाह जैसा इस अंक में दिखाया गया है वैसा कदाचित् ही कहीं अन्यत्र दृष्टिगोचर हो। भवभूति ने बे-जान पत्थरों को भी रामचंद्र के विलापों से खूब ही रुलाया है। ऐसा चमत्कार किसी अन्य कवि ने नहीं पैदा किया है। करुण रस की इसी पराकाष्ठा को लक्ष्य कर कोई आलोचक ठीक ही कहता है–

जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्या हसतः स्म स्तनावपि।।

उत्तररामचरित का आधार तो वाल्मीकि रामायण का उत्तरकांड है, परंतु भवभूति ने अपने नाटक को शोभन तथा अलंकृत बनाने के लिए अनेक मौलिक परिवर्तन किए हैं। वाल्मीकि में रामकथा दुःखपर्यवसायी कथा है; क्योंकि उसका अंत राम के द्वारा परित्यक्त्य जानकी के पाताल-गमन से ही होता है; परंतु भवभूति ने नाट्य-परंपरा का अनुकरण कर उत्तररामचरित को सुखांत रूपक बनाया है। इसके अतिरिक्त अनेक घटनाएँ। भवभूति की मौलिक कल्पना में प्रसूत चमत्कारिणी सृष्टि हैं। चित्रदर्शन दृश्य (उत्तर, 1 अंक), राम का पुनः दंडकारण्य में आना तथा वनदेवता वासंती से भेंट (2 अंक), दंडकारण्य में छाया-सीता की सत्ता (3 अंक) तथा गर्भाङ्क (7 अंक)–ये सभी कवि की मौलिक कल्पना से उत्पन्न चमत्कारी दृश्य हैं।

भवभूति की नाट्यकला

भवभूति का 'उत्तररामचरित' उनकी नाट्यप्रतिभा को प्रकट करने वाला सर्वोच्च नाटक है। भवभूति स्वभाव से ही गंभीर प्रकृति के कवि हैं, जिन्हें अपनी अनुभूति से संसार में विषाद तथा वेदना का अधिक संचार दृष्टिगोचर होता है। फलतः वे भाव-प्रवण कवि हैं और इस भावप्रवणता का प्रभाव उनके नाटकों पर, विशेषतः उत्तररामचरित पर, अधिकता से पड़ रहा है। भावों के स्निग्ध चित्रण के कारण यदि उत्तररामचरित गीति-नाटक (लिरिक ड्रामा) है, तो प्रकृति तथा युद्ध के वर्णनों के विन्यास के कारण यह 'एपिक ड्रामा' भी कहा जा सकता है। घटनाओं की योजना में मालती-माधव का दश अंक वाला प्रकरण कुछ अव्यवस्थित तथा दुर्व्यवस्थित भले ही दिखाई पड़े, परंतु राम-संबंधी दोनों नाटकों में घटना-शैथिल्य का सर्वथा अभाव है। 'उत्तर-रामचरित' में घटना का संविधान बड़े ही मनोवैज्ञानिक पद्धति पर प्रदर्शित किया गया है। आरंभ में चित्रदर्शन की योजना बड़ी फलप्रद सिद्ध होती है। राम जैसे एकपत्नीव्रतधारी

पति सीता जैसी सती का पूर्ण गर्भावस्था की स्थिति में परित्याग कर देते हैं, इस घटना को स्वाभाविक रीति से सम्भाव्य बनाने के लिए ही भवभूति ने चित्रदर्शन की कल्पना की है, जो कालिदास के संकेत के ही ऊपर आधारित (रघु. 14।25) है, परंतु भवभूति ने इसका पूर्ण नाटकीय साफल्य दिखलाया है। जंगल के पूर्वानुभूत दृश्यों को देखकर सीता के हृदय में उन्हें पुनः देखने की नैसर्गिक अभिलाषा उदित होती है। वह राम से निवेदन करती है और राम को अपनी ओर से कठोर व्यवहार का आभास भी दिखलाना नहीं पड़ता। वह सीता के दोहद की पूर्ति के साथ-ही-साथ एक बड़े आवश्यक कार्य का नैसर्गिक ढंग से संपादन कर देते हैं। इतना ही नहीं, गंगा और पृथ्वी देवी को सीता के लिए 'शिवानुध्यान परायण' होने की प्रार्थना, जृम्भकास्त्र के प्रदर्शन से लव-कुश के रामपुत्र होने की पहचान आदि घटनाओं का उद्देश्य 'चित्रदर्शन' के द्वारा भली-भाँति सिद्ध होता है। तृतीय अंक की 'छाया-सीता' की कल्पना भवभूति के मनोवैज्ञानिक अनुभव का एक विशिष्ट प्रतीक है। अपमानित नारी के साथ उसी पुरुष का पुनर्मिलन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि उसकी अपमानजनित वेदना का अपनयन स्वाभाविक रीति से न हो जाए। मानसिक ग्रंथि का शैथिल्यकरण तथा हृदयस्थित गुप्त विषाद का दूरीकरण सीता के पक्ष में तभी होता है जब वह राम के मुँह से स्वयं अपनी प्रशंसा सुनती है। इसके विषण्ण हृदय पर यह अंक ठंडे मलहम का काम करता है, जिससे सप्तम में उनका पुनर्मिलन स्वाभाविक रीति से संपन्न होता है। सप्तम के 'गर्भाङ्क' की कल्पना एकदम नवीन है, जो वाल्मीकि-रामायण के वृत्त के साथ-साथ शोभन सुखांत रूप को मिलाती है तथा अद्भुत रस के योग से दर्शकों के चित्त में कौतूहल वृत्ति का उदय करती है। इस प्रकार घटनाओं का संविधान एक अन्विति से समवेत है। 'महावीर-चरित' में भाव-प्रवणता के लिए स्थान नहीं है और इसकी घटनाओं में परस्पर-सम्बद्धता का निर्वाह इसीलिए पूर्ण रीति से किया गया मिलता है।

चरित्र-चित्रण में भी भवभूति एक सिद्धहस्त नाटककार हैं। अपनी गंभीर प्रकृति के अनुरूप ही उन्होंने राम और सीता जैसे परम पावन आदर्श चरित्र पात्रों को अपने नाटक के लिए चुना है। भवभूति के वाल्मीकि के आदिकाव्य का गंभीर अनुशीलन किया था और इससे उन्होंने मूर्त पदार्थों की अमूर्त से तुलना, करुण रस की सर्वोपरि तथा सर्वमान्य स्थिति आदि अनेक तत्त्वों को अंगीकार किया है। राम का चरित्र बड़ा ही उदात्त, आदर्श तथा प्रख्यात परंपरा के सर्वथा अनुरूप है। 'रामराज्य' का आदर्श रूप अपने वैभव के साथ यहाँ दीख पड़ता है। राम आदर्श राजा हैं। उनका व्रत ही 'प्रकृतिरंजन' है। स्नेह, दया, सौख्य, यहाँ तक कि पवित्र-चरित्रा जनकनंदिनी को भी छोड़ते हुए राम को व्यथा नहीं है (उत्तर-चरित 1।12)–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।

यह पवित्र उद्‌गार जिस राजा के मुख से स्वतः निकलता है उसके चरित्र की पावनता का माहात्म्य किन शब्दों में वर्णित किया जा सकता है! वे जानकी के सच्चे पूत चरित्र से परिचित न हों ऐसी बात नहीं है, परंतु लोकाघ्रान की वेदी पर अपने निजी सौख्य को तिलांजलि देना राम की कर्तव्यनिष्ठता का, आदर्श भूपतित्व का उज्ज्वल दृष्टांत है। तृतीय अंक (उत्तर चरित) में राम वासंती के सामने अपने सच्चे भावों को प्रकट करने से पराङ्मुख नहीं होते, वे 'लोक' की निंदा भरपेट करते हैं। 'लोक' के अस्त-व्यस्त, अमर्यादित स्वरूप से वे भली-भाँति परिचित हैं, परंतु फिर भी उनकी कर्तव्यनिष्ठा 'लोक' के अनुरंजनार्थ प्रियतम वस्तु का परित्याग करने के लिए बाध्य करती है। **सीता** पीड़िता नारी का प्रतीक है। वह **राम** के द्वारा कठोर गर्भावस्था में परित्यक्ता होने पर भी अपने पति के लिए एक शब्द भी प्रतिवाद के रूप में नहीं करती। राम के भावसंघर्ष को वह भली-भाँती पहंचानती है। एक ओर राम अपने निजी जीवन के लिए व्यस्त हैं और दूसरी ओर प्रजानुरंजन उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करता है। भावों के इस संघर्ष के कारण राम का हृदय टूक-टूक हो जाता है। सीता अपने दुःख से दुःखित नहीं है, प्रत्युत राम की विषम दशा के चिंतन से चिंतित है। ऐसे पतिव्रता का वर्णन मिलना नितांत दुर्लभ है। राम की मूर्च्छा देखकर वह स्वयं संज्ञाहीन हो जाती है और अनेक उपायों के द्वारा वह चेतन दशा में आती है। राम और सीता का यह आदर्श चित्रण भवभूति की नाट्यकला का चरम अवसान है।

भवभूति की काव्यकला

भवभूति की कविता बड़ी चमत्कारिणी है। संस्कृत भाषा के ऊपर आपका पूरा प्रभुत्व है। वाग्देवी ब्रह्मा की तरह आपकी वश्या थी। इनकी कविता में भाषा तथा भाव में अनुपम सामंजस्य है; जैसा भाव, वैसी भाषा। जो भवभूति भयंकर युद्ध के वर्णन के समय लंबे समासवाले ओजों गुणविशिष्ट दृश्य के कठोर अभियंजक पद्य लिख सकते हैं (उत्तररामचरित 5 ।9), वही भवभूति ललितभाव के वर्णन करते समय ऐसा सुंदर अनुष्टुप लिख सकते हैं जिसमें एक भी समस्त पद नहीं है (उत्तर. 2 ।8)। इस सामंजस्य का अनुरूप उदाहरण कभी-कभी एक ही पद्य में मिलता है जिसके एक भाग में युद्धवर्णन के लिए टवर्ग के अनुप्रास में गाढ़बन्धता रखी गई है और दूसरे भाग में कोमल वस्तु के वर्णन के हेतु सुकुमार पदावली प्रयुक्त की गई है। यह भवभूति के भाषाधिपत्य को प्रकट कर रहा है। नीचे के पद्य में ऐसा सुंदर शब्दविन्यास है कि पढ़ते समय ही तुंगतरंगवाली, गद्‌गद नाद के साथ रहने वाली

नदियों का प्रत्यक्ष चित्र सामने खड़ा हो जाता है—वर्णध्वनि से नदियों के परस्पर मिलने से उत्पन्न घोर रोर का कोलाहल स्पष्ट मालूम पड़ता है (उत्तररामचरित 2।30)—

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालंबितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः।।

इस प्रकार वर्ण-ध्वनि के द्वारा अर्थ की द्योतना कवि की विशिष्टता है। उनके युद्ध वर्णन को पढ़ने से ऐसा मालूम पड़ता है मानो युद्ध हमारे नेत्रों के सामने अपनी पूर्ण भयंकरता तथा रोमांचकता के साथ आकर उपस्थित हो गया हो। आपकी शिखरिणी सबसे अच्छी है। क्षेमेंद्र ने सुवृत्तितिलक में भवभूति के शिखरिणी वृत्त की प्रशंसा की है—

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
चकिता घनसंदर्भे या मयूरीव नृत्यति।।

मानवीय भावों की गहराई में प्रवेश करने तथा उन्हें उसी प्रकार मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करने में भवभूति नितांत दक्ष हैं। किसी मनोवेग का वर्णन करते समय उनका लक्ष्य है उस गूढ़ से गूढ़ सूक्ष्म भाव की द्योतक शब्दों के द्वारा साक्षात् अभिव्यक्ति। वे उपमा तथा उत्प्रेक्षा का व्यूह रचकर उस भावसौंदर्य को अनावश्यक आडंबर की लपेट में कभी नहीं रखना चाहते। हृदय के सीधे भावों का वर्णन सीधे शब्दों में ही अधिक जँचता है। चित्र दर्शन से उत्पन्न राम के मनोभाव का यह वर्णन कितनी सुंदरता के साथ कवि ने किया है (उ.च. 1।29)।—

अयं ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुटदधर-नासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति च भराध्मात-हृदयः।।

'भावशबलता' के अवलोकन तथा वर्णन की अद्भुत क्षमता भवभूति को मिली थी। किसी विशिष्ट अवसर पर मानव के हृदय में जो भावपुंज अभिव्यक्त होते रहते हैं उनका एकत्र वर्णन कर भवभूति ने अव्यक्त हृदय का एक व्यक्त चित्र प्रस्तुत कर दिया है। भगवती सीता तमसा के साथ पंचवटी में जा रही है; अचानक रामचंद्र के मसृण वचन सीता के कर्ण-कुहर में प्रवेश करते हैं। सुदीर्घ द्वादश वर्ष के वियोग के अनन्तर प्राण प्यारे से इन वचनों को सुनकर सीता की विचित्र दशा का वर्णन तमसा के मुख से कवि ने इस प्रकार किया है—

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनोत्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्यादपि च करुणैर्गाढकरुणं

द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।

हे सखि! तुम्हारा हृदय निराशा से–राम से संयोग होने की निराशा से–अभी उदासीन था तथा राम के इस दुर्व्यवहार से कलुषित था, परंतु अब इस दीर्घवियोग में अचानक भेंट हो जाने से बिलकुल स्तब्ध हो गया है; राम की सुजनता से प्रसन्न है और विलापों के कारण इसमें शोक की तीव्र धारा चल रही है; राम के द्वारा प्रेम प्रकट करने से यह हृदय आनंद से पिघला जा रहा है। हृदय के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण उचित शब्दों में करना भवभूति की प्रतिभा का विलास है जो इस पद्य में सुंदरता से अभिव्यक्त हो रहा है।

प्रकृतिचित्रण–भवभूति चेतन मानवीय प्रकृति के ही सच्चे विश्लेषक नहीं हैं, बल्कि बाह्य प्रकृति के भी सफल चित्रकार हैं। उन्होंने प्रकृति का निरीक्षण बड़ी सावधानी से किया था। कालिदास ने प्रकृति के केवल सुकुमार पक्ष, कोमल पहलू का ही वर्णन किया है; परंतु भवभूति की दृष्टि विशेष कर उसके उग्र, भयंकर तथा विषम पक्ष पर ही गड़ी थी। दंडकारण्य का जैसा सच्चा वर्णन उत्तररामचरित में पाया जाता है, जंगल का वैसा वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। संस्कृत कवियों का प्राकृतिक वर्णन सदैव अलंकृत रहता है, जिससे लोगों को संदेह होने लगता है कि क्या वह दृश्य कवि की कल्पना में प्रसूत हुआ है या उसके प्रकृति-पर्यवेक्षण से? परंतु भवभूति का यह वर्णन विश्व के महाकवियों के समान विस्तृत तथा वास्तविक है। मालतीमाधव के श्मशान-वर्णन की भी यही विचित्रता है! दंडकारण्य की भीषणता पर जरा दृष्टिपात कीजिए (उ. च. 2।16)–

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित् क्वचिदपि प्राच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते।।

(जंगल का कोई भाग बिल्कुल शांत है और कहीं सिंहक जानवरों की प्रचंड ध्वनि सुन पड़ती है। कहीं पर स्वेच्छया सोये हुए विस्तृत फन वाले भुजंगों के श्वास से आग पैदा हो रही है। जल का नाम नहीं है, कहीं-कहीं छोटी गड़हियों में थोड़ा सा पानी झिलमिला रहा है; बिचारे प्यासे गिरगिटों को पानी नहीं मिलता। क्या करें, अजगर के पसीने को ही पीकर अपनी प्यास बुझाते हैं।) कितना भयानक दृश्य है प्रचंड ग्रीष्म के संताप का!

पहाड़ों पर सोते बहे चले आ रहे हैं। उनका वर्णन कितना यथार्थ तथा रोचक है (उत्तररामचरित 2।10) वर्णध्वनि का चमत्कार तिनरां आवर्जक है–

इह समदशकुंताक्रांतवानीरवीरुत्प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहंति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः।।

(यह देखो, झरने बह रहे हैं। इनके किनारे वानीरलता उगी हुई है। उसके

ऊपर मधुर कंठवाले पक्षीगण बिहार करते हैं। उनके बैठने से लता के फूल झरनों में गिर जाते हैं जिससे उनका पानी सुगंधित हो जाता है। पहाड़ों से बहने के कारण नदियों का जल स्वभाव से ही शीतल तथा स्वच्छ है। उनकी धाराएँ पके हुए फलों से लदे, काले जंबू वृक्षों के कुंज से टकराने पर अत्यंत शब्द करती हुई अनेक मार्गों से बह रही हैं।)

रससिद्धि–भवभूति अनेक रसों के सिद्ध कवि हैं। अपने नाटकों में उन्होंने वीर रस का सजीव वर्णन किया है। वीरों की गर्वीला गर्जन, अस्त्रों की झंकार, स्यंदनों की खटखटाहट और बाणों की सनसनाहट–ये सब हमारे सामने सच्ची युद्धभूमि का चित्र हठात् उपस्थित कर देते हैं। मालतीमाधव में शृंगार रस का खासा वर्णन किया गया है। श्मशान दृश्य में वीभत्स तथा भयानक की मात्रा यथेष्ट है, परंतु भवभूति सबसे अधिक करुण रस के उन्मेष में सिद्धहस्त हैं। कालिदास ने भी रतिविलाप तथा अजविलाप के द्वारा करुणोत्पादक प्रभाव खूब ही दिखलाया है, परंतु भवभूति के वर्णन में कुछ अलौकिकता है, विचित्र चमत्कार है, जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। भवभूति करुण रस के प्रधान आचार्य हैं। आलंकारिकों में आदि रस के विषय में बड़ा मतभेद है। महाराज भोजदेव शृंगार को ही रसों का सिरताज समझते हैं, जो शैवागम के अनुयायी काश्मीरी कविगण शांत रस को ही मुख्य रस मानते हैं; परंतु हमारे भवभूति ने करुण रस को ही सबमें प्रधानता दी है। इन्होंने अपनी सम्मति स्पष्ट शब्दों में उत्तररामचरित के इस प्रख्यात पद्य में दी है, (3 । 47)–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत् समग्रम्।।

करुण ही प्रधान रस है। रस सामग्री (स्थायी भाव, आलंबन, उद्दीपन आदि) की विभिन्नता से वह भिन्न होता हुआ भिन्न-भिन्न परिणामों को धारण करता है, परंतु है एक ही। एक ही जल कभी भँवर के रूप को, कभी बुद्बुदों तथा कभी तरंगों के रूप को धारण करता है, परंतु वास्तव में यह सब जल ही है। इस प्रकार 'करुण' ही सब रसों की प्रकृति है। अन्य रस तो उसकी विकृति हैं। जब करुण रस के विषय में भवभूति की ऐसी उच्च धारणा थी, तब उनके करुण वर्णनों की क्या कथा! इसी करुण-वर्णन के वैचित्र्य को लक्ष्य कर गोवर्धनाचार्य ने ठीक ही कहा है–

भवभूते सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किन्यथा रोदिति ग्रावा।।

राम सीता के लिए विलाप कर रहे हैं (उत्तर. 3 ।38)–

हा हा देवि! स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबंधः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमंतर्ज्वलामि।

सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवांतरात्मा
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मंदभाग्यः करोमि।।

(हा देवि! तुम्हारे बिना मेरा हृदय फटा जाता है; शरीर शिथिल पड़ रहा है, संसार को सूना समझता हूँ, मेरे हृदय में सदा ज्वाला जल रही है, मेरा दुःखित आत्मा गाढ़ अंधकार में धँसा जाता है, चारों तरफ से अज्ञान मुझे घेर रहा है। अब मैं मंदभाग्य क्या करूँ, कहां जाऊँ?)

भवभूति का करुण रस अत्यंत गंभीर तथा मर्मस्पर्शी है। उन्हीं की स्वीकारोक्ति के अनुसार वह 'पुटपाक' के समान है, जो ऊपर से तो पंकलिप्त होने से नितांत शांत, परंतु भीतर ही भीतर तीव्र अंतर्वेदना से उत्तप्त होता रहता है (उत्तर. 3 । 1)–

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादंतर्गूढघनव्यथः
पुटपाक-प्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।

करुण रस कभी अमर्यादित उद्वेग तथा प्रलाप का रूप नहीं धारण करता, परंतु अपनी तीव्रता के कारण वह बारंबार मूर्छा की अवस्था में अपने पात्र को ढकेल देता है। भवभूति जानते हैं कि शोकातिरेक की दशा में एकांत में जी भरकर रोने से चित्त हल्का हो जाता है, जिस प्रकार बढ़े हुए पानी के निकाल देने से तालाब का शोधन हो जाता है (उत्तर. 3 ।29)–

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।

इसी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भवभूति के पात्र अपने भावशोधन के लिए विलाप के द्वारा अपना शोक बाहर प्रकट करते हैं। देखिए, राम की यह करुणामयी सूक्ति कितनी हृदयस्पर्शी है (वही 6 ।38)–

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासेऽप्याश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च विकल्पव्युपरमे
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव।।

प्रवास में प्रिय का बारंबार ध्यान करते समय प्रतीत होता है कि वह सामने ही आकर उपस्थित है; इसी से वह वियोग में आश्वासन प्रदान करता है, परंतु कल्पित मूर्ति के नाश होते ही यह संसार बीहड़ सुनसान जंगल के समान जान पड़ता है और तदनंतर भूसे की आग में हृदय पकने लगता है, जो धीरे-धीरे हृदय को सुलगा कर भस्म कर देती है। यहां 'कुकूल' (भूसा) का संकेत कवि के गाढ़ अनुभव की ओर है। कुकूल की आँच बहुत तेज होती है, परंतु वह एक साथ न जलकर धीरे-धीरे जलती रहती है जिससे हृदय में असीम दुःसह वेदना की तीव्र अभिव्यंजना बलात् होती है।

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।

* * *

डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माथुर

पिताश्री : आचार्य मुक्तेश माथुर

माताश्री : श्रीमती चन्द्रकान्ति माथुर

जीवनसाथी : श्री राजीव माथुर

जन्मतिथि : 26.03.1969 (छब्बीस मार्च उन्नीस सौ उन्हत्तर)

जन्मस्थलि : सम्भल, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)

राष्ट्रीयता : भारतीय

जाति : कायस्थ (हिन्दू)

सम्प्रति : प्राध्यापक, प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत), साहित्यरत्न (हिन्दी, संस्कृत, आयुर्वेद), नेट-जे.आर.एफ.,पी-एच.डी.

शिक्षण अनुभव : पन्द्रह वर्ष

प्रकाशित ग्रन्थ : 04

सम्पर्क : डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माथुर 'श्री प्रभुकुंज', सेक्टर के-288, आशियाना कॉलोनी,
लखनऊ-226012 (उत्तर प्रदेश)

दूरभाष : 09450056642